पुस्तक माला-3

ज्ञान-विज्ञान

शैक्षिक निबन्ध

सम्पादन
कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान

पुस्तक माला–3

ज्ञान–विज्ञान

शैक्षिक निबन्ध

HBCSE

सम्पादन

कृष्ण कुमार मिश्र

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान

ज्ञान–विज्ञान: शैक्षिक निबन्ध

- सम्पादन : डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र
- प्रकाशक : होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
  टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
  वी.एन.पुरव मार्ग, मानखुर्द
  मुंबई–400088
- © सर्वाधिकार : होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, मुंबई
- शब्द संयोजन एवं पृष्ठ योजना : शिल्पा चंद्राकर, आकांक्षा गजभिये
- आवरण : शिल्पा चंद्राकर
- संस्करण : प्रथम, वर्ष 2014

प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना यह पुस्तक या इसका कोई अंश इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटोकॉपी या किसी भी अन्य रूप में प्रकाशित या संग्रहीत नहीं किया जा सकता।

विशेष:- इस पुस्तक में आलेखों के संगत चित्र विकीपीडिया मुक्त ज्ञानकोष (http://www.wikipedia.org) से साभार लिए गए हैं।

आवरण:- छवियाँ विकीपीडिया (http://www.wikipedia.org) से साभार

HBCSE

पुस्तक माला–3

<u>ज्ञान–विज्ञान:</u> <u>शैक्षिक निबन्ध</u>

अनुक्रमणिका

- प्राक्कथन/प्रो. जयश्री रामदास v
- संपादकीय/डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र vi

01. प्रकृति के मापन नियम 1
प्रो. विजय ए. सिंह एवं डॉ. प्रवीण पाठक

02. पेस्टीसाइडों का स्थायित्व और पर्यावरण प्रदूषण 8
डॉ. दिनेश मणि

03. हरित रसायन: समय की मांग 13
डॉ. अमर श्रीवास्तव

04. आधुनिक वनस्पति विज्ञान के जनक : लीनियस 26
डॉ. *प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव*

05. जल की कठोरता: कारण और निवारण 34
संजय कुमार पाठक

06. हिन्दी में फॉन्ट की समस्या 46
आर. अनुराधा

07. स्कूली पाठ्यचर्या में पर्यावरण विज्ञान एवं विज्ञान दर्शन: एक शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण 56
आलोक कुमार मिश्र

08. गतिविधि विज्ञान आधारित शैक्षिक सामग्रियों का ई–प्रारूप 63
कपिल त्रिपाठी

HBCSE

09. भूजल–प्रदूषण: कारण एवं निवारण 69
डॉ. दुर्गा दत्त ओझा

10. कृषि एवं चिकित्सा के क्षेत्र में नाभिकीय तकनीक के अनुप्रयोग 79
निमिष कपूर

11. बूलीय बीजगणित: इलेक्ट्रॉनिक परिपथों के डिजाइन का आधार 93
पूनम त्रिखा

12. शून्य की संकल्पना और भारत 103
डॉ. *प्रदीप कुमार मुखर्जी*

13. स्टेम कोशिका 114
मनीष मोहन गोरे

14. भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की विकास–यात्रा 120
राधाकांत अंथवाल

15. जीवन की कुछ महत्वपूर्ण क्रियाएं तथा रसायनों की भूमिका 131
डॉ. *अर्चना पाण्डेय*

16. गणितीय अध्ययन में उपपत्ति–बोध 138
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

. . . . . .

HBCSE

-:प्राक्कथन:-

आज का युग सूचना तथा संचार तकनीकी का युग है। संचार माध्यमों के विस्तार से पूरी दुनिया आपस में बहुत नजदीक आ गयी है। देश-दुनिया में कहां क्या हो रहा है, इसकी खबर पल भर में सबको मालूम हो जा रही है। संचार माध्यमों के जरिए पृथ्वी पर हजारों मील दूर स्थित इलाके एक बड़े संजाल में परस्पर जुड़ गए हैं। इन साधनों से लोगों में जागरूकता पैदा की जा सकती है। व्यक्तिगत, सामाजिक (जैसे सोशल मीडिया), तथा वाणिज्यिक क्षेत्रों में संचार के साधनों की उपयोगिता अब तकनीकी तथा ज्ञान-विनिमय से भी जुड़ गई है। ये माध्यम लोगों को सूचना और ज्ञान के आगे जा कर उनके अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूक बना सकते हैं। ऐसे हालात में आम आदमी के लिए वैज्ञानिक एवं कंप्यूटर साक्षरता की महत्ता बढ़ जाती है। भारत जैसे विशाल देश में यह काम भारतीय भाषाओं के जरिए ही हो सकता है।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र (TIFR), ने विज्ञान परिषद् प्रयाग के तत्वावधान में वर्ष 2012 में तृतीय राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया था। उस कार्यक्रम में दी गयी प्रस्तुतियों पर आधारित कुल 16 चयनित निबन्ध इस पुस्तक में प्रकाशित हो रहे हैं। ये निबन्ध भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, चिकित्सा, पर्यावरण तथा गणित जैसे विविध विषयों पर केंद्रित हैं। इस कार्यशाला का समन्वय होमी भाभा केंद्र में कार्यरत और हिन्दी विज्ञान लेखन में पिछले अनेक बरसों से सक्रिय डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र ने किया, और इस निबंध संग्रह का संपादन इन्हीं ने किया है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक राजभाषा हिन्दी में वैज्ञानिक साक्षरता तथा लोकव्यापीकरण की दिशा में अहम भूमिका निभाएगी।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
मुंबई

प्रो. जयश्री रामदास
केन्द्र निदेशक

HBCSE

–:संपादकीय:–

वर्तमान युग सूचना एवं संचार का युग है। इक्कीसवीं सदी को ज्ञान की सदी कहा जा रहा है। विगत् वर्षों में देश में सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रांति आयी है। संचार माध्यमों में इलेक्ट्रॉनिक सामग्रियों का दायरा तथा प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है। देश में इंटरनेट सेवाओं का तेजी से विस्तार तथा प्रसार हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में भी तेजी से बदलाव आ रहा है। बेहतर अधिगम, शिक्षण तथा प्रशिक्षण के लिए ई-सामग्री आज उपयोगी सिद्ध हो रही है। ऐसा माना जाता है कि आने वाले दिनों में इसकी उपयोगिता तथा उपादेयता बढ़ने ही वाली है। दृश्यश्रव्य माध्यमों तथा ऐनिमेशन तकनीक द्वारा शैक्षिक सामग्री बेहतर तरीके से छात्रों, अध्यापकों तथा प्रशिक्षकों तक पहुँचायी जा सकती है।

यह बहुत जरूरी है कि ब्रह्माण्ड के बारे में ज्ञान की पहुंच तथा सुलभता सभी लोगों तक होनी चाहिए। यह महत् कार्य भारतीय भाषाओं के जरिए ही किया जा सकता है। राष्ट्र के संविधान की समतामूलक भावना तथा समावेशी शैक्षिक मूल्यों के मद्देनजर यह कार्य नितांत जरूरी है। हिन्दी जगत बहुत बड़ा है। जाहिर है उसकी अपेक्षाएं तथा आवश्यकताएं भी बहुत बड़ी हैं। होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र द्वारा हिन्दी में शैक्षिक तथा लोकोपयोगी सामग्री के विकास के पीछे यही भावना निहित है। होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र (TIFR) मुंबई, ने विज्ञान के लिए शैक्षिक ई-सामग्री के सृजन की पहल करते हुए एक नूतन ई-लर्निंग पोर्टल (http://ehindi.hbcse.tifr.res.in) विकसित किया है। इस वेबसाइट की शुरुआत वर्ष 2008 में की गयी थी। तब से इसे विविधतापूर्ण, समृद्ध तथा अद्यतन करते रहने का प्रयास जारी है।

होमी भाभा केन्द्र ने "शैक्षिक ई-सामग्री का विकास" विषय पर वर्ष 2008, 2010 तथा 2012 में तीन राष्ट्रीय कार्यशालाएं आयोजित की थीं। ये कार्यशालाएं विज्ञान परिषद् प्रयाग के तत्वावधान में इलाहाबाद में आयोजित की गयी थीं। इन कार्यशालाओं में देश के माने जाने वैज्ञानिकों तथा शिक्षकों को प्रतिभागी विशेषज्ञ के रूप में व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित किया गया था। इन विशेषज्ञों की प्रस्तुतियों की वीडियोरिकॉर्डिंग कराकर उन्हें संपादनोपरान्त http://ehindi.tifr.res.in वेबसाइट पर ई-व्याख्यान के रूप में अपलोड किया जा चुका है। इसके साथ ही इन कार्यक्रमों के प्रतिभागियों के आलेख "ज्ञान-विज्ञान: शैक्षिक निबन्ध", पुस्तक माला के अंतर्गत प्रकाशित किए जा चुके हैं। अभी तक ऐसी दो पुस्तकें प्रकाशित हो

चुकी हैं। ये पुस्तकें पीडीएफ तथा आनलाइन प्रारूप में उपरोक्त पोर्टल पर डाली जा चुकी हैं। इन्हें कोई भी पाठक डाउनलोड कर सकता है तथा उनका प्रिंटआउट ले सकता है। उसी पुस्तक माला की यह तीसरी पुस्तक है जो वर्ष 2012 में आयोजित तृतीय राष्ट्रीय कार्यशाला में दी गयी प्रस्तुतियों पर आधारित चयनित आलेखों का संकलन है।

इस पोर्टल पर ई-व्याख्यान, ई-प्रस्तुतियां, ई-पुस्तकें, ई-लेख, ई-रिपोर्ट, ई-पत्रिका, ई-शब्दावली, विज्ञान प्रश्नोत्तरी, झलकियां, विविधा के साथ-साथ उपयोगी इंटरनेट लिंक दिए गए हैं। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में हर तारीख का महत्व जानने के लिए वैज्ञानिक ई-कैलेंडर भी है जो उस दिन की अहम वैज्ञानिक घटनाओं तथा उपलब्धियों की जानकारी देता है। इस वेबसाइट पर होमी भाभा केन्द्र द्वारा तैयार स्कूली पाठ्यक्रम की विज्ञान की पुस्तकें तथा लोकोपयोगी विज्ञान की कई किताबें भी उपलब्ध हैं। यहां पर भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, जैवप्रौद्योगिकी, नैनोसाइंस, मृदाविज्ञान से लेकर कृषि-विज्ञान के अनेक विषयों पर रुचिकर तथा सूचनाप्रद व्याख्यान उपलब्ध हैं।

वर्ष 2012 में आयोजित तृतीय राष्ट्रीय कार्यशाला के कुल 16 आलेखों को संजोए इस पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता है। इस कार्यशाला के कुल 26 व्याख्यान उपरोक्त वेबसाइट पर डाले जा चुके हैं। इस तरह इन कार्यक्रमों से इलेक्ट्रॉनिक तथा मुद्रित, दोनों तरह की सामग्रियां सृजित किए जाने का प्रयास किया गया है। विज्ञान पर इन शैक्षिक सामग्रियों के बारे में अपने विचारों तथा सुझावों से आप हमें जरूर अवगत कराएं। इसके लिए वेबसाइट पर दिए गए 'आपके सुझाव' स्तम्भ के जरिए आप हमें ई-मेल भेज सकते हैं। आप अलग से भी ई-मेल के द्वारा ehindi@hbcse.tifr.res.in पर या फिर नीचे दिए गए मेरे निजी ई-मेल पर पत्र लिखकर अपनी राय व्यक्त कर सकते हैं।

HBCSE

- डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

संपर्क :-
होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
वी. एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द
मुंबई-400088
ई-मेल :kkm@hbcse.tifr.res.in

HBCSE

ज्ञान–विज्ञान

शैक्षिक निबन्ध

HBCSE

HBCSE

प्रकृति के मापन नियम

◆ प्रो. विजय ए. सिंह एवं डॉ. प्रवीण पाठक

यूँ तो विभिन्न आकार के प्राणियों की शारीरिक बनावट में कई अंतर दिखते हैं परन्तु यदि कोई प्रत्यक्ष अंतर दिखता है तो वह है उनके आकार में। फिर भी जाने क्यों प्राणिशास्त्री इस बात पर कम ही ध्यान देते हैं। प्राणिशास्त्र की कई किताबों में इस बात का कोई जिक्र नहीं मिलता कि क्यों चील पक्षी गौरैया चिड़िया से बड़ा होता है, या दरियाई घोड़ा किसी खरगोश से विशाल क्यों होता है? हालाँकि कहीं-कहीं पर कुछ अस्पष्ट-सी तुलना चूहे और विशाल व्हेल के आकार के बारे में की जाती है। परन्तु आपको यह जानकर शायद आश्चर्य होगा कि विज्ञान के सरल नियमों से यह दिखाना बहुत आसान है कि क्यों समुद्र में पाई जाने वाली हिलसा मछली एक दरियाई घोड़े के जितनी बड़ी नहीं हो सकती या एक व्हेल, हिलसा मछली के जितनी छोटी नहीं हो सकती (हाथी एक व्हेल के बराबर विशाल नहीं हो सकता या एक चींटी हाथी के आकार की नहीं हो सकती)। जानवर की हरेक बनावट के लिए एक सर्वाधिक स्थायी और सुविधाजनक आकार होता है। दूसरे शब्दों में, आकार में बड़ा अंतर लाने के लिए बनावट में भी परिवर्तन लाना जरुरी हो जाता है। सामान्यत: बड़ी वस्तुएँ छोटी वस्तुओं से मेल नहीं खातीं। परन्तु ऐसा क्यों?
इस लेख में हम प्रकृति की अपार विविधताओं को विज्ञान के सरल नियमों से समझने की कोशिश करेंगे।

एक सरल मापांक जिसे हम अपने दैनिक जीवन में उपयोगी पाते हैं, वह है- BMI अर्थात Body Mass Index (शरीर द्रव्यमान सूचकांक)। BMI शरीर में द्रव्यमान और ऊँचाई के संतुलन को इंगित करता है। गणितीय रूप में : BMI = द्रव्यमान (किग्रा)/लम्बाई^2 (मीटर^2)। एक स्वस्थ व्यक्ति का BMI 20-24 के मध्य होना चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि आपका वजन 70 किग्रा तथा लम्बाई 1.8 मीटर है तो आपका BMI लगभग 23 होगा जो कि स्वस्थ होने को इंगित करता है। 25 से अधिक BMI वालों को अपना वजन कम करने की आवश्यकता है तथा 20 से कम BMI वालों को अपने शरीर का वजन बढ़ाने की आवश्यकता है। हालाँकि आज कल कम BMI का प्रचलन बढ़ गया है। फैशन एवं फिल्म उद्योग में एक बहुत प्रचलित शब्द है- साइज़ ज़ीरो। 18 BMI से कम वाले व्यक्ति को साइज़ ज़ीरो शरीर वाला मानते हैं। चिकित्सीय रूप से तो वह व्यक्ति स्वस्थ नहीं माना जायेगा, पर ग्लैमर की दुनिया में वह खूबसूरती का एक पैमाना जरूर बन गया है। वर्तमान में भी इसके कई उदाहरण मौजूद हैं जैसे फिल्मी दुनिया को ही देख लीजिए। आपको कई अभिनेत्रियां साइज़ जीरो की दिख जायेंगी।

एक और सरल नियम जिससे प्रकृति की बहुत सारी विविधताओं को समझा जा सकता है वह है क्षेत्रफल-आयतन नियम। इसे संक्षेप में S/V(surface area /volume) भी कहते हैं। किसी आकार को छोटा या बड़ा करने पर उसके

HBCSE

आयतन व क्षेत्रफल एक अनुपात में परिवर्तित नहीं होते। उदाहरणस्वरुप एक घनाकार वस्तु को लेते हैं जिसकी प्रत्येक भुजा की लम्बाई 'a' है। इसका क्षेत्रफल $6a^2$ तथा आयतन a^3 हुआ। अब यदि घन की लम्बाई हर दिशा में दुगुनी कर दी जाये तो उसका क्षेत्रफल $24a^2$ तथा आयतन $8a^3$ हो जायेगा। हम देख सकते हैं कि आयतन में तो आठ गुना वृद्धि हुई जबकि क्षेत्रफल में केवल चार गुना। बड़े घन के लिए क्षेत्रफल-आयतन अनुपात छोटे घन की तुलना में आधा है। अत: जैसे-जैसे हम किसी वस्तु को छोटा करते जायेंगे उसके S/V अनुपात में वृद्धि होती जायेगी। सरल भाषा में कहें तो छोटी वस्तु का पृष्ठीय क्षेत्रफल उसी आकार की बड़ी वस्तु से तुलनात्मक रूप में अधिक होता है।

प्रकृति भी इस बात को बखूबी जानती है कि क्षेत्रफल अधिक या कम होने से क्या-क्या लाभ या हानि हो सकते हैं। पेड़ों को ही देख लीजिये। उनमें पत्तियां अधिक होती हैं जिससे उनका पृष्ठीय क्षेत्रफल बढ़ जाये और वह ज्यादा से ज्यादा प्रकाश संश्लेषण कर सकें। वहीं दूसरी ओर मरुस्थलीय क्षेत्रों में उगने वाले पौधे जैसे कि कैक्टस इत्यादि अपने क्षेत्रफल को कम रखने का प्रयास करते हैं क्योंकि अधिक क्षेत्रफल होने से वाष्पीकरण भी अधिक होता है। उनके तने ही प्रकाश संश्लेषण का कार्य करते हैं। हमारे शरीर में फेफड़े इसका ही एक और उदाहरण है। फेफड़ों में त्वचा एक गुच्छे के रूप में रहती है जिससे उसका वास्तविक क्षेत्रफल सैकड़ों वर्गमीटर तक बढ़ जाता है। यदि एक वयस्क शरीर के फेफ़ड़ों को किसी समतल पर फैलाया जाये तो वह एक टेनिस कोर्ट के बराबर होगा। जितना अधिक क्षेत्रफल उतना ही अधिक ऑक्सीजन के अवशोषण की क्षमता। इसी तरह आँत एक कुंडली के समान रहती है और उसके अंदर की तरफ बहुत सी छोटी-छोटी नालियों के समान संरचनाएं निकली रहती हैं, जिन्हें रसान्गुल कहते हैं। जिससे आँतों का पृष्ठीय क्षेत्रफल कई गुना तक बढ़ जाता है। इस तरह से हमारे शरीर में भोजन से पोषक तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता बढ़ जाती है जैसे कि रेशेदार तौलिए के रोंएँ हमारे शरीर से पानी सोखते हैं। एक मनुष्य की आंतों की लम्बाई उसकी शरीर की लम्बाई से 10 गुना अधिक होती है। दैनिक जीवन में भी इसका कम महत्त्व नहीं है। एक बाटी या लिट्टी को पकाने में जितना समय लगता है उससे कहीं बहुत कम समय उसी द्रव्यमान की चपाती को पकाने में लगता है। चपाती के चपटे गोल आकार के कारण इसकी ऊष्मा अवशोषण करने की क्षमता बढ़ जाती है और वह पूर्णत: जल्दी पक जाती है। गोबर से कंडे बनाते हुए उसका पृष्ठीय क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए चपटा किया जाता है जिससे उसको धूप में जल्दी से सुखाया जा सके। सतह क्षेत्रफल ज्यादा होने से वस्तु ज्यादा अभिक्रियाशील भी हो जाती है क्योंकि अब क्रिया करने के लिए अधिक क्षेत्रफल उपलब्ध रहता है। इसीलिए आयुर्वेदिक दवाइयों को महीन पीसकर खिलाया जाता है। लकड़ी का एक बड़ा लठ्ठा जहाँ रात भर जलता रहता है, वहीं दूसरी ओर यदि उसके खपच्चियां बना कर जलाया जाये तो वे शीघ्र ही जल जायेगीं। ठण्ड में जानवर अपने आप को गोलाकार बना कर झुण्ड में सोते हैं जिससे उनका क्षेत्रफल कम हो और ऊष्मा का क्षय भी कम हो। ये सभी क्षेत्रफल-

HBCSE

आयतन अनुपात के उदाहरण हैं।

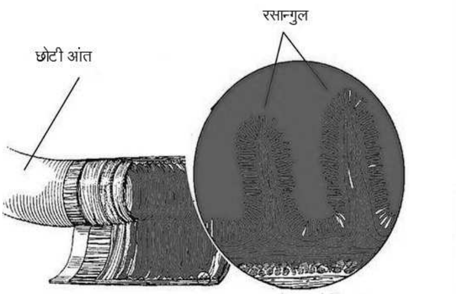

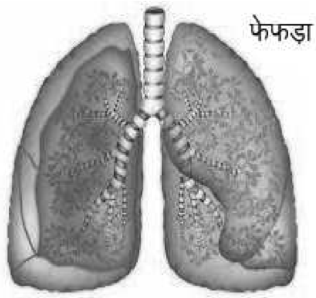

छोटी आंत केवल नाम की ही छोटी है। असल में यह 22 फुट लम्बी होती है और इसके अंदर घने रेशे होते हैं। हमारे फेफड़े यदि फैलाया जाए तो 80 फुट तक फैल सकता है परंतु ये दोनो ही सिकुड़े हुए शरीर में रहते हैं। यह फैलेगा। ऐसा क्यों?

चलिए, अब मापन के दूसरे पैमाने की बात करते हैं। पौराणिक आख्यानों में वर्णित एक विशालकाय राक्षस का उदाहरण लेते हैं। मान लेते है कि वह करीब साठ फुट लम्बा है। यानी सामान्य मनुष्य से दस गुना ऊंचा है बल्कि दस गुना चौड़ा और दस गुना मोटा भी है। अतः ऐसे किसी राक्षस का आयतन सामान्य व्यक्ति की तुलना में हज़ार गुना हुआ। अब चूँकि द्रव्यमान = घनत्व x आयतन, और यदि मान लिया जाये कि राक्षस का घनत्व परिवर्तित नहीं होता है तो इस गणना से राक्षस का द्रव्यमान भी हज़ार गुना हो जायेगा अर्थात 70-80 टन का होगा। दुर्भाग्यवश उनकी हड्डियों की अनुप्रस्थ काट अथवा क्षेत्रफल केवल 2 दिशाओं में अर्थात मात्र 100 गुना बढ़ेगा। यदि मनुष्य की जांघ की हड्डियों के 1 वर्ग इंच क्षेत्रफल को 1 किग्रा वजन सहन करना है तो राक्षस की हड्डियों को 1000 किग्रा। परन्तु मानव हड्डियों की क्षमता केवल इतनी होती है कि वे दस गुने से ज्यादा वजन में टूट जाती हैं। तो ऐसे में राक्षस के एक कदम बढ़ाते ही उसकी जांघ की हड्डी टूटना निश्चित है। शायद इसीलिए कुम्भकर्ण जैसा विशालकाय राक्षस हमेशा लेटा रहता था।

इस तस्वीर में एक विशालकाय राक्षस खड़ा है जो वास्तव में खड़ा ही नहीं हो सकता!ऐसा क्यों? परंतु इन मोटे स्तंभों पर पुरानी भव्य इमारतें अपने विशालकाय गुम्बदों के साथ खड़ी हैं, ऐसा क्यों?

HRCSE

प्राचीन मंदिरों के खम्बे भी बहुत चौड़े इसलिए होते थे क्योंकि उन्हें अपने ऊपर वजनी गुम्बद रखना पड़ता था। गाय या बैल का सिर भी सामान्य से बहुत बड़ा होता है इसलिए उसे उठाने के लिए चौड़ी गर्दन भी चाहिए और शायद इसलिए डायनासोर का सिर उसके विशालकाय शरीर की तुलना में छोटा होता था। प्राणिशास्त्र के सन्दर्भ में चिंकारा, जो कि लम्बे और पतले पैरों वाला सुन्दर जानवर है, यदि विशालकाय होना चाहे तो उसके पास दो विकल्प हैं : या तो वह गैंडे के समान अपने पैर मोटे और छोटे कर ले (पैरों का लम्बा होना कतई आवश्यक नहीं है) अथवा जिराफ के समान अपने शरीर को सिकोड़ ले और पैर तिरछे करके शरीर से बाहर निकाल ले जिससे की वह आराम से खड़ा हो सके। हम इन जंतुओं का उदाहरण इसलिए दे रहें हैं क्योंकि ये भी चिंकारा के समान ही तेज धावक हैं।

गुरुत्वाकर्षण विशालकाय प्राणियों जैसे की दैत्यों, हाथियों या डायनासोर के लिए तो एक समस्या है परन्तु चूहे या मक्खी जैसे छोटे कीट के लिए यह कोई समस्या नहीं खड़ी करती। खदानों में एक छोटी चुहिया 50 मीटर यानी कि 10 मंजिल से भी ज्यादा ऊँची इमारत से गिरने पर भी जिन्दा बच जाती है। थोड़े बड़े आकार का कोई प्राणी गिरने पर जरूर मर जायेगा और मनुष्यों के तो अस्थि पंजर ही अलग-अलग हो जायेंगे। एक घोड़े का हाल तो उससे भी बुरा हो सकता है। कहने का अर्थ यह है कि आकार जितना बढ़ता जायेगा, उसके बचने की सम्भावना उतनी कम होती जाएगी। जब कोई वस्तु नीचे गिरती है तो उस पर हवा का प्रतिरोधक बल तथा पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल कार्य करता है। प्रतिरोधक बल वस्तु के क्षेत्रफल के समानुपाती (L^2) तथा गुरुत्वाकर्षण बल वस्तु के वजन (L^3) के समानुपाती होता है। अब यदि वस्तु का आकार दस गुना कम कर दें तो उसका वजन तो हज़ार गुना कम हो जायेगा परन्तु प्रतिरोधक बल केवल सौ गुना। यह नीचे गिराने में सहायक बल से अपेक्षाकृत दस गुना ज्यादा है। अतः प्राणी जितना छोटा होगा उसके नीचे गिरने पर बचने की सम्भावना उतनी ही ज्यादा होगी।

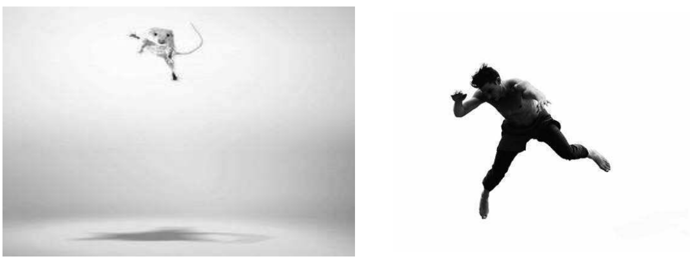

एक चुहिया ऊँची इमारत से गिरने पर भी बच जाती है। लेकिन क्या कोई मनुष्य बच सकेगा?

अंतरिक्ष में जहाँ गुरुत्वाकर्षण नगण्य होता है वहाँ यदि दूध छलकता है तो वो गोलाकार आकृति धारण कर लेता है ताकि उसका क्षेत्रफल कम से कम हो

HBCSE

सके। इसके कारण वह वहीं घूमता रहता है और नीचे भी नहीं आ पाता है। एक छोटा कीट गुरुत्व से भयमुक्त होकर हवा में छलांग लगा सकता है और बिना किसी परेशानी के छत पर भी चढ़ सकता है। अलबत्ता एक बल ऐसा है जो कीट के लिए उतना ही खतरनाक होता है जितना कि गुरुत्वाकर्षण बड़े प्राणियों के लिए होता है। यह बल है- पृष्ठ तनाव। स्नान करने के बाद हमारे शरीर पर लगभग पानी की 1-2 मिमी मोटी पर्त होती है। इसका वजन लगभग आधा किग्रा होता है। हमारे कुल वजन की तुलना में यह नगण्य है। पर एक कीट के पानी में भीगने पर उसके शरीर पर उसके वजन से कई गुना अधिक पानी रहेगा। और यह तो हम सभी जानते हैं कि किसी कीट के किसी द्रव पदार्थ (पानी, चाशनी या घटपर्णी के अन्दर का द्रव) के पृष्ठ तनाव की पकड़ में आने के बाद बाहर निकलना काफी मुश्किल होता है। कबीर का एक दोहा इस विषय में प्रासंगिक है-

माखी गुड़ में गड़ी रहे पंख रहे लपटाए, हाथ मले और सिर धुने लालच बुरी बलाए।।

एक कीट को पानी के पास जाने में वैसा ही खतरा है जैसा कि हमारे किसी ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने से- एक पैर फिसला और बचने की सम्भावना बहुत कम। इसलिए एक कीट का पानी से दूर रहना ही बेहतर है। पानी पर चलने वाले कीट अपने आपको पानी से गीला नहीं होने देते और अपने लम्बे पैरों की सहायता से पानी की सतह के ऊपर से ही चलते हैं।

पानी की बूंद में फँसा हुआ कीड़ा। पराग में फँसा हुआ चींटा या अन्य कीड़े-मकोड़े पानी (द्रव पदार्थ) से इतना क्यों डरते हैं?

विशाल धरातलीय जानवरों की अपनी अलग परेशानियाँ हैं। उनके शरीर में कार्यरत अंग छोटे प्राणियों से भिन्न होते हैं। एक हाथी या जिराफ को एक मनुष्य की तुलना में खून को अपेक्षाकृत अधिक उंचाई पर ले जाना पड़ता है जिसके लिए उन्हें उच्च रक्तचाप और शक्तिशाली धमनियों की आवश्यकता होती है। वहीं छोटे जानवर जैसे कि केंचुआ या चीटीं अपनी त्वचा से अपने शरीर के अन्दर ऑक्सीजन लेते हैं। यदि एक केंचुए को हर दिशा में दस गुना बड़ा कर दें तो उसका वजन 1000 गुना अधिक हो जायेगा। ऐसे में यदि उसको अपने शरीर की मासपेशियों को इस्तेमाल करना है तो उसे 1000 गुना अधिक ऑक्सीजन और भोजन की आवश्यकता होगी। परन्तु उसका पृष्ठ क्षेत्रफल केवल 100 गुना बढ़ेगा। ऐसे में उसके त्वचा और आँतों के प्रति वर्ग क्षेत्रफल को क्रमशः दस गुना ऑक्सीजन और भोजन की आवश्यकता की पूर्ति कैसे होगी? इसकी पूर्ति के लिए

सतह की अवशोषण क्षमता को किसी तरीके से बढ़ाना पड़ेगा। हमारे शरीर में फेफड़े इसी का एक उदाहरण है। जैसे कि ऊपर हमने फेफड़ों और आंतों का ज़िक्र किया था, उनका क्षेत्रफल इतना अधिक है जो कि उनके पोषण के लिए पर्याप्त है। इस तरह बड़े आकार के प्राणियों में अंग भी संरचनात्मक तौर पर जटिल होते जाते हैं। विशाल जानवर अपनी जटिलता के कारण विशाल नहीं होते हैं बल्कि वो इसलिए जटिल होते हैं क्योंकि वे विशाल होते हैं। शरीररचना विज्ञान मूलतः अपने शरीर का क्षेत्रफल अपने आयतन की तुलना में अधिक से अधिक रखना ही है।

अब आपको बड़े आकार के लाभ के बारे में भी बता देते हैं। सबसे स्पष्ट यदि कोई लाभ है तो वह है अपने शरीर को गर्म रखने की क्षमता। हाथी, घोड़े, मनुष्य इत्यादि स्तनपायी जानवर गर्म खून (warm blooded animals) वाले प्राणी हैं। दूसरे शब्दों में, हम सभी उपापचय के दौरान गर्मी पैदा करते हैं। उपापचय हमारे भोजन की मात्रा पर निर्भर करता है। जैसा कि बताया गया है कि वस्तु से ऊष्मा का क्षय उसके पृष्ठ क्षेत्रफल के समानुपाती होता है। चाहे एक छोटा चूहा हो या मनुष्य, सभी के प्रति इकाई क्षेत्रफल से एक समान ऊष्मा का क्षय होता है, जिसके कारण सभी को गर्म रहने के लिए भोजन की मात्रा उनके शरीर के क्षेत्रफल के समानुपाती होनी चाहिए ना कि वजन के। एक चूहा अपने वजन का लगभग एक चौथाई खाना प्रतिदिन खा जाता है जो कि मुख्यतः उसके शरीर को गर्म रखने में प्रयुक्त होता है। वहीं मनुष्य आहार में रोज औसतन अपने वजन का 50वां हिस्सा लेता है। जैसे-जैसे गर्म खून वाले प्राणी का आकार छोटा होता जाता है, उनका पृष्ठीय क्षेत्रफल अनुपातिक रूप में बढ़ता जाता है और इसीलिए उनके खाने की मात्रा भी। उदहारण के लिए सबसे छोटे पक्षी शकरखोरा (Humming bird) को अपने शरीर को गर्म रखने के लिए हर 4 घंटे में कुछ खाना पड़ता है। उसका भोजन भी पराग कण होता है जो कि बहुत समृद्ध आहार है। ठन्डे प्रदेशों में न तो सरीसृप प्राणी (जिनमे अपने शरीर को गर्म रखने की क्षमता नहीं होती) पाए जाते हैं, न ही बहुत छोटे आकार के स्तनपायी। सबसे छोटा स्तनपायी जानवर जो कि आर्कटिक पर पाया जाता है वह है ध्रुवीय लोमड़ी। बहुत छोटे जानवर अपने शरीर को गर्म रखने के लिए पर्याप्त मात्रा में खा भी नहीं पाएंगे।

क्या आप बता सकते हैं कि शकरखोरा (सबसे छोटा पक्षी) अपने वजन की तुलना में कितना खाते हैं? क्या आप चित्र में दिखाए गए ध्रुवीय प्रदेशों में पाए जाने वाले इस जानवर को पहचान सकते हैं?

HBCSE

इस लेख में हमनें मापन के कुछ नियमों की चर्चा की जिनके जरिये आप प्रकृति में उपयुक्त कई वस्तुओं को आसानी से समझ पाएंगे। लेकिन हम यह कतई नहीं कहना चाहते हैं कि प्रकृति की विराट विविधता को मापन नियमों में बांध पाएंगे। हम यह मानते है कि यदि इन नियमों को समझ न भी पायें तो भी मायूस न होइए और प्रकृति की असीम सुंदरता का आनंद लीजिये।

❖ होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
वी. एन. पुरव मार्ग, मानखुर्द
मुम्बई-400088
ई-मेल : vsingh@hbcse.tifr.res.in

HBCSE

पेस्टीसाइडों का स्थायित्व और पर्यावरण प्रदूषण

◆ डॉ. दिनेश मणि

पेस्टीसाइड (पीड़कनाशी) ऐसे रसायन हैं जो पौधों को क्षति पहुँचाने वाले कीटों, कवकों, सूत्रकृमियों, कृन्तकों एवं खरपतवारों को नष्ट करते हैं, या उन पर नियंत्रण रखते हैं। पेस्टीसाइडों को उनके प्रकार और उपयोग के आधार पर कीटनाशी, कवकनाशी, सूत्रकृमिनाशी, खरपतवारनाशी, शाकनाशी, आदि वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु फसल संरक्षण में नाशीजीव रसायनों का प्रयोग बहुत समय से हो रहा है। आरंभ में ये रसायन बहुत ही प्रभावी सिद्ध हुए किंतु विगत कुछ दशकों से इनकी मारक क्षमता में कमी आई है तथा इनके अत्यधिक प्रयोग के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भी उत्पन्न हो गई है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों यथा मृदा, जल, वायु, पौधे, जीवजंतु, दूध, अंडा, माँस तथा अन्य खाद्य पदार्थ सभी में इन रसायनों के अवशेष पाये जा रहे हैं। इन समस्याओं के निराकरण हेतु रसायनों के कम से कम इस्तेमाल पर बल दिया जा रहा है।

रॉशेल कार्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "द साइलेण्ट स्प्रिंग" में बिना सोचे, समझे कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने बताया है कि कीटनाशकों का इतनी लापरवाही से प्रयोग किया गया है कि वास्तविक हानिकारक कीटों के अतिरिक्त अन्य जीवों को भी नष्ट कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कीटों का जैविक नियंत्रण प्रभावित हुआ और कीटों में रासायनिक कीटनाशकों के लिए प्रतिरोध उत्पन्न हो गया। कीट पुनः बड़ी संख्या में उत्पन्न हुए, द्वितीयक हानिकारक कीट भी उत्पन्न हो गए और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई।

जीव जगत में पौधभक्षी कीट 26 प्रतिशत एवं शिकारी, परजीवी, परागणकर्मी तथा सफाईकर्मी कीट 31 प्रतिशत हैं। पौधभक्षी अथवा नाशीकीट की केवल एक प्रतिशत जातियाँ ही क्षति पहुँचाती हैं। विश्व में मात्र 3500 कीटों की जातियाँ ही नाशीकीट के रूप में पहचानी गई हैं। हमारे देश में कीटों की लगभग 1000 जातियाँ ही फसलों एवं फसल उत्पादन को खेतों में अथवा भंडारण में क्षति पहुँचाती हैं।

कृषि में प्रयुक्त किये जाने वाले विभिन्न कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी आदि रसायनों का भूमि में विघटन होता रहता है और इनके तरह-तरह के कम विषैले या विषरहित अवशेष पदार्थ बनते रहते हैं, परंतु इनमें से कुछ रसायन दीर्घस्थायी होते हैं और इनके अवशेष पदार्थ मृदा, जैवमंडल को बहुत समय तक प्रदूषित किये रहते हैं। इन रसायनों के अवशेष उत्पाद मृदा सूक्ष्मजीवों को (जो कि मृदा की उर्वरता के लिए उत्तरदायी होते हैं) प्रभावित करते हैं और उनके कार्यशीलता को कम कर देते हैं। ये रसायन तब तक मृदा जैव-मंडल को असंतुलित किये रहते हैं, जब तक कि इनका पूर्ण क्षय नहीं हो जाता।

वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, जल-अपघटन, प्रकाश-अपघटन पौधों की उपापचयी क्रियाओं, निक्षालन, सूक्ष्मजीवों द्वारा विच्छेदन तथा अन्य रासायनिक क्रियाओं के अतिरिक्त मृदा के कणों तथा कार्बनिक पदार्थ द्वारा इन विषाक्त रसायनों का अधिशोषण हो जाता है। कुछ रसायन तथा उनके अवशेष इतने स्थायी देखे गए हैं कि एक बार उपयोग करने के उपरांत मृदा में वर्षों तक विद्यमान रहते हैं और मृदा जीवों के लिए अत्यंत विषाक्त बने रहते हैं। मृदा में आर्गेनोक्लोरीन वर्ग के कीटनाशकों का स्थायित्वकाल काफी लंबा होता है। इनमें से डी.डी.टी. तो काफी अलोकप्रिय हो चुका है। इनके अवशेष कई वर्षों तक मृदा में विषाक्त रूप में पड़े रहते हैं। इनके इसी अवगुण के कारण ही अनेक विकसित एवं विकासशील देशों में इनके उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

मृदा में आर्गेनोक्लोरीन कीटनाशियों के स्थायित्व पर बहुत शोध कार्य हुआ है। इनके दीर्घस्थायित्व होने के कारण ही आर्गेनोफॉस्फेट, कार्बामेट, संश्लेषित पायरेथ्राइड आदि अतिविषाक्त, अल्पस्थायी रसायनों की खोज हुई जो आर्गेनोक्लोरीन, रसायनों की अपेक्षा अल्पस्थायी तो हैं पर इनके तीक्ष्ण विष मृदाजीवों के लिए हानिकारक हैं और पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।

दीर्घस्थायी रसायन तब तक मृदा जैवमंडल को प्रदूषित किये रहते हैं जब तक ये पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो जाते। मृदा के कणों तथा कार्बनिक कोलॉयडों द्वारा इन विषाक्त जीवानाशी रसायनों का अधिशोषण भी एक महत्वपूर्ण क्रिया है जो मृदा के उर्वरता को प्रभावित करती है। यह अधिशोषण कीटनाशी रसायन की उपलब्धि, उसकी जैविक क्रिया, सूक्ष्मजीवों के प्रति सहिष्णुता और उनकी उपपाचयी क्रिया आदि को तो प्रभावित करता ही है, साथ ही मृदा में कार्बनिक पदार्थों के विघटन, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, फॉस्फोरस तथा सल्फर के विलयनीकरण आदि से संबंधित महत्वपूर्ण क्रियायें भी इससे प्रभावित होती हैं। दीर्घस्थायी रसायन प्रयुक्त की गई भूमि से वर्षा व सिंचाई जल द्वारा बहकर नदी, पोखरों, जलाशयों में तथा निक्षालन द्वारा मृदा के निचले संस्तरों में जमा होते रहते हैं। मृदा में पड़े अवशेष मृदाजीवों के ऊतकों में आसानी से पहुँचकर संचित होते देखे गए हैं। डी.डी.टी., गैमेक्सीन, एल्ड्रिन आदि कुछ ऐसे रसायन हैं जो धीरे-धीरे जीव-जंतुओं के शरीर में एकत्रित होकर विभिन्न बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं।

सारणी-1 कुछ प्रमुख पीड़कनाशियों के दीर्घस्थायित्व की अवधि

पीड़कनाशी		
1.	आर्सेनिक	अनिश्चित
2.	क्लोरीनेटिड हाइड्रोकार्बन (जैसे डी.डी.टी., क्लोरडेन आदि)	2 से 5 वर्ष
3.	ट्रायजीन शाकनाशी (जैसे एट्राजिन, सिमेजीन आदि)	1 से 2 वर्ष
4.	बैंजोइक एसिड शाकनाशी (जैसे एनीबेन, डाइकेन्बा)	2 से 12 महीने
5.	यूरिया शाकनाशी (जैसे मोन्यूरान, डाईयूरान)	2 से 10 महीने
6.	फिनॉक्सी शाकनाशी (जैसे 2,4-डी.,2,4,5-टी., क्लोरोडेन, आदि)	
7.	आर्गेनोफास्फेट कीटनाशी (जैसे पेराथियान, मेलाथियान आदि)	1 से 2 सप्ताह
8.	कार्बामिक कीटनाशी	1 से 8 सप्ताह
9.	कार्बामेट शाकनाशी	2 से 8 सप्ताह

HBCSE

पीड़कनाशियों की पर्यावरणीय नियति

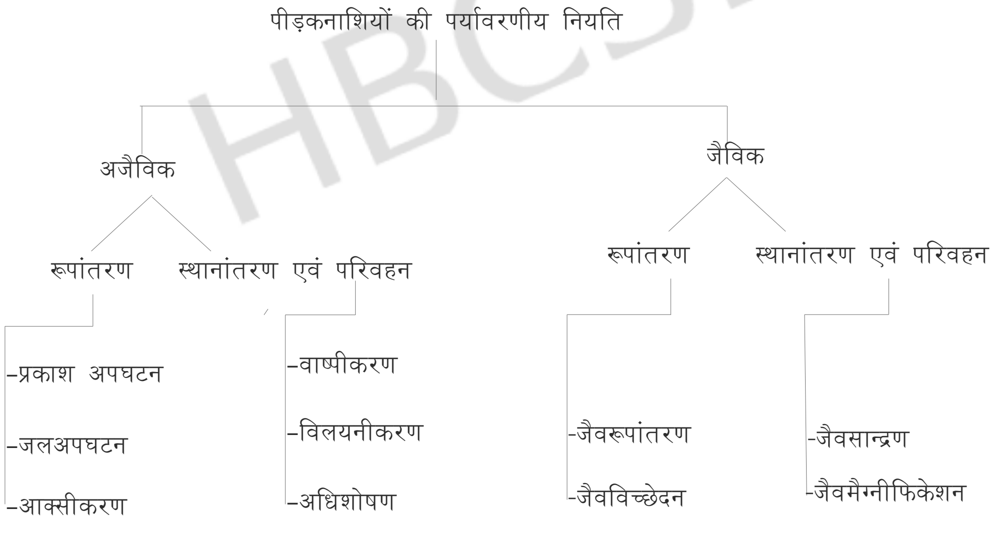

विभिन्न पर्यावरणीय घटकों में सम्पन्न होने वाली स्थानांतरण प्रक्रियाएं

प्रकियाएं	पर्यावरणीय घटक, जिनमें ये प्रभावी होती हैं।
जैव-विच्छेदन	मृदा, जल
जल-अपघटन	मृदा, जल
प्रकाश-अपघटन	वायु, मृदा, जल

एक पर्यावरणीय घटक से दूसरे घटक में रासायनिक प्रदूषकों के स्थानांतरण के संभावित मार्ग

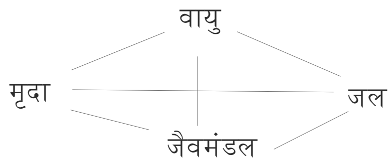

पारिस्थितिक प्रतिक्रियाओं के कारण बहुत से कीटों में उनके नियंत्रण के लिए प्रयुक्त होने वाले कीटनाशियों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न होने लगा। इसके परिणामस्वरूप कीट-नियंत्रण के उपाय प्रभावहीन होने लगे। साथ ही अत्यंत अविषालु दीर्घस्थायी और व्यापक प्रभावों वाले कीटनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग ने अलक्षित तथा लाभदायक कीटों जैसे परजीवियों, परभक्षियों तथा परागण-कीटों पर प्रभाव डाला और उनकी संख्या घटने लगी। इससे कम हानि पहुँचाने वाले नाशक कीट अधिक हानि पहुँचाने वाले नाशककीटों में परिवर्तित हो गए। इनका प्रादुर्भाव बार-बार होने लगा, क्योंकि प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या कम हो जाने के कारण प्राकृतिक नियंत्रण में बाधा पहुँची। इन परिस्थितियों ने रासायनिक नियंत्रण विधि को ऐसे दोराहे पर लाकर खड़ा कर दिया कि पिछले अनुभवों के आधार पर इस उपाय पर पुनर्विचार एवं गहन परीक्षण अवश्यक हो गया। फलतः इससे यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य होना पड़ा कि नाशक कीट नियंत्रण का अंतिम हल ऐसे उपायों में निहित है जिसमें कीट नियंत्रण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न उपायों का संगत और संतुलित समन्वय किया जाये। इसे समन्वित कीट प्रबंधन का नाम दिया गया। कीटनाशी रसायन इस व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं। लेकिन उनके उपयोग के लिए यह आवश्यक हो गया कि उन्हें अधिक तर्कपूर्ण और संतुलित रूप में प्रयुक्त किया जाय जिससे लाभकारी कीटों पर कम से कम प्रभाव पड़े।

कीटनाशियों को बार-बार उपयोग में न लाकर यदि आवश्यकतानुसार व्यवहार में लाये तो इनकी मात्रा को कम किया जा सकता हैं। इसी के साथ ही यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि किसी पारिस्थितिक-तंत्र में कीटनाशियों के निवेश की मात्रा को भी कम किया जाय। ऐसा देखा गया है कि अधिकतम उपयुक्त परिस्थितियों के अंतर्गत भी प्रयोग की गई कीटनाशी धूल का 10 से 20 प्रतिशत ही पौधों की सतहों पर पहुँचता है, जिसका एक प्रतिशत से भी कम भाग लक्ष्य कीट तक पहुँचता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कीटनाशियों के उपयोग के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विधियों में पर्याप्त सुधार की संभावना है। साथ ही उनके संरूपण (फार्मूलेशन) और उन उपकरणों में भी सुधार की आवश्यकता है जिनके द्वारा उन्हें लक्ष्य तक पहुँचाया जाता है। इससे कीटनाशियों की निवेशित मात्रा में अवश्य कमी आएगी तथा पर्यावरण प्रदूषण भी कम किया जा सकेगा।

पेस्टीसाइडों के दीर्घस्थायित्व से होने वाले प्रदूषण से बचाव के लिए इनके

विकल्प जैसे- जैविक नियंत्रण, कृषीय क्रियाओं द्वारा नियंत्रण, भौतिक या यांत्रिक उपायों को अपनाया जाना आवश्यक है। वानपतिक उत्पत्ति वाले कीटनाशियों जैसे निकोटीन, पाइरेथ्रिन, रोटेनान, अजाडिरेक्टिन के इस्तेमाल को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है क्योंकि इनका जैव-विच्छेदन आसानी से हो जाता है और ये कोई विषैले अवशेष पदार्थ नहीं छोड़ते हैं। इस प्रकार पेस्टीसाइडों द्वारा होने वाले प्रदूषण से बचा जा सकता है।

❖ एसोशिएट प्रोफेसर
रसायन विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद, 211002 (उ.प्र.)
ई-मेल : dineshmanidsc@gmail.com

HBCSE

हरित रसायन: समय की मांग

◆ डॉ. अमर श्रीवास्तव

रसायन विज्ञान ने मानव जीवन को सुख-सुविधापूर्ण बनाने में बहुत योगदान दिया है। उसने अनेक जीवनोपयोगी पदार्थों का निर्माण किया है जिनका उपयोग दवाओं एवं स्वास्थ्य-रक्षा, रंग, बहुलक, वस्त्र, कृषि रसायन, भोजन में रसायन, सौंदर्य प्रसाधन, साबुन एवं अपमार्जक, स्मार्ट मैटीरियल, प्रोपैलेन्ट आदि के रूप में बहुतायत से होता है।

औषधियों के साथ-साथ एन्टीबायोटिक दवाओं की खोज ने जीवन को दीर्घायु बनाने के साथ-साथ उसे गुणवत्तापूर्ण भी बनाया है। कृत्रिम रंगों ने जीवन में रंग भरा है। इसी प्रकार अनेक कृषि रसायनों, उवर्रकों, कीटनाशकों एवं परिरक्षकों ने खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान करने में मदद की है। वस्त्रों, साबुन एवं अपमार्जकों, सौन्दर्य प्रसाधनों, प्लास्टिक एवं दूसरे बहुलकों के बिना आज जीवन की कल्पना भी मुश्किल है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि रसायन विज्ञान ने चमत्कार कर किया है।

विकास की कीमत

लेकिन भौतिक विकास के कई दुष्परिणाम भी आज हमारे सामने है जिसकी कीमत हमें चुकानी पड़ रही है। अधिकांश रसायनों का उत्पादन वृहद स्तर पर होता है। औद्योगिक घराने जो इन रसायनों का निर्माण करते हैं, वे इसे कम मूल्य पर निर्मित करना चाहते हैं। परंतु इस निर्माण प्रक्रिया में जल, मृदा एवं वायु प्रदूषण होता है और धरती पर सभी प्रकार का जीवन इससे प्रभावित होता है।

वर्ष 1960 में जापान में अनेक नवजात शिशुओं में जन्मजात बीमारियाँ पाई गईं जिसका कारण थैलिडोमाइड (Thaliomide) नामक दवा बताई गयी। सन् 1962 में प्रसिद्ध कीटनाशक DDT पर उंगली उठाई गयी तो 1970 में ओजोन छिद्र के लिए मुख्य रूप से क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFCs) को जिम्मेवार बताया गया। इसी प्रकार 1980 में अमेरिका के टाइम्स समुद्रतट के मृदा प्रदूषण के लिए प्रमुख खरपतवार नाशक 2,4-D एवं 2,4,5-T, तथा 1984 में भारत में घटी भोपाल गैस त्रासदी के लिए मिथाइल आइसोसायनेट (MIC) को जिम्मेदार माना गया।

इस प्रकार की दुर्घटनाओं ने लोगों का कृत्रिम रसायनों के दुष्प्रभाव की तरफ ध्यान आकृष्ट किया। लोगों के विरोध के फलस्वरूप ही अनेक देशों में क्लीन वाटर ऐक्ट, रिर्सोस रिकवरी ऐण्ड कन्जर्वेशन ऐक्ट, पोल्यूशन प्रिवेंशन ऐक्ट, आदि बने ताकि रासायनिक उद्योगों पर अकुंश लगाया जा सके।

HBCSE

यह सही है कि पर्यावरण को काफी नुकसान पहुँच चुका है। परंतु स्थिति ऐसी भी नहीं है कि अब हम धरती को बचा ही नहीं सकते। इस विषम परिस्थिति ने सरकार, नीति निर्धारकों के साथ-साथ वैज्ञानिकों का भी ध्यान आकृष्ट किया। इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में रासायनिक शोध में एक नए दर्शन का जन्म हुआ। यह है- हरित रसायन। इस दर्शन का विकास मुख्य रूप से पॉल अनास्टास एवं जॉन वार्नर ने किया था। पॉल अनास्टास को हरित रसायन का जनक कहा जाता है।

पॉल अनास्टास

जॉन वार्नर

हरित रसायन क्या है?

"हरित रसायन उन रासायनिक पदार्थों एवं प्रक्रियाओं के उपयोग एवं विकास पर जोर देता है जिसमें जहरीले प्रदूषक कारक पदार्थों का उपयोग एवं उत्पादन न हो या न्यूनतम हो।"

-पॉल अनास्टास, 2000

Green chemistry or sustainable chemistry may be defined as the benign chemistry that does not harm either to human or to the environment.

अतः हरित रसायन प्रदूषण को उसके उद्गम स्थल पर ही रोकने या घटाने पर जोर देता है। यह किसी रासायनिक प्रक्रिया की क्षमता बढ़ाने एवं उससे होने वाले नुकसान को घटाने पर जोर देता है। यह पर्यावरण रसायन से भिन्न है जो वातावरण में होने वाले रासायनिक गतिविधियों पर केंद्रित है।

एक मायने में हरित रसायन कोई नया रसायन विज्ञान नहीं है। यह रसायनों एवं रासायनिक विधियों के दुष्प्रभावों को घटाने की ही विधि है। रासायनिक उद्योगों के द्वारा हमारे वातावरण में सर्वाधिक प्रदूषण फैल रहा है। इन अपशिष्ट उत्पादों (waste products) के निस्तारण में बहुत-सा समय, प्रयास एवं धन व्यर्थ होता है। अतः प्रयास इस बात के किए जाते हैं कि निर्माण की ऐसी विधियां विकसित की जाएं कि इनमें अपशिष्ट पदार्थ न्यूनतम मात्रा में निर्मित हो, वातावरण में इनका प्रभाव न्यूनतम हो, तथा इनका निस्तारण भी सुविधाजनक हो।

इन विधियों के द्वारा रसायनों की निर्माण लागत भी घटती है। **अतः हरित रसायन का अपना अर्थशास्त्र भी है।**

वर्ष 1980 के पूर्व रसायन वैज्ञानिकों को अधिकांश रसायनों की विषाक्तता के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं थी। परंतु अब उन्हें इस बारे में पर्याप्त जानकारी होने के कारण वे निर्माण की ऐसी विधियों की खोज करते हैं जिसमें विषाक्तता के कारणों का निवारण किया जा सके। हरित रसायन रसायन शास्त्र की सभी शाखाओं- कार्बनिक, अकार्बनिक, भौतिक, विश्लेषणात्मक रसायन, जैव कार्बनिक, जैव अकार्बनिक, जैव रसायन, औषधि रसायन, बहुलक रसायन आदि पर लागू होती है।

हरित ही क्यों?(Why Green?)

हमें प्रकृति से सीखना चाहिए।

प्रकृति हरी है! प्रकृति सुन्दर है!!

हरे पौधे सर्वसुलभ CO_2 एवं जल से सर्वाधिक महत्व के उत्पाद हमारा भोजन (ग्लूकोज़) एवं प्राणदायिनी आक्सीजन गैस का निर्माण करते हैं।

क्या ऐसा ही प्रयास हमारा नहीं होना चाहिए?

जो जीवधारी हरे नहीं होते हैं वे प्राय : अपना भोजन निर्मित नहीं कर पाते। साथ ही आक्सीजन गैस का भी निर्माण नहीं कर पाते। वे मृतोपजीवी एवं परजीवी होते हैं। हमें मृतोपजीवी या परजीवी नहीं बनना है!!

हरित रसायन के मूल सिद्धांत

हरित रसायन को इसके 12 मूल सिद्धांतों के द्वारा समझा जा सकता है।

1. **अपशिष्ट पदार्थों की रोकथाम**

   अपशिष्ट पदार्थों के उत्पादन एवं बाद में उनके निस्तारण से कहीं बेहतर है कि अपशिष्ट पदार्थों का निर्माण ही न हो। कहा भी गया है- 'Prevention is better than cure'.

2. **परमाणु मितव्ययता**

   निर्माण की ऐसी विधियों का विकास एवं सुरक्षित पदार्थों का उपयोग किया जाए जिससे मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर न्यूनतम दुष्प्रभाव पड़े।

3. **सुरक्षित रासायनिक संश्लेषण**

   जहां तक संभव हो निर्माण की ऐसी विधियों का विकास एवं सुरक्षित पदार्थों का उपयोग किया जाए जिससे मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर न्यूनतम दुष्प्रभाव पड़े।

4. **सुरक्षित रासायनिक पदार्थों का निर्माण**

   ऐसे रासायनिक पदार्थों का निर्माण किया जाए जिनमें वांछित गुण तो हों

परंतु उनमें विषाक्तता न्यूनतम हो।

5. **सुरक्षित विलायकों एवं सहायक रसायनों का उपयोग**
   विलायकों, पृथककारी रसायनों एवं अन्य सहायक रसायनों आदि का न्यूनतम उपयोग किया जाए, या फिर उन विलायकों का उपयोग किया जाए जो निरापद हों।

6. **ऊर्जा दक्ष प्रक्रियाओं का उपयोग**
   अधिकाधिक अभिक्रियाओं को सामान्य तापमान एवं दाब पर संपन्न किया जाना चाहिए जिससे पर्यावरण को क्षति न हो तथा आर्थिक हितों की पूर्ति हो सके।

7. **नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग**
   जहां तक संभव हो वहां नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग किया जाए।

8. **अनावश्यक व्युत्पन्न बनाने से बचना**
   यौगिकों के अनावश्यक व्युत्पन्न बनाने से बचना चाहिए (जैसे ब्लॉकिंग समूह को लगाना एवं उसे हटाना)। इससे अनावश्यक अपशिष्ट तैयार होता है।

9. **उत्प्रेरण**
   उत्प्रेरक (विशेष रूप से जैव-उत्प्रेरक) जितने अधिक विशिष्ट हों उतने बेहतर परिणाम होंगे।

10. **उत्पादों का प्राकृतिक अपघटन**
    रासायनिक पदार्थ प्राकृतिक रूप से अपघटित होने चाहिए जो नुकसान रहित पदार्थ में अपघटित हो जाएं।

11. **प्रदूषण की रोकथाम के लिए वास्तविक समय विश्लेषण**
    विषाक्त पदार्थों के निर्माण के पूर्व ही उसकी लगातार जांच एवं रोकथाम की व्यवस्था की जानी चाहिए।

12. **दुर्घटना की रोकथाम के लिए सुरक्षित रसायन विज्ञान**
    ऐसे रसायनों का प्रयोग करना चाहिए जिससे कि आग, विस्फोट, गैसों का रिसाव, आदि से बचा जा सके।

हरित रसायन में प्रयुक्त की जाने वाली महत्वपूर्ण तकनीकें

1. हरित अभिकर्मकों, हरित विलायकों एवं हरित उत्प्रेरकों का रासायनिक निर्माण में उपयोग

HBCSE

2. सूक्ष्म तरंगों की मदद से निर्माण

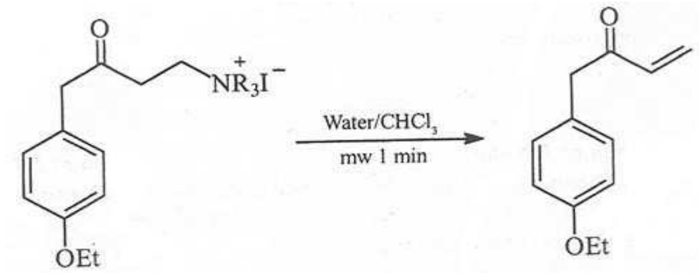

3. पराध्वनि की मदद से निर्माण

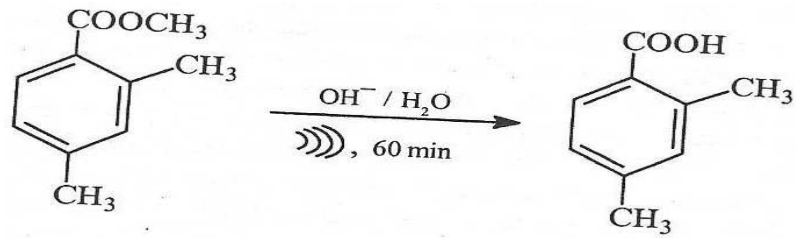

4. प्रावस्था स्थानान्तरण उत्प्रेरण

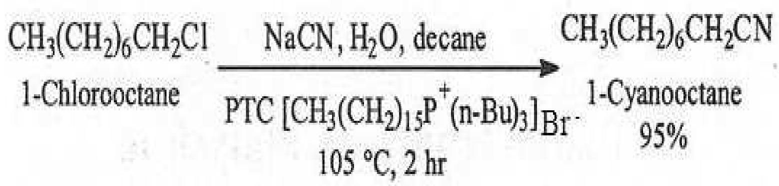

5. कार्बनिक निर्माण में जैव उत्प्रेरण

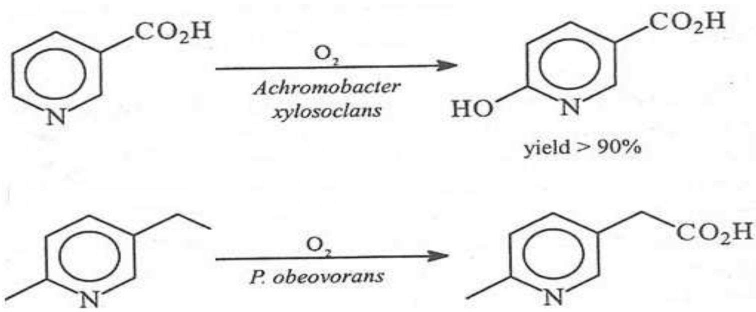

6. जलीय माध्यम में निर्माण

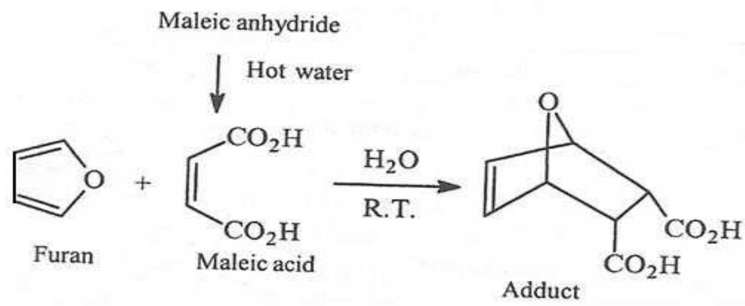

7. आयनिक द्रवों का विलायकों के रूप में प्रयोग (Use of ionic liquids as solvents)

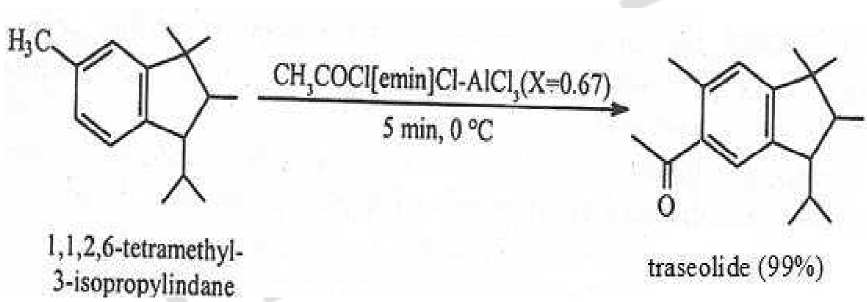

8. ठोस अवस्था में कार्बनिक निर्माण

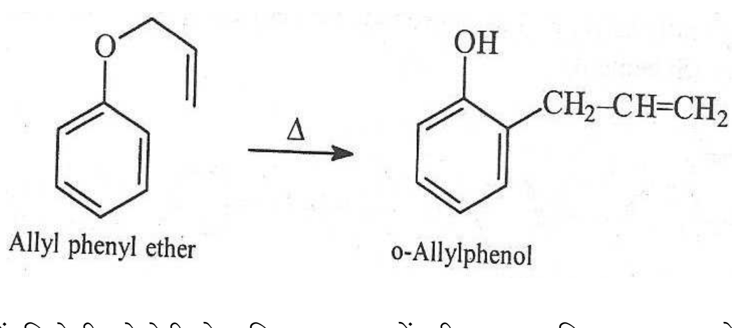

2005 में रियोजी नोवोरी ने हरित रसायन में तीन प्रमुख विकास बताए थे-

1. हरित विलायक के रूप में सुपरक्रिटिकल CO_2 का प्रयोग।
2. आक्सीकरण के लिए जलीय H_2O का प्रयोग
3. असममित निर्माण के लिए H_2 का प्रयोग

हरित रसायन की मदद से निर्माण

1. आईबुप्रोफेन (**Ibuprofen**)

सामान्य निर्माण

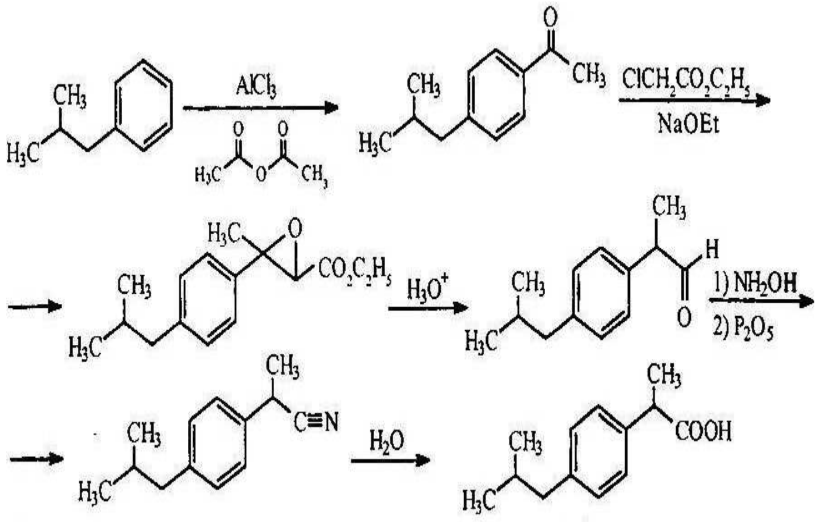

Ibuprofen.

हरित निर्माण

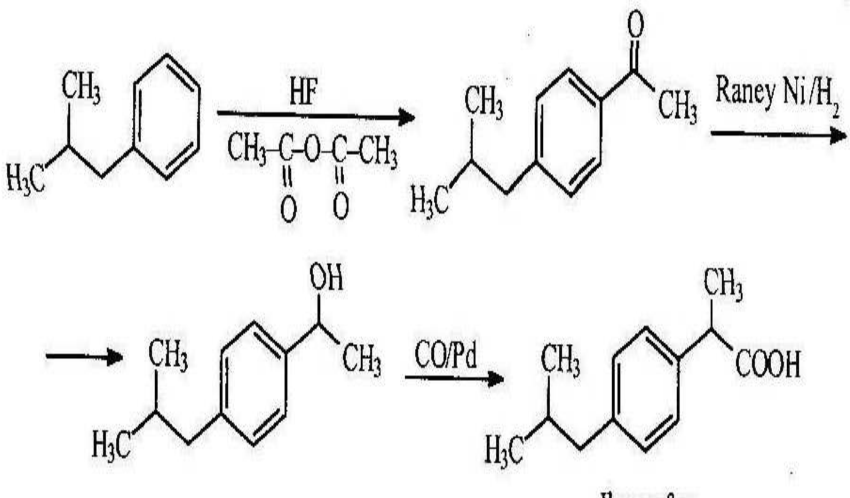

Ibuprofen

2. कैटेकॉल एवं ऐडिपिक अम्ल (**Catechol and adipic acid**) हरित निर्माण

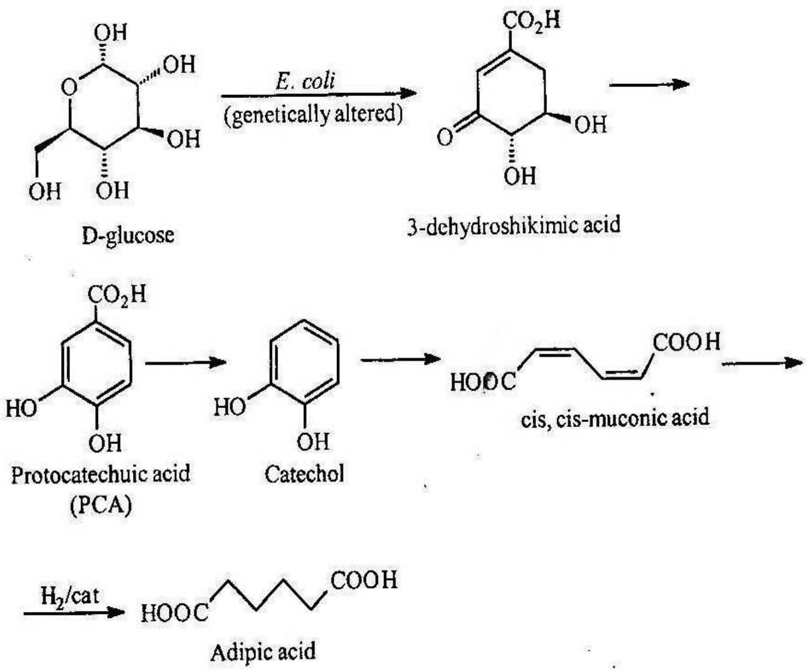

हरित रसायन के मूल स्तंभ

1. **उत्प्रेरित अभिक्रियाएं**

   अनेक रासायनिक अभिक्रियाओं को तापमान एवं दाब की सामान्य परिस्थितियों में उत्प्रेरक, विशेष रूप से एन्जाइम उत्प्रेरक की उपस्थिति में कराया जा सकता है। ये अभिक्रियाएं अधिक सक्षम (efficient) एवं अधिक विशिष्ट (specific) होती हैं। साथ ही उत्प्रेरक पुनः चक्रीत (recycled) हो जाते हैं। चूंकि उत्प्रेरक की उपस्थिति में रासायनिक अभिक्रियाएं कम ताप एवं दाब पर सम्पन्न हो जाती हैं जिनसे ऊर्जा की कम खपत होती है तथा आर्थिक लाभ की स्थिति प्राप्त होती है। उत्प्रेरित अभिक्रियाओं में सुजुकी अभिक्रिया, सोनोगसीरा अभिक्रिया, समाइल अभिक्रिया आदि अनेक ऐसे उदाहरण है जो सामान्य दशाओं (ambient conditions) में, नुकसानरहित विलायकों में आसानी से सम्पन्न हो जाते हैं, साथ ही उत्प्रेरक पुनः प्राप्त हो जाता है। आधुनिक कार्बनिक रसायनशास्त्र के विकास में उक्त अभिक्रियाएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

2. **कार्बनिक विलायकों के स्थान पर अन्य विलायक**

   कार्बनिक रसायनिक निर्माण में प्रायः क्लोरीनयुक्त विलायकों का प्रयोग

होता है जैसे क्लोरोफार्म, कार्बन टेट्राक्लोराइड, डाईक्लोरोमीथेन, एथिलीन क्लोराइड आदि। परंतु ये विलायक विषाक्त हैं तथा कोशिकाओं एवं ऊतकों को नुकसान पहुचांते हैं। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि प्रकृति हमेशा विलायक के रूप में जल को स्वीकार करती है। अतः जल एक सर्वमान्य विलायक है। इसी प्रकार सुपरक्रिटिकल द्रवों जैसे $scCO_2$ का भी प्रयोग बहुतायत से हो रहा है। जल एवं अन्य सुपरक्रिटिकल द्रव अभिक्रिया के दौरान एवं इसके उपरांत वाष्पन पर नुकसानरहित गैसों का निर्माण करते हैं। विलायक के रूप में आयनिक द्रवों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

3. नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग

लगभग 95 प्रतिशत यौगिकों का निर्माण कोयले एवं पेट्रोलियम उत्पादों से होता है। जैसा हम जानते हैं कि कोयला एवं पेट्रोलियम अनवीकरणीय संसाधन हैं तथा निकट भविष्य में ये बहुत सुलभ नहीं रहेगे। साथ ही कार्बनिक होने के कारण ये स्वयं में आक्सीकृत होकर CO_2 में परिवर्तित हो जाते हैं जो एक प्रमुख ग्रीनहाउस गैस है तथा ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेवार है। अतः एक बेहतर विकल्प एवं नवीकरणीय संसाधन की खोज बहुत आवश्यक है।

बायोमास (Biomass) जो कार्बोहाइड्रेट का एक प्रचुर स्रोत है तथा नवीकरणीय संसाधन होने के कारण एक बेहतर विकल्प हो सकता है। बायोमास में उपस्थित D-ग्लूकोज़, एन्जाइम की मदद से लैक्टिक अम्ल में आसानी से परिवर्तित हो सकता है, जो एलिफैटिक यौगिकों के निर्माण के लिए एक उपयुक्त प्लेटफार्म का कार्य करेगा। इसी प्रकार, D-ग्लूकोज़ का E.coli नामक जीवाणु द्वारा परिवर्तन करने से कैटेकॉल प्राप्त होता है जो ऐरोमैटिक यौगिकों के लिए उपयुक्त प्लेटफार्म का कार्य करता है।

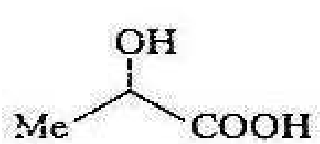

Lactic acid

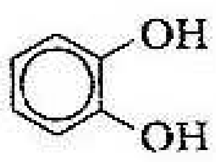

Catechol

गन्ना भी एक उत्कृष्ट नवीकरणीय संसाधन है। इससे एथेनॉल बनाया जाता है जो अनेक कार्बनिक पदार्थों के लिए शुरूआती पदार्थ है। इसी प्रकार गन्ने के अपशिष्ट पदार्थ- खोई या बेगास (bagasse) से ग्लिसरॉल, ब्यूटेनॉल, साइट्रिक अम्ल, ऐकोनिटिक अम्ल आदि प्राप्त होता है। चूंकि

HBCSE

कार्बोहाइड्रेट (बायोमास) से प्राप्त होने वाले यौगिक जल में घुलनशील होते हैं अतः उपर्युक्त परिवर्तन जलीय माध्यम में ही सम्पादित होंगे। इसलिए कोयले एवं पेट्रोलियम से होने वाले परिवर्तन विधियों को अब इस नए परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित करना होगा।

4. **परमाणु मितव्ययता**

हरित रसायन में इस बात का प्रयास किया जाता है कि किसी रासायनिक अभिक्रिया में अपशिष्ट पदार्थ न बनें या न्यूनतम बनें। दूसरे शब्दों में, सभी अभिकर्मक पूरी तरह से एक ही उत्पाद में परिवर्तित हो जाएं। इससे इन अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण की समस्या से भी बचा जा सकेगा।

हरित रसायन में परमाणु मितव्ययता इसीलिए योगात्मक अभिक्रियाओं, आणविक पुर्नविन्यास अभिक्रियाओं एवं पेरीसाइक्लिक अभिक्रियाओं पर अधिक जोर देता है जिसमें एक ही उत्पाद बनता है। इन अभिक्रियाओं में परमाणु मितव्ययता 100 प्रतिशत होता है। इसके विपरीत प्रतिस्थापन अभिक्रियाओं एवं विलोपन अभिक्रियाओं में यह प्रतिशत काफी कम होता है। उदाहरण के लिए-

$$\%atom\,economy = \frac{Molecular\ Weight\ of\ Desired\ Product}{Molecular\ Weight\ of\ All\ Reactants} \times 100$$

$$CH_2{=}CH_2 + X_2 \longrightarrow X{-}CH_2{-}CH_2{-}X$$

(Addition reaction)

योगात्मक अभिक्रिया

$$NH_4CNO \xrightarrow{\Delta} NH_2CONH_2$$

आणविक पुनर्विन्यास अभिक्रिया

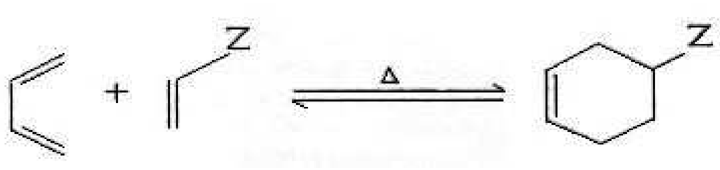

पेरीसाइक्लिक अभिक्रिया

5. **उत्पादों का प्राकृतिक अपघटन**

पिछले कई दशकों में रसायनविदों ने अनेक नए एवं वांछित गुणों वाले अणुओं का निर्माण किया, परंतु उन्होंने इसका ध्यान नहीं रखा कि वे प्राकृतिक रूप से अपघटित हो सकें तथा पुनः चक्रीत हो सकें। लेकिन सभी प्राकृतिक उत्पाद समय से नष्ट हो जाते हैं तथा वातावरण में पुनः चक्रीत हो जाते हैं। क्लोरोफ्लोरो कार्बन सामान्य परिस्थितियों में अत्यंत स्थायी अणु होने के कारण ओजोन छिद्र के लिए जिम्मेवार माने जाते हैं। इसी प्रकार पॉलीक्लोरो कार्बनिक कीटनाशी जैसे DDT, एल्ड्रिन आदि अणुओं के स्थायी प्रकृति के कारण इसने पूरे भोजन संजाल (food web) को प्रभावित किया। इसी वजह से इन कीटनाशकों को जीनोबायोटिक (Xenobiotic) कहते हैं। प्रसिद्ध खरपतवारनाशी 2,4-D एवं 2,4,5-T जो फीनॉक्सीऐसीटिक अम्ल के व्युत्पन्न हैं, आसानी से अपघटित हो जाते हैं। परंतु इनके अपघटित उत्पाद- dioxin- कैंसर उत्पन्न करने वाला पदार्थ है। परिणामतः इन सभी को प्रतिबन्धित करना पड़ा। परंतु ये तब तक वातावरण को काफी नुकसान पहुंचा चुके थे।

मानव जीवन की जीवन-रेखा बन चुके प्लास्टिक, प्राकृतिक रूप से अपघटित न होने के कारण,आज प्रदूषण के सबसे बड़े कारक हैं। इसके विपरीत, साबुन एवं अपमार्जक प्रकृति में आसानी से अपघटित हो जाते हैं। परंतु जिन सूक्ष्म जीवों के द्वारा जलीय तंत्र में इनका अपघटन होता है, वे उस तंत्र के घुलित आक्सीजन (dissolved oxygen) की मात्रा अत्यंत घटा देते हैं। अतः प्राकृतिक रूप से अपघटित होने के बावजूद साबुन एवं अपमार्जक एक गंभीर जल प्रदूषक हैं।

जब भी कोई नया उत्पाद निर्मित किया जाता है तो इस बात की आशंका सदैव रहती है कि उसमें विषाक्तता हो। लेकिन यदि हमें इस विषाक्तता का कारण पता चल जाए तो आणविक संरचना में उचित परिवर्तन करके विषाक्तता को समाप्त या कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, DDT की संरचना में परिवर्तन करके मिथाक्सीक्लोर नामक कीटनाशी तैयार किया गया जो DDT की समान कीटनाशी क्षमता रखता है परंतु जो वातावरण एवं मानव के लिए विषाक्त भी नहीं है, तथा आसानी से अपघटित हो जाता है।

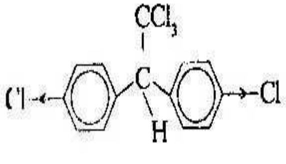

DDT

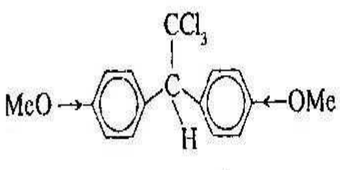

Methoxy chlor

6. ऊर्जा दक्ष प्रक्रियाएं

धातुकर्म एवं अन्य रासायनिक उद्योगों में ऊर्जा की अत्यधिक खपत होती है। संपूर्ण ऊर्जा का 1/7 भाग इन उद्देश्यों पर खर्चा होता है। हरित रसायन में ऐसी रासायनिक विधियों पर बल दिया जाता है जिसमें ऊर्जा की खपत न्यूनतम हो। इसके लिए सक्षम एवं जैव उत्प्रेरक जो पुनर्प्राप्त हो सके तथा ताप एवं दाब की सामान्य परिस्थितियों पर संपन्न हो सके, का प्रयोग किया जाए। आसवन, क्रिस्टलीकरण, वाष्प आसवन, उर्द्धपातन आदि से बचना चाहिए। साथ ही सूक्षम तरंगों एवं पराध्वनि तरंगों की मदद भी रासायनिक संश्लेषण में ली जानी चाहिए।

हरित रसायन का भविष्य

आज यह समय की मांग है कि रासायनिक पदार्थों के उपयोग एवं निर्माण में हरित रसायन के मूल सिद्धांतों का प्रयोग किया जाए। यदि हम इनका उपयोग बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से करेगें तो हम पर्यावरण, अर्थ एवं समाज का भला कर सकेंगे।

अन्त में.....

वास्तव में हरित रसायन एक वैज्ञानिक सोच, कार्यशैली एवं रासायनिक दर्शन है। अपने पर्यावरण, अर्थ एवं समाज की संरक्षा ही इसका मूल उद्देश्य है। संभव है कि कुछ लोगों को यह एक छोटा कदम प्रतीत हो परंतु व्यक्ति, समाज एवं मानवता के लिए यह किसी महान प्रयास से कम नहीं.......

❖ एसोशिएट प्रोफेसर,
रसायन विभाग,
डी.ए.वी. कॉलेज,
कानपुर- 208001
ई-मेल : asri1406@gmail.com

HBCSE

आधुनिक वनस्पति विज्ञान के जनक : लीनियस

◆ **डॉ. प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव**

वनस्पति विज्ञानियों के राजकुमार, अपनी आयु के बीस-पच्चीस वर्षों के मध्य वह इस सम्मानजनक उपाधि के अधिकारी बन गये थे। कारण थी उनकी विलक्षण मेधाशक्ति, परिश्रम और निष्ठा। इस सम्मान को पाने के लिए उन्होंने बाल्यावस्था में थोड़ा होश सँभालते ही चैतन्य होकर कार्य करना आरंभ कर दिया था। अठारहवीं शती की समाप्ति तक लीनियस सारे विश्व के महानतम वनस्पति विज्ञानी बन चुके थे। चतुर्दिक प्रकृति, पेड़-पौधे, फूल और हार्दिक प्रसन्नता का भाव अलौलिक था। कहा जाता है कि एक बार इंग्लैंड प्रवास के दौरान पटनी हीथ नामक स्थान पर जब उन्हें एक दुर्लभ प्रजाति के पौधे को देखने का अवसर मिला तो वे तुरन्त घुटनों के बल नतमस्तक होकर उस पौधे के समक्ष पूजा की मुद्रा में बैठ गए।

कार्ल वॉन लिने, जिन्हें आज सारा विश्व लीनियस के नाम से जानता है, का जन्म डार्विन से लगभग एक शताब्दी पहले 23 मई सन् 1707 में हुआ था। स्थान था दक्षिणी स्वीडन का एक छोटा-सा गाँव राशुल। उनके पिता निल्स लीनियस ने पादरी होने के साथ मन में उच्च्व शिक्षा के सपने भी पाल रखे थे। किन्तु अट्ठारहवीं शती के प्रारंभ के दशकों में स्वीडन की राजनीतिक हलचलों, युद्धों और उतार-चढ़ाव ने उन्हें कभी अपने हृदय के कोने में पाले सपने को पूरा करने का अवसर नहीं दिया। यह सपना पिता की अन्यान्य विरासतों के साथ पुत्र को स्थानान्तरित हो गया। पिता ने अपनी एक और गुण अपने बेटे में बीजारोपित किया था- वह था प्रकृति के प्रति उद्दाम प्रेम। कार्ल लीनियस ने प्रकृति के विषय में अपने प्रेम और समझ का सारा श्रेय अपने पिता को ही दिया है। उन प्रारंभिक दिनों में उन्होंने अपने पिता से ही उनके पादरी-घर के संलग्न उद्यान से एक-एक फूल और पौधे का नाम सीखा। किन्तु नाम से भी अधिक मूल्यवान बात यह थी कि एक धर्मगुरू के आश्रम के परिवेश के कारण पिता-पुत्र प्रकृति के उस सौन्दर्य के संबंध में एक रहस्यमय भाव से उत्प्रेरित रहते थे। बालक लीनियस के लिए वह उद्यान, "गार्डेन आफ ईडेन" का लघुस्वरूप था जिसका उद्घाटन उनके लिए प्रभु और उनके पिता की कृपा से हुआ था।

कार्ल वॉन लिने

उस समय की प्रथानुसार यह सुनिश्चित-सा था कि लीनियस अपने पिता के बाद उस स्थान के पादरी का पद ग्रहण करेंगे। परन्तु अपने सपनों और अपने विचारों से अनजाने ही पिता ने पुत्र में एक पादरी के स्थान पर एक प्रकृतिविद् के

बीज अंकुरित कर दिए थे। वर्ष 1720 के दशक में प्रकृति विज्ञान के अध्ययन के लिए कोई भी आधार पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। थी तो केवल "बाइबिल", और दो हजार वर्ष पूर्व की अरस्तू द्वारा पशुओं पर लिखी गई एक पुस्तिका। दूसरी पुस्तकों के अभाव में वे ही अधिकारिक रूप से मानी जानी जाती थी। इन्हीं अल्पज्ञान वाले स्रोतों और अपने पिता के उद्यान से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर कार्ल लीनियस का मस्तिष्क धीरे-धीरे पुष्ट हो रहा था। इसी प्रेरणा से आगे चलकर वह वनस्पति विज्ञान की महान पुस्तकों के प्रणेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए और आज संसार के हर पुस्तकालय में वनस्पति विज्ञान के संदर्भों की खोज के लिए उनकी पुस्तकों का उपयोग करना अनिवार्य माना जाता है।

कार्ल लीनियस की माँ एक धनी मानी घराने की रोबीली और महत्वाकांक्षी महिला थी। उनकी दृष्टि में लीनियस की शैक्षिक प्रगति बहुत निराशाजनक थी। एक बार तो उन्होंने कार्ल को एक जूता बनाने वाले के सहायक के रूप में भेजने का मन बना लिया था। सौभाग्यवश उनके पिता के हस्तक्षेप और कार्ल के स्कूल बदल देने के कारण विज्ञान जगत एक महान वनस्पति विज्ञानी से वंचित होने से बच गया। उन्हीं दिनों कार्ल ने एक दिन सुस्पष्ट शब्दों में चर्च में पादरी न बनने के अपने निश्चय के बारे में घर में लोगों को सूचित कर दिया। कार्ल के पिता पहले तो इस फैसले से अचंभित रह गए किन्तु विज्ञान के प्रति पुत्र की अदम्य जिज्ञासा और रुचि को देखते हुए तथा कार्ल की इच्छा का समादर करते हुए अंततः सहमत हो गए। पिछले कुछ वर्षों में उन दोनों के मध्य विज्ञान के प्रति समर्पित निष्ठा का एक गुप्त संबंध बन गया था। पुत्र ने एक चिकित्सक और वनस्पतिशास्त्री बनने का निर्णय ले लिया था। पूरे एक वर्ष तक पिता-पुत्र पुष्पों और पक्षियों पर प्राप्त समस्त साहित्य का अध्ययन करते रहे। पर इन कार्यकलापों से कार्ल की माँ पूर्णतः अनभिज्ञ रखी गई थीं। उनके लिए तो पुत्र का पादरी न बनने का निर्णय एक प्रकार से धर्मद्रोह जैसी निंदनीय बात थी। अपने निर्णय को सफलीभूत करने की इच्छा से लीनियस ने लुण्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। उनका औषधीय पादपों का अध्ययन उनकी कक्षा के शैक्षिक स्तर से बहुत आगे था। उनके अध्यापकगण उनके तत्स्मबन्धी ज्ञान की मौलिकता से स्तब्ध रह जाते थे। अध्ययन काल में ही लीनियस ने पक्षियों कें चोंच और पंजों को आधार बनाकर वर्गीकरण की एक नई पद्धति विकसित की। उसी अवधि में जब उन्होंने अपनी उम्र का बीसवाँ दशक भी पूरा नहीं किया था, अपने जीवन का महानतम आविष्कार किया। यह आविष्कार था पुष्पों का उनकी लैंगिक विशेषताओं के आधार पर पुनर्विन्यास।

ऐसा माना जा सकता है कि यह लीनियस द्वारा किया गया पूर्णतः मौलिक कार्य नहीं था क्योंकि लीनियस से लगभग दस वर्ष पूर्व वैलान्त नामक एक लेखक ने इसी दिशा में कुछ कार्य प्रारंभ किया था। लेकिन इस आधार पर वर्गीकरण संपादित करने के पूर्व ही वैलान्त की मृत्यू हो गई। कार्ल लीनियस ने अपनी माता से विरासत में सुव्यवस्था के जो गुणसूत्र प्राप्त किए थे इसी के आधार पर उन्होंने

HBCSE

अपना सिद्धांत सुनिश्चित किया। इस सिद्धांत को उन्होंने लैटिन में लिखे गए अपने एक शोध-निबंध में प्रतिपादित किया और उसे ग्रीक भाषा में अनूठा शीर्षक दिया "फ्लोरल नपशल्ज" जिसका अर्थ था- "पौधों का विवाह" यह शोध निबंध उपसला नामक स्थान से सन् 1729 में प्रकाशित हुआ। उस समय कार्ल लीनियस की उम्र थी मात्र बाईस वर्ष। उपसला के विधार्थियों के मध्य यह शोध निबंध बहुत लोकप्रिय होने लगा जिसका कारण था कि लीनियस की भाषा तो गद्य थी। पर उनके भाव और प्रस्तुतिकरण बेहद काव्यात्मक थे। लीनियस लिखते हैं कि "फूलों के विवाह" के उस शुभ क्षण के सौन्दर्य को द्विगुणित करने के लिए प्रकृति द्वारा उसकी पूर्णता हेतु सब कुछ पहले से ही सुनिश्चित किया जा चुकता है। सुंदर रंग-बिरंगी कोमल पंखुड़ियों के बिस्तर पर सुगंध के बीच नर-मादा पुष्पों के मिलन की यह प्रक्रिया सम्पन्न होती है। वर्ष 1729 में पादप संयोजन के उनके उस सिद्धांत से लोग अनभिज्ञ थे जहाँ पुष्पों में भी प्राणी जगत के समान यौन संबंध का संकेत दिया गया था। उस समय के लिए यह बड़ा अभिनव और मौलिक विचार था। इस शोध ने उनके यश में इतनी वृद्धि की कि तीसरे वर्ष का विधार्थी होते हुए भी इस नवीन खोज के विषय में व्याख्यान देने के लिए उन्हें आमंत्रित किया गया और लगभग तीन-चार सौ उत्सुक लोग उन्हें सुनने के लिए आये। इसके तुरंत बाद ही उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध "लीनियस सिस्टम" के अंतर्गत लैंगिक विशेषताओं के आधार पर पौधों को इक्कीस वर्गों (आर्डर्स) में संयोजित किया। लुण्ड विश्वविद्यालय में तीन वर्ष व्यतीत करने के बाद जब वे अपने घर वापस गए तब अपने समय के अत्यंत संतुलित सिद्धांत के प्रतिपादक तथा एक सुयोग्य अध्यापक के रूप में अर्जित ख्याति की उपाधियाँ उनके नाम थीं।

आगे के कार्य के लिए कार्ल लीनियस को पादप जगत के वैविध्य की गहरी छानबीन करने की आवश्यकता थी। अपने वर्गीकरण के तरीके के लिए उन्हें बड़ी प्रचुर संख्या में नमूनों की आवश्यकता थी। इस दृष्टि से उनके अपने देश स्वीडेन के उत्तरी भाग अछूता वन खण्ड ही सबसे निकट था। बर्फ के पिघलते ही कार्ल लीनियस पर्वतों और ग्लेशियरों से भरे अछूते वनखण्ड की ओर एक घोड़े पर सवार होकर चल पड़े। इस यात्रा में उनके साथी थे एक अनुवीक्षण यंत्र और लेखन की सामग्री। इसके साथ उन्होंने एक दूरवीक्षण यंत्र भी अपने साथ रखा था। 25 वर्ष की आयु में 1732 ई. में जब उन्होंने इस यात्रा पर प्रस्थान किया तो अपनी बाल्यावस्था के धार्मिक परिवेश के कारण प्रगाढ़ विश्वास था कि वह इस प्रकार के कार्य के लिए ईश्वर के द्वारा विशेष रूप से नियोजित किए गए हैं। एक दिव्य सर्वशक्तिमयी सत्ता ने उन्हें इस कार्य के लिए चयनित किया है। वह जिस प्रदेश (लैपलैण्ड) में जा रहे थे वहाँ की लैप भाषा का एक शब्द भी नहीं जानते थे और उनके पास खाने के लिए रेन्डियर का मांस और ठंडा पानी ही मात्र था- न नमक, न रोटी। वह अपनी हिम्मत पर स्वयं ही विस्मित थे क्योंकि यह सारी सुविधायें और यह दुरुह यात्रा मात्र पौधों के नमूने इकठ्ठा करने के लिए ही तो थी। उनकी यह यात्रा सुनने में चाहे जितनी भी अव्यवहारिक प्रतीत हो पर उनके मस्तिष्क में उनका लक्ष्य पूर्णतः स्पष्ट था। अपनी इस एकाकी शोध को पूरा करने

के लिए उन्होंने विश्वविद्यालय को कुछ आर्थिक सहयोग देने के लिए प्रार्थना-पत्र भी भेजा।

मार्ग में चलते हुए उनकी नोटबुक वहाँ के आदिवासियों की जीवनशैली पर उनके निरीक्षण-प्रेक्षण, उनकी फसलों, पशुओं और उनके द्वारा बनायी जाने वाली वशीकरण औषधियों पर उनके "रिमार्क्स" से निरंतर भरी जा रही थी। नमूनों का डिब्बा लबालब भरकर फूल गया था। लैपलैण्ड से आगे बढ़कर यह यात्रा नार्वे की ओर ऐसे प्रदेश तक बढ़ चुकी थी जहाँ शापर यद ही कभी किसी ने पैर रखा हो। यात्रा की कठिनता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अक्सर उन्हें गहरी नदियों, दलदलों और घने जंगलों के बीच से, कभी बारिश से तर-ब-तर और कभी-कभी भूखे पेट गुजरना पड़ता था और कभी-कभी तो खाने को मात्र सूखी मछलियाँ (जो वे साथ ले गए थे) और जंगली स्ट्राबेरी के आलावा कुछ भी नहीं मिलता था। इतनी कठिनाइयों के मध्य भी वहाँ के प्राकृतिक दृश्य, सुन्दर फूलों से भरे पेड़ और झाड़ियों तथा पक्षियों की विविधता उन्हें प्रसन्नता से भर देती थी। उसी यात्रा के बीच उन्हें मोतियों का संवर्धन करने वाला केन्द्र दिखा। उसी के निरीक्षण के दौरान उनके मस्तिष्क में एक अभूतपूर्व विचार कौंधा कि सीपी के अंदर आकार ले रही आंतरिक परतों को क्या कृत्रिम रूप से आकार देकर मोती का निर्माण किया जा सकता है? आगे चलकर उस क्षणिक स्फुरित विचार ने वास्तविकता का रूप प्राप्त किया। यात्रा में आगे उन्हें लूलिया (Lulea) की लौह खानों में धातुओं के परीक्षण की प्रक्रिया सीखने का भी अवसर मिला।

इस यात्रा का सबसे सकारात्मक पक्ष यह था कि लीनियस को स्वयं अपनी क्षमताओं के पूर्ण आकलन का पूरा अवसर मिला। कुछ महीनों की यात्रा के बाद अक्टूबर तक वे उपसला की रॉयल सोसायटी में व्याख्यान देने के लिए उपस्थित हो गए। कार्ल वॉन लिने अपने विचारों के प्रस्तुतिकरण में कभी कमजोर नहीं पड़े। एक विचित्र बात यह हुई कि इस लैपलैण्ड यात्रा की मात्र एक छोटी-सी रिपोर्ट ही तत्कालीन "हैम्बर्ग" न्यूज पेपर में प्रकाशित हुई। उस यात्रा का सम्पूर्ण वृतांत लगभग चालीस वर्षों के उपरान्त लीनियस की मृत्यु के पश्चात् ही छप सका। अब लीनियस उपसला में ही रुक गए। उन दिनों वे वनस्पति विज्ञान और औषधि विज्ञान पर व्याख्यान देते थे और कभी-कभी कोई विनिबंध (मोनोग्राफ) प्रकाशित करा लेते थे। उनकी अर्जित सफलता उनके आस-पास के लोगों को रास नहीं आ रही थी और उनसे ईर्ष्या करने वालों की संख्या बढ़ रही थी। इसका कारण यह भी था कि उन्होंने अभी तक चिकित्सा की स्नातक उपाधि भी नहीं प्राप्त की थी।

किन्तु इसी समय कार्ल लीनियस के जीवन में एक सुखद मोड़ आया। उन्हें स्वीडेन के अलग-अलग नगरों में व्याख्यान के लिए बुलाया जाता था। ऐसे ही एक यात्रा में जब वे फालून गए तो वहाँ सारा एलिजाबेथ मोरिया नामक एक अठ्ठारह वर्षीय लड़की के प्रेम में पड़ गये। समय था 1734 के क्रिसमस का। वह नगर के प्रमुख चिकित्सक की बेटी थीं और उनकी पूरी दौलत की एक मात्र वारिस।

संभवतः इस तथ्य ने लीनियस को अधिक आकर्षित किया हो क्योंकि वे स्वयं तब तक केवल एक भावी चिकित्सक थे। परंतु लड़की के पिता ने यहाँ-वहाँ घूमने वाले डिग्रीविहीन युवक को अपनी बेटी देने से इंकार कर दिया। साथ ही यह राय दी कि वह पहले हालैण्ड जाकर सम्पूर्ण यूरोप में सुविख्यात चिकित्सक हर्मन बोएरहाव के निर्देशन में चिकित्सा की अपनी शिक्षा पूरी करें।

उसी दौरान लीनियस को विदेश यात्रा का अवसर मिला। लीडेन नामक स्थान, जहाँ वह गए, उस समय प्रकाशन का केन्द्र था। वहाँ पहुँचकर लीनियस ने सर्वप्रथम "एग्यू" (शीतज्वर) पर अपना निबंध लैटिन भाषा में प्रकाशित करवाया। उनके अनुसार शीतज्वर का मुख्य कारण चिकनी मिट्टी थी। परंतु उनका मुख्य उद्देश्य जो डॉ. हर्मन बोएहराव से प्रशिक्षण ग्रहण करना था, वह कठिन दिख रहा था। डॉ. हर्मन बोएहराव एक अत्यंत व्यस्त चिकित्सक थे। उनसे संपर्क कर पाना दुष्कर था। परंतु धुन के पक्के लीनियस ने यह करिश्मा कर दिखाया। और उनसे मुलाकात के दौरान बोएहराव उन्हें अपना बगीचा दिखाने ले गये तो लीनियस ने अतिदुर्लभ पौधे को पहचान कर तुरंत उसका नाम बता दिया। इस घटना से डॉ. बोएहराव इतना प्रभावित हुए कि तुरंत ही लीनियस को अपना शिष्य बनाने के लिए तैयार हो गए। और इस प्रकार लीनियस लीडेन में व्यवस्थित हो गए।

संयोग था कि उस समय वहाँ जार्ज क्लिफर्ड नामक एक धनिक व्यापारी का विविध छटाओं से युक्त एक बड़ा मनोहारी उद्यान था। जहाँ सुरम्य वृक्षों के अतिरिक्त झीलें, मूर्तियाँ, तापगृह, अमूल्य आर्किड, कैक्टस तथा नारिकेल आदि चतुर्दिक सजे हुए थे। जार्ज क्लिफर्ड मतिभ्रम रोग से ग्रस्त होने से पीड़ित थे और इसलिए उन्हें प्रतिदिन एक चिकित्सक द्वारा इन्जेक्शन की आवश्यकता पड़ती थी और लीनियस इस काम के लिए बिल्कुल उपयुक्त थे। इस व्यवस्था से लीनियस को दुर्लभ वृक्षों के अध्ययन और उनकी पहचान और नामकरण करने का दुर्लभ संयोग प्राप्त हो गया। इस समय लीनियस कुछ समय के लिए स्लोन का प्रसिद्ध चेल्सिया का उद्यान देखने के लिए इंग्लैंड भी गये। पर लीडेन में जार्ज क्लिफर्ड द्वारा प्रदान किया गया वृक्षों और पादपों के अध्ययन और उन पर शोध का एक बड़ा दुर्लभ अवसर था। अपनी लैपलैण्ड यात्रा में उन्होंने शोध की संभवनाओं को महसूस किया था परंतु हालैण्ड प्रवास ने उन्हें पुस्तकों के प्रकाशन द्वारा प्राप्त होने वाली विश्वविख्याति के प्रति सजग कर दिया। यही प्रेरणा थी कि उनकी "क्लैसिफाइड बॉटनी" और "लैपलैण्ड प्लांट्स" की सूची यहीं से प्रकाशित हुए। इन्हीं प्रकाशनों ने तीस वर्ष से कम आयु में उन्हें "वनस्पति विज्ञानियों का राजकुमार" के रूप में प्रतिष्ठा दिलवा दी। बोएहराव और क्लिफर्ड उन्हें हालैण्ड में ही रोकना चाहते थे और वहाँ रुकने पर संभवतः बोएहराव का वारिस बनकर उन्हें कई गुना अधिक प्रतिष्ठा मिली होती। परंतु लीनियस को इसी समय पेरिस की "एकेडेमी आफ साइंसेज" से एक पद का आमंत्रण मिला और उसके बाद वे सारा एलिजाबेथ से विवाह करने के लिए फालून चले गए।

इसके पश्चात् कार्ल लीनियस ने कभी अपनी जन्मभूमि को नहीं त्यागा। लीनियस ने अपने जीवन में अभूतपूर्व ख्याति और अपार संपदा के साथ तत्कालीन अग्रगण्य औषधिविज्ञानी, राजकीय चिकित्सक और अंततः उपसला विश्वविद्यालय के "रेक्टर मैग्नेफिकस" की उपाधि प्राप्त की लीनियस की प्रकाशित पुस्तकों लीनियस ने जो मोनोग्राफ लिखे उनके विषय प्रकृति विज्ञान के हर पक्ष से संबंधित थे। इसमें से कई उनके लीडेन प्रवास के समय ही प्रकाशित हुए। उस समय उनके प्रचुर लेखन की अधिकांश सामग्री प्रकाशित भी नहीं हो सकी। उनके लेखन के पीछे एक प्रमुख कारण यह भी था कि वे संभवतः कहीं भी अव्यवस्था सहन नहीं कर सकते थे। अतः वे वनस्पतियों के नामकरण में भी अव्यवस्था नहीं सह पाये। अपने "फ्लोरल नपशल्ज" नामक प्रबंध से ही वे फूलों का उनके लिंग के आधार पर एक क्रमिक वर्गीकरण करने की ओर चल पड़े थे। यह प्रथम प्रयास तो छोटा था, परंतु आगे चलकर 1735 में उन्होंने अपनी इस पद्धति को और विकसित किया और उसे अधिक संख्या में पौधों पर लागू किया।

लीनियस ने पुष्पों को 24 वर्गों में विभक्त किया जो सभी नर जननांग (स्टेमेन) पर आधारित थे। हर क्लास को "आर्डर्स" में पुनर्विभाजित किया गया और इस बार का विभाजन मादा जननांगों (पिस्टिल) पर आधारित था। इस प्रकार हर पुष्प के अब दो लैटिन नाम थे जो किसी वनस्पति विज्ञानी को प्रकृति की योजना में उनके उचित स्थान का पता बताते हैं। लीनियस ने पौधों के वर्गीकरण को एक लेखा कार्य के उबाऊपन से ऊंचा उठाकर सृजनात्मक आयाम दिया। धीरे-धीरे उनके विचार पूरे विश्व में फैलने लगे और वनस्पति विज्ञानियों ने गंभीरता से उस पर विचार करना शुरू कर दिया।

उनकी "जेनेरा प्लैन्टेरम" अब हर वनस्पति विज्ञानी के हाथ में वनस्पतियों के रूप को जानने के लिए धर्मग्रन्थ जैसी अनिवार्य वस्तु हो गई है। पौधों को सही पहचान के उनसे औषधियों के निर्माण के लिए यह चिकित्सकों के लिए बहुत आवश्यक पुस्तक थी क्योंकि लीनियस द्वारा प्रदत्त नाम और पहचान भ्रम की कोई जगह नहीं छोड़ते थे। पौधों के नामकरण की दिशा में लीनियस ने एक और क्रांतिकारी कदम उठाया। उन्होंने स्थानीय प्रकार के, अथवा चर्चों से प्रमाणित नामों (चर्चों से संलग्न दिखने के कारण) में परिवर्तन लाकर अधिकांश के नाम उनकी विशेषताओं और उनके दृश्य रूप के आधार पर रखे। वह ऐसे नाम नहीं देना चाहते थे जो कुछ दिन बाद कुछ नये गुण दिखने पर आये दिन बदलने पड़े। उनके द्वारा दिए गए नामों की संपूर्णता और स्थिरता ऐसी थी कि वे जब तक प्रकृति रहे, चलने वाले थे। उनकी पुस्तक "सिस्टेमा नेचुरी" के नवीन संस्करण प्रकाशित होते रहे और उनकी कीर्ति चतुर्दिक प्रसारित होती रही। पुस्तकों के छोटे सुविधाजनक- हैण्डी आकार को अस्तित्व में लाने वाले लीनियस ही थे, इससे पूर्व तो बड़े आकार के पन्नों के संग्रह वाले फोलियो ही हुआ करते थे।

वर्तमान समय में यद्यपि सूक्ष्मताओं में अंतर आ गया है पर मोटे तौर पर

लीनियस द्वारा प्रदत्त नामों वाला वर्गीकरण आज भी उतना ही प्रासंगिक और मान्य है। वर्गीकरण के इस प्रणेता के समक्ष संकर (हाइब्रिड) पौधों की समझ एक बहुत बड़ी बाधा के रूप में सामने आई और इसका निराकरण वे मरते दम तक नहीं कर सके। उपसला विश्वविद्यालय में सन् 1741-1775 तक प्रोफेसर के रूप में लीनियस अत्यन्त लोकप्रिय थे। आमतौर से अध्यापकों को उनके विद्यार्थी ही समझते हैं कि वे कैसे हैं। किन्तु लीनियस की कक्षा में तो उन्हें सुनने के लिए अनेक संभ्रान्त व्यक्ति, चिकित्सक और कानूनविद् आते थे क्योंकि लीनियस पेड़-पौधों के विषय में रोचक और उपयोगी जानकारियाँ देते थे। अपने व्याख्यानों में वे कृषि, स्वास्थ्य, चिकित्सा खुराक आदि की भी चर्चा करते थे।

लीनियस स्वीडिश भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनके गद्य-लेखन में कविता का आनंद आता था। वर्ष 1758 में लीनियस ने हार्माबी से कुछ मील दूर एक मकान खरीद लिया जहाँ उन्होंने एक सुन्दर उद्यान भी विकसित किया। प्रेम-विवाह के बावजूद उनकी पत्नी सारा एलिजाबेथ की सोच कुछ और ही थी। सारा का व्यवहार पति के सहकर्मी प्रोफेसरों की पत्नियों के प्रति दिखावे से भरपूर था। यही नही, जब भी लीनियस प्रोफेसर का पद छोड़कर पूरा समय शोध को देने की बात करते तो सारा उनका विरोध करती थीं। सारा का व्यवहार अपनी पुत्रियों और इकलौते पुत्र से भी अच्छा नहीं था। अब लीनियस का अधिक समय अध्ययन, शोध और अपने उद्यान की देखभाल में व्यतीत होता था।

धीरे-धीरे बढ़ती आयु का उनके शरीर पर प्रभाव पड़ने लगा था। वे अस्वस्थ रहने लगे थे और फ्रांस की क्रांति के एक वर्ष पूर्व 10 जनवरी 1778 को 71 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। उनकी कब्र पर लिखा है- "प्रिंसेप्स बोटेनिकोरम" अर्थात् "वनस्पति विज्ञानियों का राजकुमार"। वैसे यह उपाधि उन्हें वर्षों पूर्व जब वे युवा थे, तभी मिल चुकी थी। उनकी मृत्यु को स्वीडेन के राजा ने "राष्ट्रीय विपत्ति" की संज्ञा दी थी।

लीनियस का अपने जीवन-काल में देश-विदेश के छोटे-बड़े स्तर के अनेकानेक विज्ञानियों से संपर्क था। उनकी मृत्यु के बाद उनके संग्रह में 19,000 हर्बेरियम शीट्स, 3,200 कीट पतंगों के नमूने, 1,500 शेल, 7,800 कोरल, 2,500 किस्म के पत्थरों और खनिजों के नमूने और 2,500 पुस्तकें थीं। पौधों की पहचान और नामकरण के लिए वनस्पति विज्ञानी उनके पास हर्बेरियम शीट्स भेजते रहते थे इस कारण हर्बेरियम शीट्स का लीनियस के पास विशाल भंडार था।

लीनियस की मृत्यु के बाद उनके पुत्र को उपसला विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर का पद दे दिया गया था। थोड़े समय के बाद उनका निधन हो गया। इस प्रकार कार्ल लीनियस की सम्पत्ति उनकी विधवा सारा के पास थी। बाद में लंदन के एक 24 वर्षीय धनी युवक जेम्स एडवर्ड स्मिथ ने 1000 गिनीज में सारा से सम्पूर्ण सम्पत्ति खरीद ली। स्मिथ ने लंदन में "लीनियन

HBCSE

सोसाइटी" की स्थापना की जो आज भी सारे संसार में विख्यात है। "लीनियन सोसाइटी" कार्ल लीनियस का जीवित स्मारक है।

लीनियस द्वारा छोड़ी गई अप्रकाशित पाण्डुलिपियों और पत्रों के ढेर के बीच उनके द्वारा लिखा गया एक प्रेम-पत्र भी मिला। यह पत्र उन्होंने एक भारतीय महिला वनस्पति विज्ञानी लेडी ऐन मोन्सन को लिखा था, जिसमें उन्होंने अपना हृदय खोलकर रख दिया था। लीनियस ने लिखा था- "हमारे और तुम्हारे द्वारा जो बेटी उत्पन्न होगी उसका नाम मोन्सीनिया रखेंगे।" यह इस बात की ओर इंगित करता है कि अपने बाद वे ऐसी संतति छोड़ना चाहते थे जो वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में बेजोड़ शोध कर सके।

कार्ल लीनियस के निधन के आज लगभग 234 वर्ष हो चुके हैं फिर भी लीनियस अपने कार्यों में अमर है। आज जब भी किसी पौधे की पहचान और नामकरण की चर्चा होती है तो लीनियस का स्मरण स्वतः हो आता है।

❖ पूर्व अध्यक्ष
वनस्पति विज्ञान विभाग
सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज
इलाहाबाद-211002 (उ.प्र.)

HBCSE

जल की कठोरता: कारण और निवारण

◆ संजय कुमार पाठक

जल सभी जीवधारियों के लिए अतिआवश्यक है। साथ ही जल विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं के लिए आधारभूत पदार्थ है। अतः इसकी वांछित परिशुद्धता का आंकलन अतिमहत्वपूर्ण हो जाता है। हालाँकि जल की उपयोगिता के आधार पर इसके विभिन्न मापदंडों के विश्लेषण की प्रक्रिया अपनायी जाती है फिर भी सामान्यतः जिन मापदंडों का विश्लेषण जल के सभी उपयोगों में आवश्यक होता है- वह है जल की कठोरता। प्रस्तुत लेख में जल की कठोरता से सबंधित विभिन्न तथ्यों- जैसे कि कठोर जल के कारण, इसके उपयोग से उत्पन्न समस्याएं, इसके विश्लेषण की तकनीक तथा जल की कठोरता को दूर करने के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं पर विस्तृत चर्चा की गयी है।

परिचय

जीवन की गुणवत्ता में योगदान देने वाले तीन प्रमुख कारकों में पहला है उस वायु की शुद्धता जिसमें हम साँस लेते हैं, दूसरा, उस जल की शुद्धता जिसे हम पीने के लिए एवं दैनिक उपयोगों हेतु इस्तेमाल करते हैं, तथा तीसरा उस पर्यावरण की शुद्धता जिसमें हम निवास करते हैं। यद्यपि ये तीनों कारक एक दूसरे पर निर्भर हैं फिर भी जल संबंधी समस्या को बहुत गंभीर माना जाता है। जल प्रकृति में व्याप्त एक ऐसा अद्भुत पदार्थ है जिसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जीवन संबंधी सभी प्रक्रियाओं के लिए जल अतिउपयोगी है और पृथ्वी पर विद्यमान सभी रासायनिक पदार्थों में जल सर्वाधिक मात्रा में मौजूद है। प्रारंभ में जल को एक तत्व के रूप में माना जाता था। हेनरी कैवेंडिश ने सन 1781 में दो भाग हाइड्रोजन तथा एक भाग आक्सीजन के मिश्रण को दहनकर जल की प्रयोगशाला निर्माण विधि की पुष्टि की। तब से यह सत्यापित हो गया कि जल हाइड्रोजन एवं आक्सीजन से बना एक यौगिक है जिसे रासायनिक सूत्र H_2O द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

पृथ्वी की सतह करीब 71% जल से ढँकी है परन्तु इसका अधिकतर जल महासागरीय खारे पानी के रूप में है। विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए पीने एवं दैनिक उपयोग के लिए शुद्ध जल की उपलब्धता एक चिंता का विषय है। वर्तमान में भी कई क्षेत्रों में जल की कमी महसूस की जा रही है। कुछ क्षेत्रों में वर्षा ऋतु में जल की अत्यधिक मात्रा होती है तो वहीं दूसरी ऋतु में नहीं के बराबर होती है। दूसरे कई क्षेत्रों में उपलब्ध जल प्राकृतिक एवं मानवजनित प्रदूषण के फलस्वरूप उपयोग के काबिल ही नहीं है। पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल का लगभग 97% भाग सागरीय खारे पानी के रूप में है जो सीधे तौर पर मानव के उपयोग में नहीं आता है। शेष करीब 3% जल, जो शुद्ध मीठे जल के रूप में

व्याप्त है, का भी मानवोपयोगी कार्यों में सीधे ही उपयोग नहीं किया जा सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि इस जल का लगभग 68.7% भाग बर्फ एवं ग्लेशियर के रूप में, 30.1% भूमिगत जल के रूप में, 0.9% अन्य स्रोतों जैसे कि जल वाष्प आदि के रूप में है। उपलब्ध मीठे जल का मात्र 0.3% भाग ही सतह जल के रूप में है। इस सतह जल का भी लगभग 87% भाग झीलों के रूप में, 11% भाग तालाब एवं पोखरों के रूप में और 2% भाग नदी जल के रूप में उपलब्ध है। इस प्रकार ***पृथ्वी पर पीने, स्नानादि एवं कृषिकार्य हेतु उपलब्ध शुद्ध मीठे जल की मात्रा, कुल जल मात्रा के** 1% **से भी कम है।***

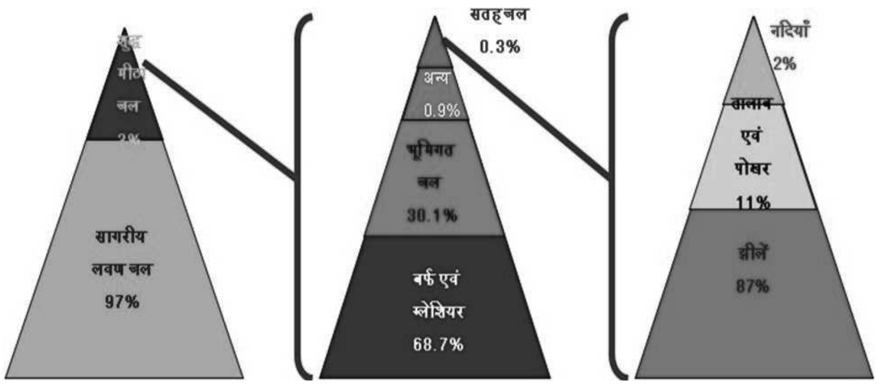

चित्र-1 पृथ्वी पर जल का भौगोलिक वितरण

अधिकांश जनसमुदाय पीने के लिए जल या तो सतही जल स्रोतों जैसे कि नदी, झील, पोखर, तालाब या फिर भूमिगत जल स्रोतों जैसे कि कुआं, नलकूप इत्यादि से प्राप्त करते हैं। चूंकि भूमिगत जल मिट्टी की ऊपरी सतहों से रिसकर सरंध्र चट्टानों में जमा हो जाता है और इस प्रक्रिया के दौरान जल छनकर शुद्ध हो जाता है। अतः भूमिगत जल को मानवोपयोगी शुद्ध जल स्रोत माना जाता है। पृथ्वी में उपलब्ध जल के भौगोलिक वितरण को पिरामिड के माध्यम से चित्र-1 में दर्शाया गया है।

जल के प्राकृतिक संघटक

पृथ्वी की सतह पर पाए जाने वाले जल में विलेय पदार्थों की भारी मात्रा विद्यमान होती है। इन विलेय पदार्थों का मुख्य स्रोत चट्टानों का प्राकृतिक क्षरण है। इसके अलावा इन विलेय पदार्थों के प्राकृतिक जल में उपस्थिति, खनिज उत्खनन या औद्योगिक प्रक्रियाओं अथवा अवशिष्ट जल संयंत्रों का भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से योगदान होता है। जल के प्राकृतिक संघटन के रूप में कई तरह के पदार्थ एवं खनिज लवण जल में विद्यमान होते हैं जिनकी आवश्यकता से अधिक मात्रा हानिकारक होती है। साथ ही विभिन्न मानवीय तथा औद्योगिक प्रक्रियों द्वारा कई तरह के प्रदूषकों का जल में समावेश हो जाता है। इनमें से कुछ पदार्थ हानिकारक नहीं होते हैं जैसे कि कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन, आयोडीन आदि और इन

पोषक तत्वों से युक्त जल स्वास्थ्य के लिए गुणकारी होता है। अन्य खनिज पदार्थ जैसे कि मैगनीज, सल्फेट तथा आयरन यद्यपि विषाक्त नहीं होते परन्तु इनकी उपस्थिति जल के स्वाद को प्रभावित करती है। सोडियम क्लोराइड की अधिक मात्रा जल के स्वाद को खारा बनाती है। जल में उपस्थित कैल्शियम एवं मैग्नीशियम के कार्बोनेट, बाईकार्बोनेट तथा सल्फेट यौगिक साबुन से क्रिया करके अवक्षेप (precipitate) उत्पन्न करते हैं।

प्राकृतिक जल में आयनिक पदार्थों जैसे कि नाइट्रेट (NO_3^-), सल्फेट (SO_4^{-2}) इत्यादि की उपस्थिति कोल ऊर्जा संयंत्रों, आटोमोबाइल उद्योग एवं अन्य दहन संबंधी क्रियाविधियों से निकलने वाली गैसों (NO_x),(SO_x) के वर्षा जल में विलेय होकर जल में मिल जाने के फलस्वरूप होती है। सागरीय धाराओं से सोडियम क्लोराइड (NaCl), धूल-मिट्‌टी तथा विभिन्न प्रकार के खनिज लवणों के जल में विलेय होने से, जल के प्राकृतिक संघटन के रूप में, अन्य पदार्थों की सूक्ष्म मात्रा उपस्थित होती है। जल में व्याप्त प्रमुख प्राकृतिक घटकों तथा जल की गुणवत्ता पर पड़ने वाले इनके प्रभावों को सारणी-1 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी-1 जल में उपस्थित प्रमुख प्राकृतिक संघटक: उनके स्रोतों, सांद्रता एवं उपयोग से होने वाले प्रभाव

घटक	मुख्य स्रोत	प्राकृतिक जल में सांद्रता	उपयोग से होने वाले प्रभाव
कार्बोनेट (CO_3^{-2})	चूने का पत्थर, डोलोमाइट	सामान्यतः सतह जल में मौजूद नहीं होता। भूमिगत जल में <10 मि.ग्रा./ली.। सोडियम की अधिकता वाले जल में 50 मि.ग्रा./ ली. तक हो सकती है।	Ca^{+2} एवं Mg^{+2} के साथ संयोग कर कार्बोनेट की परत बनाता है।
बाईकार्बोनेट (HCO_3^-)		बाईकार्बोनेट की सांद्रता सामान्यतः < 500 मि. ग्रा. /ली.लेकिन उच्च कार्बन डाइआक्साइड युक्त जल में 1000 मि.ग्रा./ली. से भी अधिक।	गरम करने पर बाईकार्बोनेट वाष्प, कार्बनडाइआक्साइड एवं कार्बोनेट में परिवर्तित हो जाते हैं।
सल्फेट (SO_4^{-2})	सल्फाइड अयस्क के आक्सीकरण, जिप्सम;		Ca^{+2} के संयोग से ऊष्मा रोधी पपड़ी का निर्माण। >500 मि.ग्रा./ली. जल का कड़वा स्वाद।
क्लोराइड (Cl-)	औद्योगिक अपशिष्ट मुख्य स्रोत अवसादी चट्‌टानें, समुद्री धाराएँ;		>100 मि.ग्रा./ली. जल में खारापन खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, वस्त्र उद्योग, पेपर और संश्लेषित रबर उद्योग में >100

			मि.ग्रा./ली. नुकसानदायक
कैल्शियम (Ca^{+2})	जिप्सम, कैल्साईट, डोलोमाईट और मृदा खनिज		साबुन के साथ झाग उत्पन्न न होना, ऊष्मारोधी परत (Heat retarding scale) का
मैग्नीशियम (Mg^{+2})	मैग्नेसाईट डोलोमाईट पायरोक्सेन खनिज	कई सतह जल स्रोतों में 1000 मि.ग्रा./ली., लवण जल में करीब 57,000 मि.ग्रा./ली. तक। समुद्री जल स्रोतों में 1000 मि.ग्रा./ली. तक लवण जल में करीब 25,000 मि.ग्रा./ली.	नल तथा पाइपों का जाम हो जाना।
सोडियम (Na^{+})	हैलाईट(NaCl) मिराबिलाईट ($Na_2SO_4.H_2O$) और औद्योगिक अवशिष्ट		सोडियम और पोटेशियम दोनों की >50 मि.ग्रा./ली. मात्रा जल में फेन बनाती है और ऊष्मा जनित्रों में संक्षारण (Corrosion) उत्पन्न करती है।
पोटेशियम (K^{+})	फेल्ड्स्पार, कुछ माइका एवं मृदा खनिज	सामान्यतः <10 मि.ग्रा./ली.। गर्म जल स्त्रोतों में >100 मि.ग्रा./ली.तक और लवण जल में करीब 25,000	सोडियम की >65 मि.ग्रा./ली. मात्रा से बर्फ निर्माण में समस्या उत्पन्न होती है।

HBCSE

कठोर जल और इसकी उत्पत्ति का कारण

ऐसा जल जिसमें साबुन के साथ अधिक झाग उत्पन्न नहीं होता है, कठोर जल कहलाता है। जल की कठोरता को जल में घुलित आयनों, मुख्यतः कैल्शियम (Ca^{+2}) एवं मैग्नीशियम (Mg^{+2}) के लवणों की सांद्रता के रूप में व्यक्त किया जाता है। जल में इन आयनों की उपस्थिति का कारण इनके खनिज हैं जैसे कि डोलोमाईट, मैग्नेसाईट, कैल्साईट इत्यादि। साथ ही वायुमंडलीय कार्बन डाइआक्साइड भी जल में विलेय होकर कार्बोनिक अम्ल (H_2CO_3) बनाती है जिसका विघटन बाईकार्बोनेट (HCO_3^-) एवं कार्बोनेट (CO_3^{-2}) आयनों में हो जाता है। ये ऋणायन अपने संगत धनायनों के साथ संयोग कर ऐसे लवण बनाते है जो जल की कठोरता के लिए उत्तरदायी होते हैं (चित्र-2)। प्राकृतिक जल में आयनिक पदार्थों जैसे कि नाइट्रेट (NO_3^-), सल्फेट(SO_4^{-2}), इत्यादि की उपस्थिति कोल ऊर्जा संयंत्रों, आटोमोबाइल उद्योग एवं अन्य दहन संबंधी क्रियाविधियों से निकलने वाली गैसों (NO_X), (SO_X) के वर्षा जल में विलेय होकर जल में मिल जाने के फलस्वरूप होती है। 1960 में वैज्ञानिक क्रिस गिल्बी ने बताया कि कठोर जल का वर्गीकरण उसमें उपस्थित आयनों के आधार पर किया जा सकता है। जल की कठोरता दो

प्रकार की होती है- अस्थायी कठोरता (Temporary Hardness) एवं स्थायी कठोरता (Permanent Hardness)। जल में अस्थायी कठोरता कैल्शियम एवं मैग्नीशियम के बाईकार्बोनेट एवं कार्बोनेट लवणों के कारण होती है जिसे उबालकर दूर किया जा सकता है। जबकि स्थायी कठोरता का कारण जल में मौजूद Ca^{+2}, Mg^{+2}, Mn^{+2}, Cu^{+2}, Fe^{+3}, Al^{+3} इत्यादि आयनों के सल्फेट (SO_4^{-2}), क्लोराइड (Cl^-), नाइट्रेट (NO_3^-), सिलिकेट (SiO_3^{-2}) एवं फ्लोराइड (F^-) लवणों की उपस्थिति है जिसे उबाल कर दूर नहीं किया जा सकता। उबालने से इन लवणों की सांद्रता और बढ़ जाती है जो जल को विशिष्ट उपयोग हेतु अनुपयोगी बनाती है।

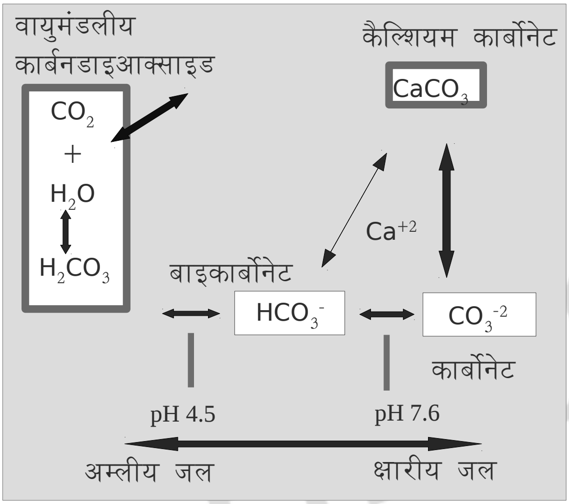

एक नदी जल का औसत रासायनिक संघटन

रासायनिक घटक	सांद्रता
बाइकार्बोनेट (HCO_3-)	58
कैल्शियम (Ca^{+2})	15
सल्फेट (SO_4^{-2})	11
क्लोराइड (Cl^-)	8
सोडियम (Na^+)	4
मैग्नीशियम (Mg^{+2})	4
पोटेशियम (K^+)	2

चित्र-2 कठोर जल की उत्पत्ति का प्रदर्शन एवं नदी जल में मौजूद प्रमुख रासायनिक घटकों की औसत सांद्रता (स्रोत-इंटरनेट)

जल की कठोरता के कारण सिर्फ कपड़े धोने की समस्या उत्पन्न नहीं होती है बल्कि इसके द्वारा पाइप लाइनों के अवरुद्ध होने, ऊष्मा विनिमायक (Heat Exchanger) एवं बॉयलर (Boiler) की सतह पर पपड़ी जमने जैसी गंभीर समस्याएं उत्पन्न होती हैं। स्थायी कठोरता को दूर करने के लिए आयन विनिमय (Ion Exchange), परानिस्यन्दन (Ultra Filtration), प्रतिलोम परासरण (Reverse Osmosis) इत्यादि प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है।

कठोर जल के विश्लेषण की विधियाँ

गुणात्मक विश्लेषण

कठोर जल की पहचान कई सामान्य अनुभवों से की जा सकती है। जैसे कि जल के स्वाद में खारापन होना, दालों का न पकना, चाय का फटना, जल को गरम करने वाले पात्र में सफेद परत का जमना इत्यादि। कठोर जल के गुणात्मक

विश्लेषण की बहुप्रचलित विधि है- साबुन के साथ झाग उत्पन्न न होना। चूँकि साबुन, वसा अम्लों के सोडियम लवण होते हैं (जैसे कि सोडियम स्टरेट, सोडियम पामेट) अतः कठोर जल की साबुन से क्रिया होने पर कठोर जल में मौजूद कैल्शियम तथा मैग्नीशियम आयनों का सोडियम आयन से विनिमय हो जाता है और साबुन से झाग उत्पन्न नहीं होता बल्कि कैल्शियम स्टीयरेट या मैग्नीशियम स्टीयरेट का चिपचिपा अवक्षेप बन जाता है।

$$2C_{17}H_{35}COONa + CaCl_2 \rightarrow Ca(C_{17}H_{35}COO)_2\downarrow + 2NaCl$$
$$2C_{17}H_{35}COONa + MgSO_4 \rightarrow Mg(C_{17}H_{35}COO)_2\downarrow + Na_2SO_4$$

परिमाणात्मक विश्लेषण

मात्रात्मक रूप से जल की कठोरता को कैल्शियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) की मि.ग्रा./लीटर में सांद्रता या पीपीएम (parts per million) भार के हिसाब से जल के प्रति दस लाख भाग यानी लक्षांश में $CaCO_3$ का एक भाग) के रूप में व्यक्त किया जाता है। कठोर जल का परिमाणात्मक विश्लेषण विभिन्न विधियों द्वारा किया जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से सभी विधियों में कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा अन्य आयनों के लवणों की सांद्रता का आकलन करके उन्हें $CaCO_3$ की सांद्रता के रूप में परिवर्तित कर जल की कठोरता ज्ञात की जाती है। उदाहरणस्वरूप यदि जल के एक नमूने में कुछ लवणों की सांद्रता इस प्रकार है- कैल्शियम बाईकार्बोनेट ($Ca(HCO_3)_2$) = 20 ppm, मैग्नीशियम बाईकार्बोनेट ($Mg(HCO_3)_2$) = 8 ppm तथा मैग्नीशियम सल्फेट ($MgSO_4$) = 12 ppm तो उस जल की कठोरता क्या होगी? इसे ज्ञात करने के लिए सभी लवणों की सांद्रता को कैल्शियम कार्बोनेट की सांद्रता के समतुल्य व्यक्त कर उनका योग करना होगा।

$$CaCO_3(ppm) = \frac{[C]_{Ca(HCO_3)2} \times 100}{M_{Ca(HCO_3)2}} + \frac{[C]_{Mg(HCO_3)2} \times 100}{M_{Mg(HCO_3)2}} + \frac{[C]_{MgSO_4} \times 100}{M_{MgSO_4}}$$

जहां [C] संगत लवणों की सांद्रता, M संगत लवणों के अणुभार और 100 कैल्शियम कार्बोनेट के अणुभार के लिए लिखा गया है। अतः

$$\frac{20 \times 100}{162} + \frac{8 \times 100}{146} + \frac{12 \times 100}{120} = 27.81\ ppm$$

जल की कठोरता को कैल्शियम कार्बोनेट की सांद्रता के समतुल्य व्यक्त करने के दो प्रमुख कारण हैं। पहला यह कि कैल्शियम कार्बोनेट पानी में पूर्णतया अघुलनशील है और आसानी से अवक्षेपित हो जाता है जिससे भारात्मक अनुमापन में त्रुटि की संभावना नहीं रहती। और दूसरा, चूंकि कैल्शियम कार्बोनेट का अणुभार है 100 है अतः परिकलन में आसानी होती है ।

EDTA संकुलमिति अनुमापन द्वारा जल की कठोरता ज्ञात करना-

यह जल की कठोरता ज्ञात करने की प्रमुख प्रयोगशाला विधि है। यह विधि जल में मौजूद कैल्शियम तथा मैग्नीशियम आयनों की एथलीनडाईऐमीन टेट्राएसीटिक अम्ल (EDTA) के मानक विलयन (standard solution) द्वारा आयतनमापी विश्लेषण (volumetric analysis) पर आधारित है। इस विधि में द्रव अमोनिया का बफर विलयन और इरियोक्रोम ब्लैक-टी का संसूचक (indicator) के रूप में उपयोग होता है। अनुमापन के दौरान परीक्षण विलयन का pH मान 10 के आसपास होना चाहिए। pH मान 10 से कम होने पर EDTA से हाइड्रोजन आयन का विलगन (deprotonation) आसानी से नहीं होता। साथ ही इरियोक्रोम ब्लैक-टी संसूचक भी, pH मान 10 से कम होने पर कैल्शियम तथा मैग्नीशियम आयनों के साथ दुर्बल संकुल (weak complex) बनाता है और अनुमापन में सटीक अंतिम बिंदु नहीं देता। pH मान 10 से अधिक होने पर कैल्शियम तथा मैग्नीशियम आयन अपने संगत हाइड्राक्साइड के रूप में अवक्षेपित हो जाते हैं। अतः बफर विलयन का उपयोग करना अनिवार्य होता है। **EDTA** डाईहाइड्रोजन एनायन (H_2EDTA^{-2}) के रूप में **Ca^{+2}** और **Mg^{+2}** के साथ उच्चबंधुता रखता है। pH 10 पर **EDTA** का आयनिक रूप इस प्रकार होता है -

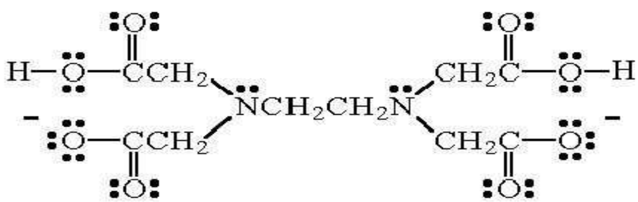

डाईहाइड्रोजन इथलीनडाईअमीन टेट्रा एसीटेट आयन

प्रयोगशाला में जल की कठोरता ज्ञात करने की प्रायोगिक विधि इस प्रकार है :

1. 250 mL के कोनिकल फ्लास्क में पिपेट द्वारा 25 mL जल के नमूने को लीजिये
2. 5 mL pH 10 का अमोनिया बफर मिलाइए,
3. 2 बूँद इरियोक्रोम ब्लैक टी संसूचक की डालें
4. ब्युरेट में ज्ञात सांद्रता वाला EDTA लेकर अनुमापन करें।
5. धीरे-धीरे EDTA तब तक डालें जब तक कि विलयन का रंग नीला न हो जाये। अंतिम बिंदु के नजदीक पहुँचने पर विलयन का रंग पहले बैगनीं होगा और अंतिम बिंदु पर स्थायी नीला रंग प्राप्त होगा।

अनुमापन की प्रक्रिया में पहले इरियोक्रोम ब्लैक टी संसूचक, कैल्शियम आयन के साथ संयोग कर गुलाबी रंग देता है -

$$H_2In^- \quad + \quad Ca^{+2} \quad \leftrightarrow \quad CaIn^- \quad + \quad 2H^+$$

अनुमापन के दौरान ईडीटीए, कैल्शियम आयन के साथ संकुल बनाता है और अंतिम बिंदु पर नीले रंग के संसूचक को मुक्त करता है।

$$\mathbf{EDTA(aq) + caIn^{-}(aq) + 2H^{+}(aq) \longrightarrow H2In^{-}(aq) + CaEDTA(aq)}$$

Pink **Blue**

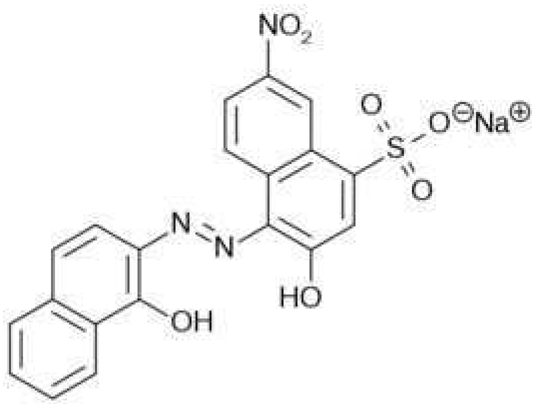

3-हाईड्राक्सी-4-(1-हाईड्राक्सी-2-नैफ्थाइलएजो)-7-नाइट्रो-1-नेफ़थलीन सल्फोनिक एसिड, सोडियम साल्ट

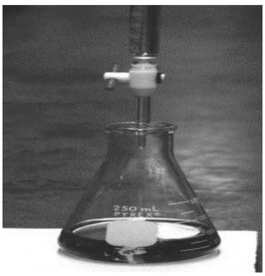

प्रारंभिक रंग

अंतिम बिंदु के नजदीक रंग

अंतिम बिंदु पर रंग

ध्यान रखें :

- *अमोनिया बफर को फ्यूमहुड में रखना चाहिए।*
- *इरियोक्रोम ब्लैक-टी संसूचक से त्वचा और कपड़े में दाग पड़ सकता है।*
- *अनुमापन के पश्चात सभी अपशिष्ट पदार्थों को सुरक्षित सिंक में बहाना चाहिए।*

गणना एवं मापन इकाई

***मान लीजिये आपको दिए गए अज्ञात जल के नमूने में जल की कठोरता ज्ञात करनी है। आपने जल के नमूने का* 25 mL *विलयन लेकर* 0.01 *मोलर की सांद्रता वाले* EDTA *से उपरोक्त प्रायोगिक विधि के अनुसार अनुमापन किया। अंतिम बिंदु पर ब्यूटेट का मापांक* 1.25 mL *है। तो जल की कठोरता क्या होगी*?**

जल की कुल कठोरता (**$CaCO_3$ mg/L**)	*वर्गीकरण*
0 - 17	*मृदु जल*
17 - 60	*मामूली कठोर जल*
60 - 120	*मध्यम कठोर जल*
120 - 180	*कठोर जल*
> 180	*अति कठोर जल*

1 ***मोल*** **EDTA ≡** 1 ***मोल*** **Ca^{+2}**

कुल कठोरता (**$CaCO_3$** ***मिग्रा/ली***)

$$= \frac{V_t \times N.EDTA}{V_s} \times 100 \times 100$$

$$= \frac{1.25 \times 0.01}{25} \times 100 \times 100 = 50ppm$$

यहाँ पर V_t = ***अनुमापन में प्रयोग हुए*** EDTA ***का*** mL ***में आयतन***, N = EDTA ***की नार्मलता***, V_s = ***जल के नमूने का*** mL ***में आयतन है।*** 100 ***कैल्शियम कार्बोनेट का अणुभार है और*** 1000 ***का गुणनफल आयतन को लीटर में बदलने के लिए है। यदि जल के नमूने का आयतन लीटर में लिखा जाए तो*** 1000 ***से गुणा की आवश्यकता नहीं होगी।***

अन्य मापन इकाइयाँ

अमेरिकन डिग्री (आधुनिक प्रणाली) : **$CaCO_3$** मि.ग्रा./ली. अथवा ppm $CaCO_3$
ग्रेन्स प्रति गैलन *(gpg)* : 1 ग्रेन = 64.8 mg $CaCO_3$; 1 U.S. गैलन = 3.79 लीटर; अतः 1 ग्रेन्स प्रति गैलन *(gpg)* = 17.1 ppm $CaCO_3$ क्लार्क डिग्री : ब्रिटिश प्रणाली, 1 ग्रेन प्रति इम्पीरियल गैलन (4.55 लीटर); अतः 14.25 ppm $CaCO_3$
फ्रेंच डिग्री : 10 मिग्रा/ली $CaCO_3$ अथवा 10 ppm $CaCO_3$
इकाई रूपांतरण : 1 ppm = 0.1 फ्रेंच डिग्री = 0.07 क्लार्क डिग्री

HBCSE

कठोर जल के उपयोग से उत्पन्न समस्याएं

घरेलू समस्या

- ❖ साबुन से झाग उत्पन्न न होना
- ❖ बाथटब, टाइल्स में साबुन के मैल की परत जमना
- ❖ कपड़े और बर्तनों की चमक में कमी
- ❖ चाय, काफी, दाल आदि के पकने की समस्या

औद्योगिक समस्या

- ➢ नल के पाइपों में पपड़ी जमना
- ➢ वाष्प जनित्र में संक्षारण
- ➢ क्षारीय भंगुरता (Caustic Embrittlement)
- ➢ प्राइमिंग (Priming) और झाग उत्पन्न करना
- ➢ वाष्प जनित्र की दक्षता में कमी
- ➢ कार्बोनेट, सिलिकेट एवं सल्फेट की परत और आपंक (Sludge) निर्माण

HBCSE

स्वास्थ्य संबंधी समस्या

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार पीने के लिए कठोर जल का इस्तेमाल करने से मानव स्वास्थ्य पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु कठोर जल के उपयोग से कुछ त्वचा सबंधी विकार तथा बालों के झड़ने की समस्या उत्पन्न होती है।

जल की कठोरता दूर करने की विभिन्न विधियां (जल का मृदुकरण)

उबालकर अस्थायी कठोरता दूर करना

$$Ca(HCO_3)_2 \rightarrow CaCO_3 + CO_2 \uparrow + H_2O \downarrow$$

क्लार्क विधि : $Ca(OH)_2$ की ज्ञात मात्रा डालना

$$Ca(HCO_3)_2 + Ca(OH)_2 \rightarrow 2CaCO_3 + 2H_2O$$

स्थायी कठोरता दूर करने की सोडा-लाइम प्रक्रिया

$$MgSO_4 + Ca(OH)_2 \rightarrow Mg(OH)_2 + CaSO_4$$

$$CaSO_4 + Na_2CO_3 \longrightarrow CaCO_3 + Na_2SO_4$$

परम्यूटिट प्रक्रिया : सोडियम अल्युमिनो सिलिकेट ($Na_2OAl_2O_3ySiO_2\ xH_2O$)

$$Ca^{+2} + Na_2\text{-zeolite} \longrightarrow Ca\text{-zeolite} + 2Na^{+}$$

$$Mg^{+2} + Na_2\text{-zeolite} \longrightarrow Mg\text{-zeolite} + 2Na^{+}$$

लेकिन जियोलाइट अम्लीय आयनों जैसे कि HCO_3^{-}, CO_3^{-}, Cl^{-}, NO_3^{-} को नहीं निकाल पाता, साथ ही मृदु जल में Na^{+} आयनों की सांद्रता बढ़ जाती है।

आयन विनिमय प्रक्रिया द्वारा जल का विखनिजीकरण

औद्योगिक स्तर पर जल की कठोरता को दूर करने तथा जल के विखनिजीकरण की प्रक्रिया को चित्र-3 में दर्शाया गया है। इस प्रक्रिया में सामान्य जल को कुछ प्राथमिक उपचार के पश्चात आयन विनिमय रेजिन से प्रवाहित किया जाता है। सबसे पहले जल को सैंड फिल्टर से गुजारा जाता है जिससे जल में घुलित कणीय पदार्थों (particulate matters) की अशुद्धियाँ छन जाती हैं। फिर इसे चारकोल फिल्टर से गुजारा जाता है जहां जल में विलेय कार्बनिक पदार्थों (organic matters) की अशुद्धियाँ निकल जाती है। तत्पश्चात् जल को क्रमशः धनायन रेजिन, ऋणायन रेजिन तथा धनायन एवं ऋणायन से मिश्रित रेजिन के कालमों से

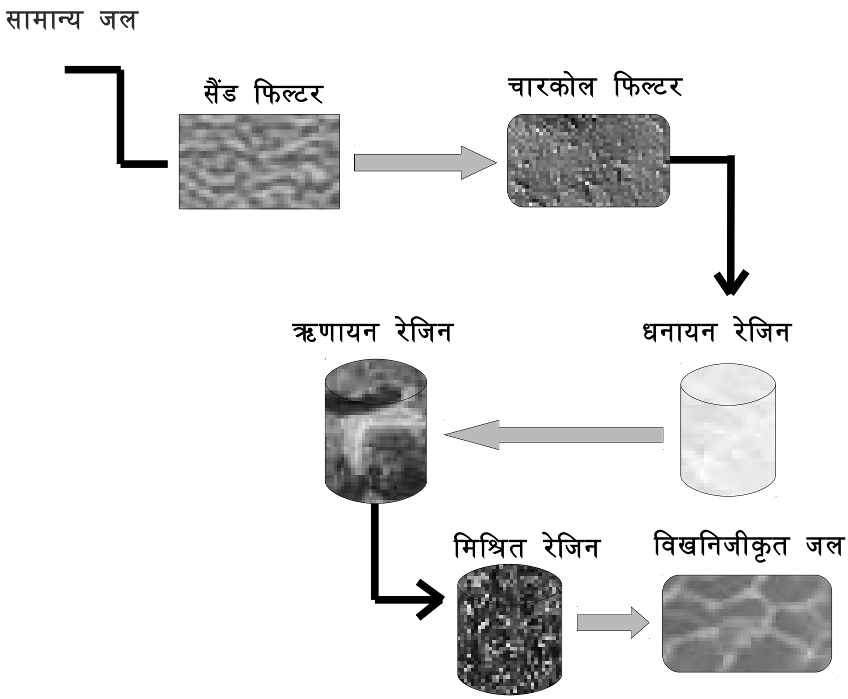

चित्र-3 विखनिजीकृत जल प्राप्त करने की प्रक्रिया का प्रारूपण

प्रवाहित किया जाता है जिससे जल में उपस्थित केटायनिक तथा एनायनिक अशुद्धियां पूर्णरूपेण अलग हो जाती है। साथ ही जल का pH मान उदासीन बना रहता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि जल को पहले धनायन रेजिन से ही प्रवाहित करना चाहिए। यदि पहले ऋणायन रेजिन से प्रवाहित किया गया तो ऋणायन जैसे कि HCO_3^-, CO_3^-, Cl^-, NO_3^- इत्यादि रेजिन में रह जायेंगे जबकि धनायन जैसे कि Ca^{2+}, Mg^{2+}, आदि जल में रहकर संगत हाइड्राक्साइड के रूप में अवक्षेपित हो जायेंगे तथा रेजिन कालम को शीघ्र ही अवरुद्ध कर देंगें।

लाभ :

- लगभग सभी धनायन एवं ऋणायन अशुद्धियों का निष्कासन
- अधिक दक्षता, कई बार उपयोग
- पुनःप्रापन (Regeneration) संभव
- प्रचालन की कम लागत

दोष :

- रेजिन कालम का अवरुद्ध होना
- रेजिन के सुरक्षित निपटान की समस्या

संक्षिप्त सारांश

- जल की कठोरता जल का ही एक गुणधर्म है।
- जल की कठोरता को $CaCO_3$ की सांद्रता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।
- EDTA अनुमापन द्वारा जल की कठोरता का सटीक मापन किया जाता है।
- जल की कठोरता औद्योगिक इकाइयों के लिए अधिक चिंता का विषय है।
- बृहद स्तर पर जल की कठोरता दूर करने हेतु आयन विनिमय तकनीक का उपयोग किया जाता है।

❖ वैज्ञानिक अधिकारी 'डी'
नियंत्रण प्रयोगशाला
ईंधन पुनर्संसाधन प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई-400085
ई-मेल : pathaksk2004@gmail.com

HBCSE

हिन्दी में फॉन्ट की समस्या

◆ आर. अनुराधा

न्यू मीडिया, यानी प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों को सम्मिलित रूप से जगह देने वाले नए सूचना महामार्ग ने दुनिया-भर के लोगों को उनकी अपनी विशिष्ट शैली में अभिव्यक्ति का मौका दिया है। कोई चाहे जिस देश-प्रदेश, भौगोलिक-वातावरणीय परिस्थितियों में रहता हो, किसी के लिए भी ये वैश्विक नए माध्यम पहुंच से दूर नहीं हैं। डेस्कटॉप कंप्यूटर से बंध कर रहने के विकल्प के तौर पर लैपटॉप, मोबाइल इंटरनेट और सस्ते-महंगे, यहां तक कि तीन हजार रुपये के आकाश जैसे टैबलेट भी आसानी से उपलब्ध हैं। ऐसे समय में अपनी बात सबसे सटीक ढंग से कह पाने के लिए अपने देश की भाषाओं को चुनने का सहज विकल्प हमारे पास कुछ समय पहले तक नहीं था, और अब भी कई बार जटिलताओं का सबब होता है। सूचना और संचार तकनीकों के मामले में भाषायी औजारों की कमी संचार के सहज प्रवाह में रुकावट है। वास्तव में टेक्नॉलजी ने नए संचार माध्यम तो दिए हैं पर अपनी जुबान में न होने के कारण उसका कंटेंट लोगों की अपनी बात, मुद्दे, भागीदारी का हिस्सा बढ़ाने का जरिया यह अब तक नहीं बन पाया है।

टैबलेट

पिछले 15 वर्षों के समय को हिंदी में कंप्यूटर और दूसरी सूचना संचार तकनीकों के अद्वितीय विकास और विस्तार के समय के रूप में दर्ज किया गया है। कई सर्वेक्षणों से साबित किया गया कि इंटरनेट के इस्तेमाल और कंटेंट निर्माण में अंग्रेजी और मंदारिन (चीनी) भाषा के बाद हिंदी का ही स्थान होने वाला है। कारोबार हो या मनोरंजन या फिर निजी संवाद, सारे काम हिंदी में होने के दावे भी हुए। हिंदी भाषा में अपना दैनिक काम-काज और कारोबार करने वालों के लिए सुनिश्चित सुनहरे भविष्य की प्रस्तावनाएं ही नहीं, अध्याय भी लिख दिए गए।

आंकड़े बताते हैं कि हिंदी विश्व की तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। देश की तेजी से बढ़ती मध्यवर्गीय आबादी को एक विशाल बाजार के रूप में देखने के कारण यहां की राजभाषा में व्यापारिक-व्यावसायिक संभावनाएं भी स्वाभाविक रूप से उतनी ही बड़ी दिखाई पड़ रही हैं। चीन के बाद दूसरी सबसे तेजी से विकसित हो रही अर्थव्यवस्था में कारोबार के ढांचे को मजबूत बनाने के लिए दुनिया भर की आई.टी. कंपनियां अपनी हर नई हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर तकनीक को हिंदी में इस्तेमाल के अनुकूल बना रही हैं। माइक्रोसॉफ्ट ने 1998 में विंडोज़ ऑपरेटिंग सिस्टम में हिंदी को पहली बार प्रयोग के तौर पर शामिल किया।

HBCSL

फिर विंडोज़ 2000 के भारतीय वर्ज़न में हिंदी को इस हद तक समाहित कर लिया गया कि हिंदी का इंटरफेस यानी मेनू आदि भी देखा जा सकता है। तब तक विकसित हो चुके कई फॉन्टों के लिए अनुकूलित ऑपरेटिंग सिस्टम या ओएस पर सिर्फ की-बोर्ड सेटिंग बदल कर हिंदी टाइपिंग की सुविधा पाई जा सकती थी। उसके बाद से एक्सप्लोरर, मोजिल्ला, क्रोम जैसे ब्राउजर और सन माइक्रो सिस्टम्स, लिनक्स, मैकिंटॉश, विंडोज़ जैसे ऑपरेटिंग सिस्टम सभी अपने सॉफ्टवेयर में हिंदी और भारतीय भाषाओं को बराबर जगह और तरजीह दे रहे हैं। हिंदी को समर्थन देने में गूगल सबसे आगे रहा है। हिंदी और दूसरी कई भारतीय भाषाओं में सभी भाषायी औजार- यूनिकोड फॉन्ट के जरिए सीधे टाइपिंग से लेकर हिंदी टाइपिंग से अनजान लोगों के लिए ट्रांसलिटरेशन, ईमेल लेखन, सर्च इंजन, अनुवाद आदि तक सभी कुछ अंग्रेजी के बराबर ही उपलब्ध है।

टाइपसेटिंग मशीन

लेकिन फिर भी नए संचार माध्यमों में हिंदी भाषा में काम करना कतई सहज-सरल नहीं है। 49 करोड़ों लोगों की भाषा होने के बाद भी हिंदी, आम हो चुकी इंटरनेट जैसी तकनीक के मामले में उतनी समृद्ध नहीं है। अपना ही उदाहरण देती हूं- मैं सूचना और प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग में काम करती हूं। मुझे कई लोगों से अंग्रेजी और हिंदी, दोनों भाषाओं में सीडी में या ई मेल से भी रचनाएं मिलती हैं, जिन्हें अगर पढ़ने के लिए नहीं तो कम से कम पेज मेकिंग, एडीटिंग, फॉर्मैटिंग आदि के लिए जरूर ही उनका फॉन्ट बदलना/बदलवाना पड़ता है। इसके लिए हमेशा टाइपसेटर पर निर्भर नहीं हुआ जा सकता। टाइपसेटर के सामने भी यही तकनीकी समस्या आती है। जब सामग्री उसे अपने उपयोग के फॉन्ट में नहीं मिलती, तो उसका काम एकदम रुक जाता है, जब तक कि वह किसी आड़े-तिरछे रास्ते से उस सामग्री को अपने फॉन्ट में बदल नहीं लेता। अपने इंटरनेट साथियों की मदद से मैंने कई इंटरनेट लिंक डाउनलोड किए हैं जहां से मैं विभिन्न फॉन्ट्स को आपस में कनवर्ट कर पाती हूं। यानी अगर मेरे पास कोई सामग्री कृतिदेव या चाणक्य फॉन्ट में आती है, और मेरा काम एरियल यूनिकोड एमएस (देवनागरी) में चलता है, तो मैं उन फॉन्ट्स वाले आलेख को अपने काम के फॉन्ट में बदल लेती हूं। इस तरह आम तौर पर मेरा काम चल जाता है।

हिंदी प्रकाशन की दुनिया में इस तरह एक से दूसरे फॉन्ट में टेक्स्ट को बदलते रहना बेहद आम है। हर प्रकाशक के अपने एक या अधिक तय फॉन्ट होते हैं, और उन्हें एकरूपता के लिए सामग्री को अपने तय फॉन्ट में लाना जरूरी होता

है। यह काम अंग्रेजी में भी होता है, लेकिन खास बात यह है कि अंग्रेजी में सभी फॉन्ट आपस में समरूप होते हैं, इसलिए आलेखों को एक से दूसरे फॉन्ट में बदलने में कोई परेशानी नहीं आती। एक ही कमांड से अक्षरों के लिखने का तरीका समान रूप से बदल जाता है। न कोई शब्द टूटता है, न किसी अक्षर या विराम चिह्न की जगह जंक दिखाई पड़ता है न टेबल, कॉलम, एलाइनमेंट, फॉर्मैटिंग यानी इटैलिक्स-बोल्ड आदि में कोई फर्क आता है। और यह काम बिना किसी नए फॉन्ट की संस्थापना किए हो जाता है।

लेकिन हिंदी में ऐसा नहीं है। अगर आप किसी और से हिंदी में टंकित सामग्री डिजिटल टेक्स्ट रूप में लेते हैं तो उसे देखने के लिए पहले तो आपके पास वह फॉन्ट होना चाहिए जिसमें उसे टाइप किया गया है। फिर अगर आप उसी फॉन्ट में पुस्तक या पत्रिका नहीं निकालते या काम नहीं करते तो आप उसे अपने फॉन्ट में बदलेंगे। इसके लिए आपके पास उन दोनों फॉन्टों से संबंधित फॉन्ट कनवर्टर होना चाहिए। यानि अगर चाणक्य में काम करते हैं और यूनिकोड में लेख है तो यूनिकोड से चाणक्य फॉन्ट परिवर्तक आपके पास होना चाहिए। ये परिवर्तक भी सॉफ्टवेयर होते हैं जिन पर किसी का अधिकार या कॉपीराइट होता है। सौभाग्य से अभी तक हिंदी में परिवर्तक बनाने वालों ने इसे व्यवसाय की तरह नहीं बल्कि हिंदी-सेवा या अपने लिए तकनीकी चुनौती की तरह देखा है। इसलिए ये कनवर्टर अंतर्जाल (इंटरनेट) पर मुफ्त मिल जाते हैं। अन्यथा इसके भी पैसे चुकाने होते। हालांकि कुछ परिवर्तक और ज्यादातर फॉन्ट कॉपीलेफ्ट या सर्वाधिकार-मुक्त नहीं हैं। कंप्यूटर पर आपका परिवर्तित फॉन्ट में टेक्स्ट दिखाई पड़ने भी लगे तो यह गारंटी नहीं है कि प्रिंट करने पर वैसा ही छपेगा। बहुत बार स्क्रीन पर का सही टेक्स्ट प्रिंट करने पर जंक हो जाता है। वहां भी बदलाव और कंपैटिबिलिटी की जरूरत होती है। ऐसे में बार-बार हर मशीन की सेटिंग करना और काम करने से पहले उसका ध्यान रखते रहना तो बेवजह, लगातार अनावश्यक ऊर्जा खर्च करते चले जाने जैसा है। दूसरी तरफ अगर आपने यूनिकोड में कोई रचना किसी अखबार या पत्रिका को भेजी और वहां बैठे व्यक्ति के पास फॉन्ट परिवर्तक नहीं है, या वह परिवर्तन की जहमत नहीं उठाना चाहता तो आपकी रचना का प्रकाशन खटाई में पड़ा जानिए।

हिंदी में फॉन्ट और की-बोर्ड की एकरूपता में कमी को दूर करने के लिए किसी एक फॉन्ट या फॉन्ट कोड को मानक बनाकर उसके आधार पर बने समांग फॉन्टों का इस्तेमाल करने की कोशिश करने की बजाए फॉन्ट परिवर्तक के इस्तेमाल पर जोर रहता है। तकनीकी विशेषज्ञों के लिए यह आसान बात है कि वे जरूरत के मुताबिक फॉन्ट परिवर्तक इस्तेमाल करें या फिर नया उपयुक्त कनवर्टर बना ही लें। लेकिन फॉन्ट कोड कनवर्ट करते रहना तो लगातार पीछा करते रहने जैसा है- कोई नया फॉन्ट आया तो कनवर्ट करें, पुराने फॉन्ट में कोई मैटर है, तो भी कनवर्ट करें। फॉन्ट निर्माता अक्सर अपनी निर्मिति में जरूरत के मुताबिक बदलाव करते रहते हैं। जब-जब यह बदलाव हो, तब-तब अपने परिवर्तक में भी

HBCSE

बदलाव करते रहना होगा। और कई बार फॉन्ट में हुए बदलाव का पता भी तभी चलता है, जब आपको परिवर्तक इस्तेमाल करने पर भी बदले हुए टेक्स्ट में जंक मिल जाता है। यानी बालू को मुट्ठी में भींचने की कोशिश जो लगातार फिसलती ही जाती है। यह कन्वर्जन का काम अंतहीन तथा अनावश्यक है तथा समय तथा ऊर्जा नष्ट करने वाला है।

और, सबसे बड़ी बात यह है कि आखिर कितने हिंदी इस्तेमाल करने वाले हैं जिन तक ये कनवर्टर्स किसी भी जरिए से पहुंच सके हैं? अभी कुछ समय पहले तक मैं खुद भी बिल्कुल अंधेरे में थी और कुछ तकनीकी जानकारों पर निर्भर करती थी कि वे मेरी मदद कर देंगे। हममें से भी कई होंगे जिनके पास जरूरत होने के बाद भी फॉन्ट परिवर्तक नहीं हैं। उपयोगकर्ता की जरूरत और सहूलियत के लिए फॉन्ट की एकरूपता और मानकीकरण जरूरी है।

नए सॉफ्टवेयरों में तथा इंटरनेट पर भी पूरी तरह से यूनिकोड फॉन्टों का इस्तेमाल होने लगा है। ये काफी हद तक मानकीकृत भी हो चुके हैं। वैश्विक स्तर पर- ओपन सोर्स से लेकर निजी सॉफ़्टवेयर निर्माताओं तक सभी के लिए अब न सिर्फ हिंदी में बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं - तमिल, तेलुगु, पंजाबी, बांग्ला, गुजराती इत्यादि के लिए भी यूनिकोड मानक मान लिया गया है। लेकिन फिर भी इसमें कई कमियां और समस्याएं हैं। पहली तो यही कि कोई स्थापित मानक फॉन्ट कोड अब भी नहीं है।

इससे भी बड़ी समस्या यह है कि हिंदी में पहले से व्यावसायिक काम कर रहे प्रकाशन संस्थानों ने अपनी पुस्तकों, पत्रिकाओं या अखबारों की पहचान बनाने, अपनी सॉफ्ट कॉपियों की चोरी रोकने, अपने दफ्तर में कोई और काम होने से रोकने के लिए दसियों साल पहले जो फॉन्ट विकसित किए, और आज इतने तकनीकी बदलावों के बाद भी उन्हीं पुराने फॉन्टों पर अटके हुए हैं। शायद इसलिए कि इन्हें एक तरह के की-बोर्ड का अभ्यास हो गया है जिसे वे बदलना नहीं चाहते। बदलने के लिए पहले अपने पुराने सिस्टम बदलने होंगे, अद्यतन सॉफ्टवेयर कीमत देकर खरीदने होंगे, फिर अपने कर्मचारियों को उन नए सॉफ्टवेयर पर अभ्यास कराना होगा। बदलाव की खर्चीली प्रक्रिया से बचने के लिए वे पुराने, पिछड़ी तकनीक के फॉन्ट इस्तेमाल करते चले जा रहे हैं।

एडोबी कंपनी के पेजमेकर (पुस्तक-पत्रिकाओं के लिए), फोटोशॉप (तसवीरों के लिए) और कोरल ड्रॉ (चित्रों और टेक्स्ट का समन्वय) के पुराने लेकिन आज तक खासे लोकप्रिय वर्जन यूनिकोड समर्थित नहीं हैं। उनके लिए कृतिदेव या चाणक्य जैसे नॉन-यूनिकोड फॉन्ट ही उपयोग करने होते हैं। एडोबी के नए महंगे वर्जन और कई दूसरे विकल्प भी आ गए हैं जो यूनिकोड समर्थित हैं। लेकिन बात यह है कि कितने भी बदलाव आ जाएं, जब तक पुरानी तकनीक काम करती है, इस्तेमाल करने वाले उसे नहीं बदलना चाहेंगे। और निश्चित रूप

HBCSE

से हिंदी का आधे से ज्यादा व्यावसायिक काम गैर-यूनिकोड में हो रहा है।

माइक्रोसॉफ्ट, गूगल जैसी विदेशी कंपनियों ने हमारे लिए इतना तक तक दिया है कि हमें एक यूनिकोड से सुसज्जित सॉफ्टवेयर, ऑपरेटिंग सिस्टम और कई ऑनलाइन सुविधाएं दे दी हैं। अब हमें सिर्फ यह करना है कि किसी तरह इसे सबसे ज्यादा इस्तेमाल होने वाला मानक फॉन्ट-कोड बनाना है ताकि फॉन्ट-परिवर्तन के झमेले से छुटकारा मिले। हिंदी में कंप्यूटर के मामले में लास्ट माइल कनेक्टिविटी की दिक्कत है, जिसे हमें तय करना है। हम मिलकर क्या करें कि यह इस रास्ते की आखिरी बड़ी रुकावट हट जाए। सरल शब्दों में कहें तो करना इतना है कि सबको कहें कि आपसी संवाद के लिए किसी एक ही भाषा का इस्तेमाल करें ताकि बातचीत हो सके, सबको समझ में आए। यानी लिखित सामग्री की सहज साझेदारी के लिए, जो कि कंप्यूटर, मोबाइल और इंटरनेट के जरिए आम हो गई है, किसी एक ही फॉन्ट-परिवार को अपनाएं।

हिंदी में कंप्यूटिंग के इतिहास को देखें तो शुरुआत में हिंदी में कंप्यूटर का की-बोर्ड, टाइपराइटर से जस-का-तस ले लिया गया जिसमें ज्यादातर अक्षर बनाने के लिए दो कुंजियों का इस्तेमाल करना पड़ता था। इसमें थोड़ा-बहुत सुधार हुआ भी, लेकिन संयुक्ताक्षरों के लिए फिर भी तीन या चार कुंजियों के समवेत इस्तेमाल की जरूरत पड़ने लगी। इस तरह की की-बोर्ड व्यवस्था को रेमिंगटन की-बोर्ड कहा जाता है। कुंजीपडल के विन्यास तीन तरह के होते हैं। एक तो रेमिंगटन, दूसरा इनस्क्रिप्ट, जो यूनिकोड के लिए होता है, और तीसरा फोनेटिक या ध्वन्यात्मक कुंजी-पटल, जो रोमन अक्षरों के सहारे हिंदी टाइपिंग की सुविधा के लिए है। एडोबी को छोड़कर लगभग सभी बड़ी सॉफ्टवेयर-निर्माता कंपनियों ने यूनिकोड को डीफॉल्ट हिंदी की-बोर्ड के रूप में अपनाकर एक तरह से मानकीकृत कर दिया है।

रेमिंगटन की-बोर्ड

HBCSE

शुरुआत में हिंदी के विभिन्न प्रकाशन संस्थानों, अखबारों आदि ने अपने-अपने फॉन्ट विकसित किए जिसे वे व्यावसायिक कारणों से आपस में साझा नहीं करते थे, बल्कि प्रतिस्पर्धियों से छुपाकर ही रखते थे। नतीजतन टाइप की गई सामग्री किसी और के कंप्यूटर पर देखनी हो या इंटरनेट से किसी को भेजनी हो तो साथ में फॉन्ट भेजना जरूरी होता था जो आम तौर पर चोरी से ही भेजा जाता था। यह स्थिति कंप्यूटर पर हिंदी के विकास के बजाए अवरोध का ही सबब बनी।

वर्ष 1999 में इंदौर के नईदुनिया समूह द्वारा हिंदी का पहला पोर्टल वेबदुनिया लाया गया तो हिंदी के पाठक चमत्कृत रह गए। उन्हें अपनी भाषा में विज्ञान सहित सभी विषयों पर ऑनलाइन सामग्री देखने-पढ़ने को मिली, ई-पत्र के रूप में हिंदी में ईमेल की सुविधा भी मिली। लेकिन इसे पढ़ने के लिए पहले इसका विशिष्ट फॉन्ट डाउनलोड करके संस्थापित करना होता था। अगर वह आप ठीक से नहीं कर पाए तो अक्षरों की जगह अबूझ चिन्ह ही नजर आते थे।

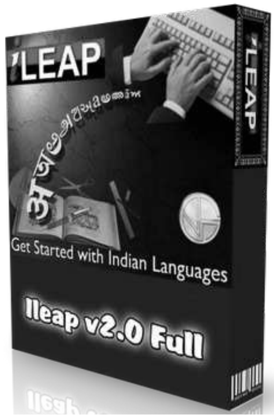

आई लीप सॉफ्टवेयर

उस समय राजभाषा हिंदी में संचार को तकनीक-आधारित मंचों पर बढ़ावा देने के लिए सरकारी क्षेत्र में सी-डैक जैसी संस्थाओं ने कंप्यूटर को हिंदी समर्थित बनाने के लिए आई लीप और लीप ऑफिस जैसे सॉफ्टवेयर और उस पर चल सकने वाले विविध फॉन्ट विकसित किए। धीरे-धीरे वर्तनी शोधन (स्पेल चेक), शब्दकोश, मशीन असिस्टेड ट्रांसलेशन टूल (मात्रा), ओसीआर (ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकग्निशन) और अंग्रेजी से हिंदी और विभिन्न भारतीय भाषाओं में आपसी अनुवाद का एक सॉप्टवेयर 'अनुसारक' भी सी-डैक ने बनाया। लेकिन ये सभी सॉफ्टवेयर कंप्यूटर क्रांति के शुरुआती समय में बने थे जो थोड़ी-सी चमक दिखाकर लगभग गायब ही हो गए। इन संस्थानों ने बदलते तकनीकी तौर-तरीकों के अनुरूप उसी रफ्तार से भाषायी औजारों में सुधार नहीं किया।

असमान फॉन्ट की समस्या का एक और आयाम है- की-बोर्ड लेआउट- यानी की-बोर्ड पर किस अक्षर या कैरेक्टर वाली कुंजी कहां होगी। अगर मंगल फॉन्ट में अंग्रेजी के 'के' अक्षर पर 'क' अक्षर टाइप होता है, तो कृतिदेव या चाणक्य में उस जगह पर कोई और अक्षर होगा। इस तरह एक की-बोर्ड लेआउट पर काम करने का अभ्यस्त व्यक्ति दूसरे पर अनाड़ी साबित होगा। और दिलचस्प बात यह है कि हिंदी में ही दर्जन भर से ज्यादा की-बोर्ड लेआउट यूनीकोड आने के बाद भी चलन में हैं।

यूआरएल यानी वेबसाइट के पते के लिए हमारी अंग्रेजी पर निर्भरता का एक कारण फॉन्ट की समरूपता न होने की हमारी अपनी कमजोरी है। इंटरनेट कॉरपोरेशन फॉर असाइन्ड नेम्स ऐंड नंबर्स (आईकैन) नाम का संगठन दुनिया-भर के डोमेन नामों की निगरानी, व्यवस्था और इससे जुड़े फैसले करता है। संगठन में कई बार हिंदी में डोमेन नेम यानी वेब पते देने के मसले पर विचार हो चुका है। लेकिन इसे समर्थन न मिलने का बड़ा कारण फॉन्ट की समरूपता न होना ही है।

डॉट मैट्रिक्स प्रिंटर

संक्षेप में फॉन्ट निर्माण का इतिहास जानने की कोशिश करें तो- सबसे पहले 1980 के आसपास एम.एस. डॉस युक्त पहले पर्सनल कंप्यूटरों में बिटमैप फॉन्ट का इस्तेमाल होता था। तब के डॉट मैट्रिक्स या पीसीएल लेजर प्रिंटरों के अनुकूल इन फॉन्टों में हर स्टाइल यानी नॉर्मल, बोल्ड, इटालिक आदि के लिए अलग-अलग फॉन्ट-सेट बनाए जाते थे। कूरियर 12.bmp यानी 12 पॉइंट का नॉर्मल कोरियर फॉन्ट और Courier B 24.bmp यानी 24 पॉइंट कूरियर बोल्ड। ठीक वैसे ही, जैसे इंटरनेट की शुरुआत में पूरी एच.टी.एम.एल. सिन्टैक्स लिखने पर ही कोई टैक्स्ट इंटरनेट पर डाला जा सकता था। इस तरह हर आकार के लिए स्टाइल के आधार पर अलग फॉन्ट बनाने पड़ते थे। इन सभी को समायोजित करने के लिए हार्ड डिस्क पर काफी स्पेस खर्च होता था।

लेज़र राइटर प्रिंट

इसके बाद एडोबी कंपनी ने पोस्ट-स्क्रिप्ट फॉन्ट .pfb बनाए जो उसके अनुकूल लेज़र राइटर प्रिंटर के साथ काफी सफल रहे। ये फ़ॉन्ट किसी अक्षर की आउटलाइन भर बनाते थे जो मुद्रण के किसी सॉफ्टवेयर पर कमांड के मुताबिक आकार या स्टाइल में स्क्रीन पर दिखते थे और प्रिंटर उसको सपोर्ट करते हुए उपयुक्त आकार के अक्षर छाप सकता था। इन्हें चलाने के लिए अडोबी टाइप मैनेजर की जरूरत होती थी। अक्षरों की सटीकता, स्पष्टता, लाइन स्पेसिंग, शार्पनेस जैसे गुणों के कारण ये फॉन्ट डिजाइनरों के चहेते बन गए। ये काफी महंगे और मूलतः प्रिंट के लिए थे। इसके जवाब में ऐप्पल और माइक्रोसॉफ्ट ने ट्रू-टाइप फॉन्ट (.ttf) बनाए जो किसी फॉन्ट के सिर्फ गणितीय आउटलाइन को रखते थे और तब के विंडोज़ 3.0 के ऑपरेटिंग सिस्टम का TTF इंजन इसे छोटा या बड़ा करके दिखाता था। इसमें 6 से लेकर 600 पॉइंट तक के आकार में अक्षर देखे जा सकते थे। हर

HBCSE

आकार या स्टाइल के फॉन्ट को अलग से हार्ड डिस्क पर रखने की जरूरत नहीं थी। यह फॉन्ट के विकास का एक बड़ा पड़ाव था।

इसके बाद पोस्ट-स्क्रिप्ट और ट्रू-टाइप फॉन्ट्स की कमियों को दूर करने के लिए ओपन टाइप फॉन्ट बने जिसने ट्रू-टाइप की फॉन्ट फाइल की 256 कैरेक्टर्स की सीमा को तोड़ा और टाइपफेज़ डिजाइन में हर फॉन्ट फाइल में हजारों कैरेक्टर या ग्लिफ मिलने लगे जिससे उन्हें डिजाइन के अनगिनत विकल्प मिल गए। एसोसिएशन ऑफ स्क्रिप्ट कोड फॉर इंनफॉरमेशन इंटरचेंज, ASCCI संस्था ने रोमन की इन सभी फॉन्ट- श्रृंखलाओं को मानक के रूप में क्रमशः मान्यता दे दी जिसके कारण नए बनने वाले सभी कंप्यूटरों के ऑपरेटिंग सिस्टम्स पर इन्हें ही स्थापित किया गया।

भारत में फॉन्टों के मानकीकरण पर कोई काम नहीं हुआ हो, ऐसा नहीं है। भारतीय भाषाओं की कम्प्यूटिंग के लिए 1991 में सी-डैक (CDAC) के सहयोग से भारत सरकार के भारतीय मानक संस्थान BIS- ISI ने (Indian Script Code for information interchange)- ISCII-1991 का मानकीकरण किया था। इसी के साथ सी-डैक ने Indian Script Font Code (ISFOC) की डिजाइनिंग की और ISFOC फॉन्ट्स बनाए। लेकिन किन्हीं कारणों से उनका मानकीकरण नहीं हो पाया। भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के TDIL ने भी Font-codes के कई draft जारी किए लेकिन उनमें से किसी का मानकीकरण नहीं हो पाया। इसके कारणों को जानने के लिए गहन अध्ययन करना पड़ेगा जो फिलहाल मैं शायद नहीं कर पाई। इन मुफ्त में उपलब्ध लेकिन अमानकीकृत फॉन्ट कोडों में वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों ने जरूरत के मुताबिक समय-समय पर कई बदलाव भी किए जिनमें स्वाभाविक ही था कि कोई एकरूपता नहीं थी।

इंटरनेट विदेश से आई तकनीक है जिसे हम आज भी जस-का-तस ले रहे हैं बिना इसका स्थानीकरण किए। इसी क्रम में विदेशी वैज्ञानिकों ने हमारे लिए यूनिकोड फॉन्ट भी तय कर दिए। रोमन की तरह भारतीय भाषाओं के लिए भी यूनिकोड फॉन्ट बनाकर कंप्यूटरों के भारतीय वर्जन्स में संस्थापित कर दिया गया, भाषा, लिपि की विशिष्टताओं को समझे बिना। इसके प्रचलन के बाद से ISCII मृतप्राय हो गया है, हालांकि शुरुआती युनिकोड ISCII की नकल ही था। अद्यतन यूनिकोड 6.0 है। फॉन्ट-कोड और की-बोर्ड ले आउट- यानी किस कुंजी पर कौन-सा कैरेक्टर होगा, में हिंदी के वर्णक्रम, विशेष चिह्नों, मात्रा लगाने की विधि, संयुक्ताक्षर और रोमन के कई चिन्हों के समावेश जैसे कई मामलों में समझ न होने के कारण आयातित इंडिक यूनिकोड व्यवस्था में गड़बड़ियां हैं। इनके तोड़ के लिए देसी स्तर पर यूनिकोड के विभिन्न वर्जन बन गए हैं। हालांकि इनमें मोटे तौर पर एकरूपता अब भी है लेकिन जो चिह्न, अक्षर मानक नहीं हैं, उनके साथ भी वही समस्या आती है, जो विजातीय फॉन्टों के साथ है। उदाहरण के लिए रोमन कीबोर्ड में प्रश्न चिह्न या ऋ या ऑ के लिए कुंजियां तय नहीं हैं। बैक-स्लैश के लिए भी रोमन की-बोर्ड में स्विच करना पड़ता है और बाकी टाइपिंग के

लिए फिर हिंदी पर आना होता है। किसी भी टाइप करने वाले को भाषा बदलने के लिए यह ऑल्ट-शिफ्ट वाली कूद-फांद अपने काम के दौरान कई बार करनी पड़ती है। यह अलग बात है कि ज्यादातर लोगों को इस असुविधा की भी आदत पड़ गई है। फॉन्ट कोड मानकीकरण के साथ ही संयुक्ताक्षरों, पूर्णाक्षरों, विशेष चिह्नों के लिए भी मानकों का निर्धारण करने की जरूरत है।

यूनिकोड कन्सोर्शियम जो सभी भाषाओं में यूनिकोड फॉन्ट-कोड संबंधी मानकीकरण करती है, की नीति के मुताबिक कोई एनकोडेड कैरेक्टर अगर गलत हो, तो भी उसकी स्वीकृति के बिना सुधारा, हटाया या बदला नहीं जाएगा। यूनिकोड संगठन एक गैर-सरकारी संगठन है जिसकी सदस्य-संस्थाओं में भारत सरकार के टीडीआईएल, एमआईटी और तमिलनाडु सरकार हैं, जिन्हें वोट देने का अधिकार है। वैयक्तिक सदस्यों को यहां वोट का अधिकार नहीं होता। इतने कम सदस्य होने के कारण भारतीय भषाओं से संबंधित प्रस्तावों को अक्सर महत्व नहीं दिया जाता या फिर समर्थन में ज्यादा वोट भी नहीं जुट पाते। इसी वजह से हिंदी के यूनिकोड में जिन बदलावों की जरूरत है, वे इस संस्था द्वारा मानकीकृत नहीं हो पा रहे हैं।

मेरा सुझाव है कि नए माध्यमों में हिंदी/देवनागरी लिपि के उपयोगकर्ता और इस विषय के विशेषज्ञ भारतीय भाषाओं में फॉन्ट-कोड, उसके की-बोर्ड ले आउट और दूसरे संबंधित मसलों पर मिलकर सोचें। इसके लिए संगठित होकर काम करने की जरूरत है। सरकार में संबंधित कार्यालयों, अधिकारियों और इस पर काम कर चुके लोगों को जोड़ें जो फिर आगे फैसला लेने में सक्षम/महत्वपूर्ण लोगों को प्रभावित करें, मनाएं और बताएं कि यह समस्या आसानी से सुलझ सकती है। इसमें थोड़ी-सी राजनीतिक/प्रशासनिक इच्छाशक्ति की जरूरत है। उन्हें यह प्रस्ताव भी दिया जा सकता है कि सरकार की तकनीकी टीम को सभी तरह का सपोर्ट देने के लिए तकनीकी जानकार और गैर-तकनीकी अनुभवी उपयोगकर्ता सेवाएं देने के लिए उपलब्ध हैं। यह सब योजनाबद्ध और समयबद्ध ढंग से हो।

देवनागरी की-बोर्ड

HBCSE

विदेशी कंपनियों के सहारे अपनी भाषा में कंप्यूटर इस्तेमाल की सुविधा के मामले में इतना आगे बढ़ आने के बाद भी हम फॉन्ट और की-बोर्ड के मानकीकरण जैसे छोटे से मसले को दशकों में भी सुलझा नहीं पाए हैं। इसका आखिर क्या कारण हो सकता है। ऐसा लगता है कि निर्णय लेने की स्थिति में बैठे, अंग्रेजी में काम करने वाले लोग हिंदी कंप्यूटिंग की इस गुत्थी को समझते हैं, लेकिन इस पर ध्यान नहीं देते, क्योंकि यह स्थिति उनके लिए कोई समस्या पैदा नहीं करती। और जैसी कि समाजशास्त्र की सोशल हेजेमोनी थ्योरी कहती है कि समाज के ऐसे समृद्ध, समर्थ लोग समझते हैं कि अगर उनके काम में कोई रुकावट नहीं आ रही, इसका अर्थ है कि समाज के बाकी हिस्से की चिंता में भी यह शामिल नहीं है। और हिंदी कंप्यूटिंग के मामले में निश्चय ही यही विचार काम कर रहा है। इसलिए उस स्तर तक बात पहुंचाना और उनसे यह कहलवाना सबसे जरूरी है। उपयोगकर्ताओं के स्तर पर पर्सुएशन और व्यवहार- संशोधन ज्यादा आसान होगा।

कोई जन-समर्थन प्राप्त फॉन्ट व्यवस्था तय कर ली जाए तो फिर उसके लिए बीआईएस की स्वीकृति पाने में देर नहीं लगेगी। और आखिर अगर यह हो जाता है यानी हमारे देश में की-बोर्ड ले-आउट और फॉन्ट-कोड का मानकीकरण और एकरूपता, तो फिर यह दुनिया भर में मान्य होगा और सभी देशी-विदेशी सॉफ्टवेयर निर्माता बिना किसी दुविधा के, सिर्फ यूनिकोड हिंदी में ही सारे सॉफ्टवेयर अपने भारतीय वर्जन्स में विकसित करेंगे। क्योंकि यूनिकोड संस्था की एक नीति यह भी है कि वे संबंधित देश या क्षेत्र में प्रचलित मानकों का अनुकरण करने को प्राथमिकता देते हैं। यदि हमारा एक मानक निर्धारत हो, प्रचलित हो, तो यूनिकोड की तकनीकी समिति को भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानक निर्धारित करने में भारी मदद मिलती है। जिस फॉन्ट-व्यवस्था को देश की मानक संस्था की स्वीकृति है, उसे अंतर्राष्ट्रीय मानक संगठन भी आसानी मान लेगा। आज एकाध ही फोन मॉडलों में इंटरनेट के एंड्रॉइड ऑपरेटिंग सिस्टम पर हिंदी समर्थन मिलता है। कंप्यूटर के अलावा मोबाइल आदि के लिए हिंदी और भारतीय भाषाओ को समर्थन भी इसी रास्ते से मिल पाएगा।

❖ संपादक
प्रकाशन विभाग,
सूचना और प्रसारण मंत्रालय,
भारत सरकार,
नई दिल्ली-110017
ई-मेल : ranuradha11@gmail.com

HBCSE

स्कूली पाठ्यचर्या में पर्यावरण विज्ञान एवं विज्ञान दर्शनः एक शिक्षाशास्त्रीय विश्लेषण

◆ आलोक कुमार मिश्र

सारांश

भारत की स्कूली शिक्षा पद्धति में समय समय सुधार हेतु प्रयास किए जाते रहे हैं। गांधी जी के बुनियादी तालीम से लेकर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 तक की यात्रा में अनेक पड़ाव रहे हैं। इन सभी प्रयासों का उद्देश्य तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था की कमियों को दूर करना और इसे समृद्ध बनाना रहा है। भारत की शिक्षा व्यवस्था विशेषतौर पर स्कूली पाठ्यचर्या में काफी विसंगतियां और अनियमितताएं हैं। प्रस्तुत आलेख में हमारी स्कूली पाठ्यचर्या में पर्यावरण विज्ञान और विज्ञान दर्शन से जुड़ी हुई बातों का आकलन करने का प्रयास किया गया है। यह आकलन काफी हद तक शिक्षा के उद्देश्य और पाठ्यक्रम की वैधता के सिद्धांतों पर आधारित है।

प्रस्तुत आलेख मुख्यतः दो भागों में बंटा हुआ है। पहले भाग में समसामयिक पर्यावरण शिक्षा की आरंभ से वर्तमान तक की यात्रा के विभिन्न पड़ावों की चर्चा करने के साथ इसकी वर्तमान स्थिति के बारे में कुछ बिंदु उद्धृत किए गए हैं। आलेख का दूसरा भाग थोड़ा संक्षिप्त हैं और इसमें पाठ्यक्रम में विज्ञान दर्शन के निरूपण से जुड़े कुछ व्यावहारिक बिंदुओं को उठाया गया है।

पर्यावरण शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास

स्कूली शिक्षा में पर्यावरण से संबंधित शिक्षा के कुछ पहलुओं का समावेश आरंभ से ही रहा है। पर्यावरण शिक्षा के वर्तमान स्वरूप में आने के क्रम में इसके विभिन्न पड़ाव देखने को मिलते हैं। आधुनिक भारत के शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य में अगर देखा जाए तो गांधी जी के द्वारा 1937 में प्रस्तावित “वर्धा शिक्षा योजना” को इसकी शुरुआत के तौर पर देख सकते हैं। यद्यपि वर्धा शिक्षा योजना या बुनियादी तालीम को एक सार्वभौमिक शिक्षा पद्धति के तौर पर मान्यता नहीं मिली लेकिन यह एक ऐसी शैक्षणिक विचारधारा के तौर पर मान्य हुई जिसके प्रत्यक्ष सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय महत्व थे। वर्धा शिक्षा योजना सिर्फ एक शिक्षा सिद्धांत न होकर आने वाले समय के लिए एक मील का पत्थर भी साबित हुई। दुर्भाग्यवश वर्धा शिक्षा योजना का उतना प्रचार प्रसार नहीं हुआ क्योंकि इसके व्यावहारिक और क्रियान्वयन पक्षों को लेकर उस समय के नीति-नियंताओं में मतैक्य नहीं था और साथ में तेजी से होने वाले औद्योगीकरण और इससे जुड़ी हुई बातों को भी इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है।

आजाद भारत में शैक्षणिक सुधार के प्रयासों में कोठारी आयोग (1964-

66) का दस्तावेज काफी महत्वपूर्ण है जिसकी संस्तुतियों के मुताबिक प्रारंभिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों में पर्यावरण संबंधित शिक्षा भी अनिवार्य रूप से निहित है और इस शिक्षा का उद्देश्य जीवन की आवश्यकताओं, लोगों और राष्ट्र की आकांक्षाओं को पूरा करने में निहित है। प्रारंभिक स्तर की शिक्षा के संबंध में इस आयोग की संस्तुतियों में कहा गया है कि "प्रारंभिक कक्षाओं में विज्ञान पढ़ाने का उद्देश्य भौतिक और जैवजगत के मूलभूत सिद्धांतों, प्रक्रियाओं, अवधारणाओं और तथ्यों के बारे में उचित समझ विकसित करना है"। यद्यपि इस समय की पाठ्यपुस्तकों में विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा के वर्णन में गहन विभिन्नताएं देखने को मिलती हैं लेकिन पहली कक्षा से ही पर्यावरण शिक्षा का समावेश इस आयोग की मुख्य उपलब्धियों में से एक है। भारत की स्कूली शिक्षा की आरंभिक नीतिगत कठोरता और क्रियात्मक लचीलेपन के अभावों के बीच इनमें सुधार के प्रयास भी होते रहे हैं। कोठारी आयोग की संस्तुतियां इस दिशा में एक सार्थक पहल थीं। इसके बाद के वर्षों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की संस्तुतियों में पाठ्यचर्या और इसके पर्यावरण संरक्षण के साथ सीधे जुड़ाव और पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता को प्रमुखता से उच्चारित किया गया है।

शैक्षणिक सुधारों के सबसे नवीन प्रयासों में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (2005) का आगमन था। इस रूपरेखा के लचीलेपन और प्रतिबद्धता को इसमें वर्णित दो परिभाषाओं के माध्यम से समझा जा सकता है। "इस रूपरेखा के अंतर्गत शिक्षा के उद्देश्यों को उच्चारित करने के दो मुख्य कारण हैं– पहला, पूरे समाज की सामाजिक एवं राजनीतिक अपेक्षाएं संयुक्त रूप में प्रतिबिंबित हो सकें। दूसरा, महत्वपूर्ण प्रशिक्षण प्रणाली द्वारा शिक्षक को पाठ्यसामग्री और शिक्षण पद्धतियों के चुनाव के लिए दिशानिर्देश देने का सार्थक शिक्षाशास्त्रीय लक्ष्य"। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के दिशानिर्देशों और वैधता मानकों के अनुपालन के द्वारा गुणवत्तापूर्ण और सार्थक शिक्षा के उद्देश्यों की अनुपूर्ति की आशा की गई।

पर्यावरण शिक्षा की समसामयिक आलोचना करने के पहले हमें इससे जुड़े हुए कुछ मूलभूत प्रश्नों को मस्तिष्क में रखकर आगे बढ़ना होगा।

- शिक्षा के निहितार्थों और उद्देश्यों की पूर्ति में पर्यावरण शिक्षा किस प्रकार सहायक है, और
- वर्तमान में पर्यावरण शिक्षा की चुनौतियां क्या-क्या हैं?

पर्यावरण शिक्षा के कुछ उद्देश्य और चुनौतियां

पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों को लेकर कुछ आधारभूत तथ्य निर्देशित हैं। भारत के संविधान में मौलिक कर्तव्यों (अनुच्छेद 51 अ) को प्रमुखता से उच्चारित किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास, पर्यावरण और संस्कृति की रक्षा और मानवता की भावना का विकास आदि। वास्तव में **पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों और मौलिक कर्तव्यों में** एक तरह का गहन तारतम्य दिखाई पड़ता है। उसी तरह से पर्यावरण, शिक्षा और शिक्षा से जुड़े दूसरे प्रभागों के अंतर्संबंधों को प्रमुख स्थान

दिया गया है। इसके तीन मुख्य बिंदु हैं।

- पर्यावरण के बारे में शिक्षा (ज्ञानात्मक और तथ्यात्मक)
- पर्यावरण हेतु शिक्षा (मानवीय मूल्यों, अवधारणात्मक बदलावों, और पर्यावरण के प्रति प्रेम)
- पर्यावरण द्वारा शिक्षा (पर्यावरण, इसकी संक्रियाओं और घटकों को शैक्षणिक संसाधन के तौर पर देखना)

पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम में इसकी विशिष्ट स्थिति को ध्यान में रखते हुए और अब तक इसमें सुधार के इतने सारे प्रयासों को देखते हुए अगर तुलना की जाए तो अभी भी पर्यावरण शिक्षा की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं है। भारत में शिक्षा गुणवत्ता स्तरों में भी खासी विभिन्नता दिखाई देती है। एक ओर तो काफी संपन्न और उन्नत विद्यालय हैं जहां शिक्षा गुणवत्ता और मानकों का पूरा ध्यान रखा जाता है लेकिन अगर वृहतर परिदृश्य में देखा जाए तो ऐसे विद्यालयों की संख्या काफी सीमित है। साथ में इन विद्यालयों की शिक्षा इतनी महंगी है कि भारत की अधिकांश जनता इससे जुड़े हुए खर्चे वहन नहीं कर सकती। अतः यह कह सकते हैं कि देश में वृहत् स्तर पर शिक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए केन्द्र और राज्य शिक्षा प्रतिष्ठानों द्वारा चलाए गए विद्यालय ही जिम्मेदार होते हैं। विगत वर्षों में कुछ गैरसरकारी प्रतिष्ठानों द्वारा कराई गई भारत की शिक्षा व्यवस्था के आकलन की जो रिपोर्ट (पीसा रिपोर्ट) आई हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि विद्यालयों से जिन शैक्षणिक मानकों और उपलब्धियों की अपेक्षा की जाती है, उनसे वे अभी भी काफी दूर हैं। ऐसी स्थिति में इन दोनों तरह के विद्यालयों के लिए किसी एक तरह की पर्यावरण पाठ्यचर्या ईजाद करना भी एक कठिन काम है।

HBCSE

भारत में पर्यावरण शिक्षा के प्रबंधन एवं नियोजन के लिए मुख्यतः पर्यावरण एवं वन मंत्रालय जिम्मेदार है। विद्यालयों में ईको क्लब और विज्ञान मेलों के द्वारा पर्यावरण संरक्षण और शिक्षा से जुड़े उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयास किया जाता है। एक तरह से देखा जाए तो पर्यावरण शिक्षा के नियोजन और प्रबंधन हेतु पर्यावरण मंत्रालय से इसकी संबद्धता इसे एक विशिष्ट स्थान देती है। लेकिन यह विशिष्ट स्थान कहीं न कहीं इसे मुख्य धारा शिक्षा व्यवस्था में शामिल होने में बाधा भी है। भारत के कुछ भौगोलिक स्थानों के अधिकांश विद्यालयों में ईको क्लब और इससे जुड़ी पर्यावरण गतिविधियां एक औपचारिकता का निर्वहन मात्र हैं। पर्यावरण से जुड़ी चुनौतियों के क्रम में एक महत्वपूर्ण बिंदु पाठ्यक्रम को लेकर भी है। विद्यालय पाठ्यचर्या के विकास और नियोजन हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा–2005 अपने आपमें एक समृद्ध और नियोजित प्रपत्र है जो कि किसी भी विषय के पाठ्यचर्या विकास हेतु एक स्पष्ट अनुदेश देता है। राज्य शिक्षा प्रतिष्ठानों से उम्मीद की जाती है कि वे इन अनुदेशों के आधार पर और अपने राज्य विशेष की भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, भाषायी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यचर्या तैयार करेंगे। वास्तविकता के धरातल पर ऐसा कम ही दिखाई देता है।

उत्तर प्रदेश राज्य शैक्षणिक प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित पर्यावरण शिक्षा की पुस्तकों के कुछ सामग्री इस बात की गवाही देती है। *"आपने गंगा नदी का नाम तो सुना ही होगा। प्रयाग में गंगा, यमुना नदियां मिलती हैं। ये आपके प्रदेश की सबसे बड़ी नदियां हैं। इन दोनों मुख्य नदियों के साथ ही अन्य नदियों का जल इतना प्रदूषित हो गया है कि यह पीने लायक नहीं है।"*

यहां यह बात गौर करने की है कि पूरी पुस्तक में गंगा और यमुना के बारे में इन्हीं बातों से शुरुआत की गई है और इन दोनों नदियों के संदर्भ में इससे ज्यादा कुछ कहा भी नहीं गया है। ऐसे में यह बात सोचने वाली है कि क्या राष्ट्रीय और सांस्कृतिक महत्व की इन नदियों का बालकों को परिचय देते समय हमें इन्हें प्रदूषित नदियों का संदर्भ देते हुए परिचय कराना चाहिए।

आपने गंगा नदी का नाम तो सुना ही होगा। प्रयाग में गंगा, यमुना नदियाँ मिलती हैं। ये आपके प्रदेश की सबसे बड़ी नदियाँ हैं। इन दोनों मुख्य नदियों के साथ ही अन्य नदियों का जल इतना अधिक प्रदूषित है कि यह पीने लायक नहीं है।

पाठ्य पुस्तिका में नदियों को कुछ इस तरह से निरूपित किया गया है।

इसी तरह के एक दूसरे उदाहरण में प्रारंभिक शिक्षा में पर्यावरण विज्ञान के बच्चों को जल संरक्षण संबधित प्रोजेक्ट कार्य हेतु निम्नलिखित अनुदेश दिए गए हैं।

(1) पहले 1 से 2 मीटर चौड़ा और 2 से 3 मीटर गहरा गड्ढा मकान से थोड़ी दूर पर खोदें।

(2) खुदाई करने के बाद गड्ढे को कंकड़, ईंट के टुकड़ों और बजरी से भर दें।

(3) उसके ऊपर मोटी मौरंग डालकर उसे बना लें।

(4) अब इसमें छत से गिरने वाले वर्षा के स्वच्छ जल को जाने दें।

(5) बालू और मौरंग के ऊपर जमने वाली मिट्टी की समय समय पर सफाई करते रहें।

(6) इस गड्ढ़े में वर्षा का प्रथम जल और अन्य प्रदूषित जल न जाने दे।

(7) यह विधि मैदानी क्षेत्रों में या जहां बलुई मिट्टी जमीन के नीचे कम गहराई पर पाई जाती है, वहां के लिए अधिक उपयोगी है।

वर्षा जल संरक्षण से संबंधित ऊपर दिए गए अनुदेशों का व्यावहारिक उपयोग शायद ही किसी विद्यालय की शैक्षणिक गतिविधियों या शिक्षणेत्तर गतिविधियों में होता है और शायद इसके न कराए जाने में शिक्षक या विद्यार्थियों का कोई दोष भी नहीं है। पाठ्यपुस्तकों के विश्लेषण में ऐसे असंख्य उदाहरण मिले हैं जिनसे यह पता चलता है कि किस तरह से राष्ट्रीय पाठ्यचर्य रूपरेखा-2005 की मूल भावना से भटकाव की स्थिति दिखाई दे रही है अथवा इसे ठीक से नहीं समझा गया है। इन पाठ्यपुस्तकों को जब हम थोड़ा गहराई से देखेंगे तो इसमें हमें भाषागत् और अनुदेश स्तर पर और भी कई सारी भ्रांतियां दिखाई देती हैं। पर्यावरण शिक्षा की स्थिति और चुनौतियों के बीच मुख्य सवाल यह है कि इसके बेहतरी हेतु क्या प्रयास किए जा रहे हैं और वे कितने सार्थक हैं। भारत की कुछ गैरसरकारी संगठनों द्वारा और कुछ राज्य सरकारों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किए गए हैं और उन प्रयोगों का अनेक विद्यालयों पर सार्थक प्रभाव भी दिखाई देता है। लेकिन अभी भी ऐसे प्रयासों की संख्या और पहुंच सीमित ही है।

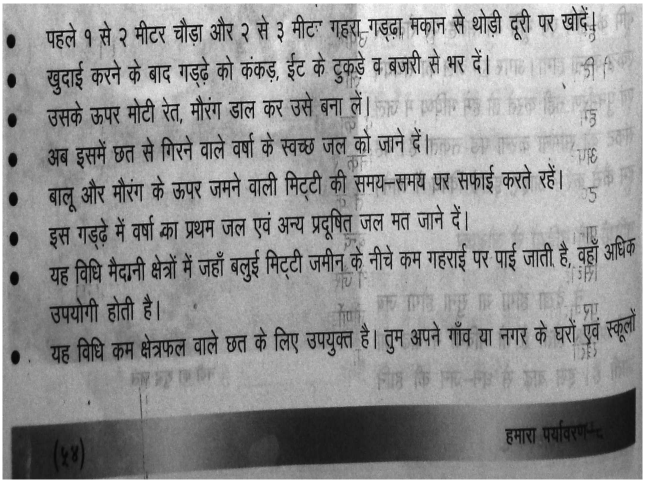

- पहले १ से २ मीटर चौड़ा और २ से ३ मीटर गहरा गड्ढा मकान से थोड़ी दूरी पर खोदें।
- खुदाई करने के बाद गड्ढे को कंकड़, ईट के टुकड़े व बजरी से भर दें।
- उसके ऊपर मोटी रेत, मौरंग डाल कर उसे बना लें।
- अब इसमें छत से गिरने वाले वर्षा के स्वच्छ जल को जाने दें।
- बालू और मौरंग के ऊपर जमने वाली मिट्टी की समय–समय पर सफाई करते रहें।
- इस गड्ढे में वर्षा का प्रथम जल एवं अन्य प्रदूषित जल मत जाने दें।
- यह विधि मैदानी क्षेत्रों में जहाँ बलुई मिट्टी जमीन के नीचे कम गहराई पर पाई जाती है, वहाँ अधिक उपयोगी होती है।
- यह विधि कम क्षेत्रफल वाले छत के लिए उपयुक्त है। तुम अपने गाँव या नगर के घरों एवं स्कूलों

(५४) हमारा पर्यावरण

पाठ्यपुस्तिका में पर्यावरण से जुड़ी गतिविधियों का उल्लेख

विज्ञान का इतिहास और दर्शन– औपनिवेशिकता की छाप

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विज्ञान का इतिहास और दर्शन एक गौण विषय वस्तु है। विज्ञान के विद्यार्थियों और शिक्षकों के पास वैज्ञानिक सिद्धांतों को रटने और पढ़ाने के कार्यक्रम के बीच इतना समय नहीं होता कि वे इस बात पर चिंतन मनन कर पाएं कि विज्ञान अपने वर्तमान स्वरूप में हमारी पाठ्यपुस्तकों में आया कैसे। इस चिंतन बिंदु से विरक्ति का एक दूसरा महत्वपूर्ण कारण इसे जानने की आवश्यकता का न होना है। शैक्षणिक समाज के एक बड़े तबके द्वारा इस बात की आलोचना की जाती है कि हमारी पाठ्यपुस्तकें कहीं न कहीं अभी भी उपनिवेशवाद से मुक्त नहीं हो पायी हैं। हालांकि वर्तमान दौर में औपनिवेशीकरण का मतलब सिर्फ भौगोलिक सीमाओं पर कब्जा करने से थोड़ा अलग हट कर है। इसे ऐसी परिस्थितियों और मानसिकताओं के साथ भी जोड़ा जाता है जो किसी खास औपनिवेशिक उद्देश्यों की पूर्ति करती हों। उदाहरण के तौर पर शिक्षा व्यवस्था के व्यावहारिक उद्देश्यों और इससे निकलने वाले लोगों की भारतीय परिप्रेक्ष्य में

HBCSE

उपादेयता की पड़ताल करें तो पता चलता है कि मौजूदा शिक्षा हमारे देश के मौलिक विकास के लिए शायद ही बनी हो।

एक और बात विज्ञान की उत्पत्ति से जुड़ी हुई अवधारणाओं को लेकर है। हमारी पाठ्यपुस्तकें कहीं इस बात को प्रचारित और प्रसारित करती हैं कि विज्ञान की शुरुआत पश्चिम में हुई। अगर आज के 15-20 साल पहले की स्कूली किताबों को देखिए तो उसमें कई जगहों पर साफ साफ लिखा हुआ है कि “भारत की खोज वास्कोडिगामा ने की थी”। हालांकि बाद में हुए पाठ्यक्रम सुधारों में इसे बदला गया लेकिन वास्कोडिगामा के भारत को खोजने के निहितार्थ अभी भी वैसे ही हैं। विज्ञान की उत्पत्ति की बात करें तो यह मान लिया गया है कि जितनी भी प्राकृतिक और वैज्ञानिक घटनाओं की व्याख्या की गई है, वे सारी पाश्चात्य देशों में हुई हैं और किसी न किसी पाश्चात्य वैज्ञानिक ने इनकी खोज की है। चाहे वे न्यूटन, कॉपरनिकस, आइन्सटाइन या यूक्लिड हों या फिर अन्य खोजकर्ता। आधुनिक विज्ञान के संस्थापकों ने और कुछ किया है या नहीं, लेकिन एक उपलब्धि जरूर उनके खाते में है और वह यह कि विज्ञान की उत्पत्ति और इसके विकास से जुड़े इस कल्पना को इतनी खूबसूरती के साथ एक संस्थागत् प्रक्रिया के रूप में जनमानस में रूपांतरित किया है कि इसका सत्य कहीं गुम-सा गया है।

विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एक मुख्य उद्देश्य कहीं और स्थापित सिद्धांतों को तर्क की कसौटी में कसकर देखना भी है, न कि उन पर विश्वास कर लेना क्योंकि उन्हें किसी महान वैज्ञानिक ने कहा है या वे सत्य जैसी प्रतीत हो रही हैं या इसलिए सही मान लेना क्योंकि कोई और व्याख्या उपलब्ध नहीं है। उदाहरण के लिए न्यूटन द्वारा दिया गया जड़त्व का सिद्धांत जिसे विभिन्न राज्य पाठ्यक्रमों में प्रकृति के सार्वभौमिक नियम के तौर पर पढ़ाया जाता है। “कोई भी वस्तु यदि स्थिर अवस्था में है तो वह स्थिर अवस्था में रहेगी और गति की अवस्था में है तो गति की अवस्था में रहेगी जब तक उस पर कोई वाह्य बल न लगाया जाए” इस नियम को हमारे पाठ्यक्रम ने समस्त नम्रता और विनीत भाव से सार्वभौमिक नियम के तौर पर स्वीकार कर लिया है। लेकिन शायद ही किसी पाठ्यचर्या में यह पूछने पर जोर दिया जाता हो कि क्या पूरे ब्रह्मांड में कोई भी ऐसी जगह है जहां कभी कोई वाह्य बल न लग रहा हो। चूंकि हर जगह हर समय और हर वस्तु पर कोई न कोई वाह्य बल लग रहा है और ऐसी कोई जगह संभव ही नहीं है तो यह नियम प्रकृति के सार्वभौमिक नियम के तौर पर लागू नही होता फिर इस नियम को सार्वभौमिक नियम के तौर पर स्थापित क्यों किया गया है। और हमारी पाठ्यचर्या में इन बातों पर प्रश्न उठाने की संभावनाओं को समाप्त क्यों कर दिया गया है। हमारी पाठ्यपुस्तकें इस प्रकार के अनेकों उदाहरणों से पटी पड़ी हैं जिन पर प्रश्न उठाए जा सकते हैं। लेकिन चूंकि वे प्रश्न हमारे लिए असुविधाजनक हैं और हमारी शिक्षा पद्धति ने हमें इस प्रकार निर्देशित किया है कि हम उन पर सवाल नहीं खड़े कर सकते। ऐसा भी नहीं है कि लोगों ने इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया है। विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा इस दिशा

HBCSE

में कई मौलिक शोध किए गए हैं और उन शोधों के प्रमाणिक संप्राप्तियों को प्रमुखता से स्थान भी दिया गया है। लेकिन विज्ञान के इतिहास और दर्शन के वास्तविक सत्य को उसके सही स्थान तक पहुचाने की दिशा में हो रहे संस्थागत प्रयास पर्याप्त नहीं हैं।

संदर्भ –

NCERT 1986, National Policy on Education, Aurobindo Marg, New Delhi

NCERT 2005, National Curriculum Framework, NCERT edition, Aurobindo Marg, New Delhi

Hamara Paryawaran, (2011) class 6, 7, 8 Text Books, Utter Predesh Elementary Education, Lucknow

❖ क्षेत्रीय समन्वयक
अमेरिकन इंडिया फांउडेशन
तकनीकी लैब,
डायट,
नई दिल्ली
ई-मेल : akmishra.edu@gmail.com

HBCSE

गतिविधि विज्ञान आधारित शैक्षिक सामग्रियों का ई-प्रारूप

◆ **कपिल त्रिपाठी**

सारांश

शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रचलन से शैक्षिक सामग्रियों में भी बदलाव आ रहा है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के द्वारा सीखने-सिखाने की इस पद्धति को ई-लर्निंग कहा जाता है। कम्प्यूटर की बढ़ती पहुँच से ई-लर्निंग यह पद्धति लोकप्रिय हो रही है। विज्ञान के लिए यह माध्यम और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस विषय का महत्वपूर्ण अंग है इसमें निहित प्रयोग और परीक्षण। कम्प्यूटर के माध्यम से विभिन्न मल्टीमीडिया, एनीमेशन, क्लिप्स, चित्रों, पी.पी.टी आधारित व्याख्यानों को देखकर विज्ञान के सिद्धांतों को समझा, तथा प्रयोग में लाये गये उपकरणों की कार्यविधि को आसानी से जाना जा सकता है।

वर्तमान में स्कूलों में प्रायोगिक शिक्षा लगभग न के बराबर हो गयी है जिससे विद्यार्थियों को विज्ञान जटिल और अरुचिकर प्रतीत होता है। इस समस्या को ध्यान में रखकर एवं विद्यार्थियों के मध्य विज्ञान को रोचक बनाने हेतु कई गतिविधि विज्ञान आधारित सामग्रियाँ विकसित की जा रही है। यहाँ गतिविधि विज्ञान से तात्पर्य उस विज्ञान से है जिसमें बच्चे अपने हाथों से विज्ञान के प्रयोगों/गतिविधियों को करते हैं। प्रायः इस प्रकार की सामग्रियाँ एक किट के रूप में उपलब्ध करायी जाती हैं जिसमें किसी किसी विशेष विषय पर रोचक तरीके से तथ्यों के साथ 25-30 गतिविधियों को प्रयुक्त सामग्रियों के साथ दिया जाता है। इस प्रकार की शैक्षिक गतिविधि किट्स कई सरकारी और गैरसरकारी संस्थाएं बना रहे हैं जो औपचारिक-अनौपचारिक तरीकों से विज्ञान शिक्षा को समृद्ध कर रहे हैं। किस प्रकार इन गतिविधि विज्ञान संबंधित शैक्षिक सामग्रियों के ई-प्रारूप तैयार किए जाएं, किस तरह यह नए वातावरण के लिए उपयोगी हो सकती है और कैसे यह ई-शैक्षिक सामग्री बच्चों तक पहुँच सकती है, इन बातों की चर्चा इस लेख में की गई है।

HBCSE

प्रस्तावना

शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रचलन से शैक्षिक सामग्रियों में भी बदलाव आ रहा है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के द्वारा सीखने-सिखाने की इस पद्धति को ई-लर्निंग कहा जाता है। कम्प्यूटर की बढ़ती पहुँच से ई-लर्निंग पद्धति भी लोकप्रिय होती जा रही है।

विज्ञान के लिए यह माध्यम और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इस विषय का महत्वपूर्ण अंग है इसमें निहित प्रयोग और परीक्षण। कम्प्यूटर के माध्यम से विभिन्न मल्टीमीडिया, एनीमेशन, क्लिप्स, चित्रों, पी.पी.टी आधारित व्याख्यानों को देखकर विज्ञान के सिद्धांतों एवं उपकरण की कार्यविधि को आसानी से जाना

जा सकता है। वर्तमान में स्कूलों में प्रयोगिक शिक्षा का प्रचलन लगभग न के बराबर हो गया है जिससे विद्यार्थियों को विज्ञान की पढ़ाई जटिल और अरुचिकर प्रतीत होती है। विद्यार्थी विज्ञान की पुस्तकों को पढ़कर एवं रटकर वैज्ञानिक सिद्धान्तों को कंठस्थ याद कर लेते हैं। परन्तु इससे उनके अनुप्रयोगिक या व्यवहारिक ज्ञान में वृद्धि नहीं होती है। इसी कमी को पूरा करने के लिए उन सभी संस्थाओं की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है जो औपचारिक/अनौपचारिक तरीकों से विज्ञान के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल एवं रोचक तरीकों से विकसित करने में लगे हैं। इस प्रकार की सामग्रियों की सहायता से जहाँ एक ओर विद्यार्थियों की रुचि विज्ञान के प्रति बढ़ती है, वहीं दूसरी ओर उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक जागृत होने की संभावना भी बढ़ जाती है। प्रायः इन गतिविधि सामग्री का उद्देश्य होता है कि विज्ञान के सिद्धान्तों, परिकल्पनाओं को आसपास उपस्थित सामग्रियों की सहायता से समझाया जाए। इसमें किसी एक विषय जैसे जल, पर्यावरण, मृदा विज्ञान, जैव विविधता, रसायन विज्ञान, भूकम्प, भौतिकी मौसम आदि पर लगभग 25-30 गतिविधियों को संकलित करके एवं प्रयोग में लायी गई सामग्रियों को एकत्र करके, एक किट् में दिया जाता है। इस प्रकार विकसित किए गए किट्स को गतिविधि किट्स (Activity Kits) कहते हैं। ये किट्स सीधे तौर पर औपचारिक शिक्षा में दखल नहीं रखते हैं परन्तु अनौपचारिक तरीके से शिक्षा को व्यवहारिक बनाने में मदद जरूर करते हैं।

पारंपारिक प्रयोग एवं गतिविधि आधारित सामग्री

विज्ञान सीखने की विधि में प्रयोग/परीक्षणों का महत्व होता है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कई स्कूल प्रयोग को महत्व नहीं देते। यहाँ तक कि कई स्कूलों में प्रयोगशालाएं ही नहीं है, और जहाँ हैं वहाँ शिक्षक एक प्रयोग को कर रहे होते हैं और कक्षा में कम से कम 40-50 बच्चे समूह बनाकर उस प्रयोग को देख रहे होते हैं। स्वयं हाथों से प्रयोगों को करने देने वाले स्कूलों की संख्या बहुत कम है। ऐसी स्थिति में गतिविधि आधारित विज्ञान सामग्रियों का विकास अत्यन्त आवश्यक है। कक्षाओं में विज्ञान सिद्धान्तों को पढ़ने एवं समझने से ज्ञान में विकास तो होता हैं, परन्तु प्रयोगों के आभाव में उस सिद्धान्त के अनुप्रयोगों को किसी नई परिस्थिति में समझने में दिक्कत महसूस होती हैं। गतिविधि संबंधी यह सामग्रियाँ, अभी तक चली आ रही पद्धति का कोई विकल्प तो नहीं हैं परन्तु वह स्थान भरने के लिए काफी हैं जिससे प्रयोगों का चलन कम हुआ हैं। प्रयोगशालाओं में प्रयोगों को करने के लिए विषय की समझ, कौशल, और धैर्य की आवश्यकता होती हैं। चरणबद्ध तरीकों से आँकड़ो को एकत्र करके एक निश्चित परिणाम तक पहुंचा जा सकता हैं जो किसी सिद्धान्त की पुष्टी करता है। वही गतिविधि आधारित सामग्रियों में ज्ञान, समझ एवं अनुप्रयोगों का एक साथ ध्यान रखा जाता हैं। यहाँ सटीक परिणामों की गुंजाइश कम ही रहती हैं। परन्तु खेल-खेल में मनोरंजन तरीके से उस विशेष सिद्धांन्त के अनुप्रयोग की समझ विकसित हो जाती हैं।

इस तरह की गतिविधि सामग्रियाँ कई संस्थाएं विकसित कर रही हैं जिनमें से मुख्य हैं, विज्ञान प्रसार (नोयडा), एनसीएसटीसी (नई दिल्ली), होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र (मुंबई), विक्रम साराभाई कम्यूनिटी साइंस सेंटर (अहमदाबाद), नेशनल साइंस म्यूजियम और उसकी अधीनस्थ संस्थाएं, देश में उपस्थित विभिन्न प्लेनेटोरियम आदि। एन.सी.ई.आर.टी. (नई दिल्ली), अगत्स्य फाउंडेशन (बैंगलोर), एकलव्य (भोपाल), आयूका (पूना), डिवलपमेंट अल्टरनेटिव (दिल्ली), नेशनल बुक ट्रस्ट (नई दिल्ली), और नेशनल बाल भवन (नई दिल्ली), इलेक्ट्रानिकी आप के लिए राज्य स्थित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, इत्यादि। इसके अतिरिक्त कई व्यक्तिगत स्तर पर लोग सक्रिय हैं जिनमें श्री अरविंद गुप्ता का नाम लेना अतिआवश्यक हैं। इन संस्थाओं द्वारा मुख्यतः सूर्यग्रहण किट, शुक्र पारगमन किट, आधुनिक भौतिकी पर किट, मौसम किट, सौर ऊर्जा किट, माध्यमिक और उच्चतर कक्षाओं के लिए विज्ञान किट, मृदा परीक्षण किट, रोबोटिक्स, बेकार पड़े सामानों से किट्स, एवं खिलौने आदि बनाये गए हैं। ये किट्स बच्चों एवं अध्यापक के बीच काफी लोकप्रिय हैं और Hands-on अर्थात् हाथों से प्रयोग करने के लिए बाध्य भी करता है। जिससे उनका (मस्तिष्क सक्रिय) Mind on और Emotionas on (भावनात्मक जुड़ाव) हो जाता है। यही भावनात्मक जुड़ाव विद्यार्थियों में विषय के प्रति रुचि विकसित करता है।

ई-गतिविधि विज्ञान

विभिन्न संस्थागत एवं व्यतिगत प्रयासों के फलस्वरूप विकसित की गयी गतिविधियों को कंप्यूटर द्वारा भी समझा जा सकता है। इस नये माध्यम के लिए विकसित की गई सामग्री को ई-गतिविधि विज्ञान कहा जाता है। इसके लिए इन सामग्रियों को मल्टीमीडिया, डी.वी.डी., वी.सी.डी., क्लिपिंग्स, एनीमेशन, सिमुलेशन, पी.पी.टी. आदि रूप में विकसित किया जाता है। गतिविधि विज्ञान किट्स विद्यार्थियों को हाथों से स्वयं गतिविधि करने के लिए बाध्य करती हैं। ई-गतिविधि सामग्री में हाथों से सिद्धान्तों को समझा तो जा सकता हैं। परन्तु वह आनन्द नहीं मिलता है जो हाथों से स्वयं गतिविधि को करने में मिलता हैं। परन्तु ई-सामग्री उन प्रयोगों या गतिविधियों को दिखाने में सहायक हैं जिसे किसी किट में सामग्री के रूप में नहीं दिया जा सकता हैं उदाहरण के तौर पर रसायन विज्ञान किट में प्रयोग में लाने वाले केमिकल नहीं दिए जा सकते हैं, अभिक्रिया जिनमें काफी समय लगता हैं, नहीं दिया जा सकता हैं, भौतिक विज्ञान गतिविधियाँ जिन्हें सामान्य परिस्थितियों में नहीं दिखाया जा सकता हैं, उन्हें मल्टीमीडिया के द्वारा समझाना आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त हम चाहते हैं कि यह सामग्री सभी लोगों तक पहुँचे उसके लिए भी आवश्यक हैं कि ई-गतिविधि विज्ञान सामग्री को कम्प्यूटर के विभिन्न फॉरमेट में उपलब्ध कराया जाये जिससे विद्यार्थी को सामग्रियों का अभाव न हो सके।

ई-लर्निंग पद्धति

ई-लर्निंग का अर्थ है इलेक्ट्रानिक आधारित टेक्नोलॉजी का प्रयोग शैक्षिक

गतिविधियों के लिए करना। अर्थात कम्प्यूटरों के माध्यम से निर्देशों (Instructions) को उबारना या संप्रेषित करना(क्लार्क और मेयर 2003)। यहाँ निर्देश का अर्थ, Content है जिसमें शब्दों, चित्रों, श्रव्य के माध्यम से किसी एक घटना या परिकल्पना को समझाया जाता हैं। किसी ई-लर्निंग के प्रभावी होने के लिए आवश्यक है कि प्रभावी निर्देश माध्यम का चुनाव। इस पद्धति में विकसित सामग्रियों को इंटरनेट जिसमें पूर्ण समर्पित वेबसाइट, यू-ट्यूब पर वीडियो क्लिपिंग्स, सीडी रोम, डीवीडी के रूप में बनाया जाता हैं। निर्देश आउटपुट चित्र, आवाज, प्रिंट निर्देशों को स्क्रीन पर देखा एवं स्पीकर, हैंडफोन द्वारा सुना जा सकता है।

ई-लर्निंग से विद्यार्थियों के ज्ञान को भी समृद्ध किया जा सकता है जिससे उसकी दक्षता एवं कौशल में वृद्धि हो सकती है। इस तरह उनके शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त भी किया जा सकता है। ई-लर्निंग के विकास में संसाधन सामग्रियों में दो सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं- "सिद्धान्तों को अनुसंधान से जोड़ना एवं विचारों को स्पष्टता एवं तर्क के साथ प्रस्तुत करना। (शेवेल्सन् और टाउनी, 2002)। अनुसंधान के अनुसार मनुष्यों के मस्तिष्क में Dual Channel प्रॉसेसर होता हैं जो चित्रों एवं श्रव्य को एक साथ ग्रहण कर सकता हैं। इसके साथ-साथ मनुष्यों की सूचना ग्रहण करने की क्षमता भी सीमित होती हैं और एक निश्चित समय में सीमित सूचना ही ग्रहण की जा सकती है। मानव अपने अनुभव से उस सूचना को अपने ज्ञान में परिवर्तित करता है।(मेयर,2003; विटट्रॉक 1998)

यह सिद्धांत मल्टीमीडिया के संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Cognitive Theory) में भी कार्य करता है इसके अनुसार मल्टीमीडिया आधारित शिक्षा में दो चैनल अपनी भूमिका निभाते हैं। जब व्यक्ति कम्प्यूटर के सामने बैठता है और शब्दों एवं चित्रों को एक साथ प्राप्त करता है। मल्टीमीडिया में निहित आवाज कानों में एवं चित्र आँखों में पड़ते हैं। यह आवाज एवं शब्द व्यक्ति की कार्यरत मेमोरी पर एक शाब्दिक एवं चित्रण प्रतिबिम्ब बनाते हैं और बाद में यह दोनों मिलकर संयुक्त रूप से स्थायी मेमोरी अर्थात ज्ञान का निर्माण करते हैं। इस प्रकार अर्थात मल्टीमीडिया के विकास में पाँच प्रमुख घटक कार्य करते हैं :- i) शब्दों का चुनाव, ii) चित्रों का चुनाव, iii) शब्दों का व्यवस्थीकरण, vi) चित्रों का व्यवस्थीकरण, vii) व्यवस्थित चित्रों एवं शब्दों का एकीकरण करना। इसके अतिरिक्त प्रभावी मल्टीमीडिया सामग्री के विकास में निम्न प्रभावों का डालना आवश्यक है।

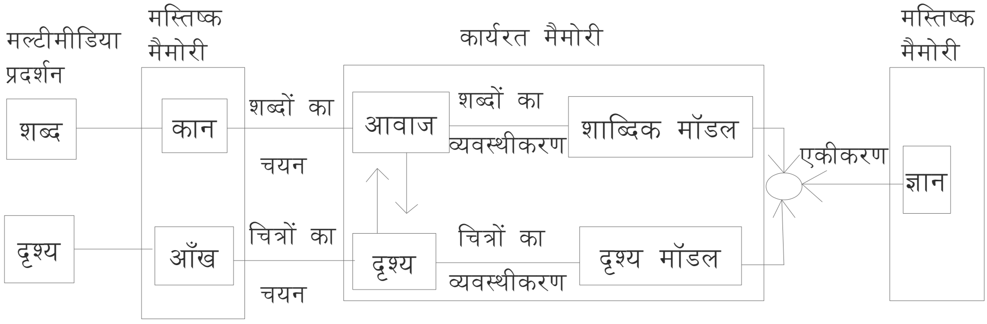

रूपात्मक प्रभाव (Modality effect): मल्टीमीडिया शैक्षिक सामग्री में बोलचाल के शब्दों का अधिकतम प्रयोग हो, अर्थात् Text लोकप्रिय एवं मनोरंजक ढ़ंग से लिखा जाए।

सनिर्हित प्रभाव (Congtiguity effect): शब्दों एवं चित्रों का समय एक ही हो। अर्थात् बोले गए शब्दों एवं चित्रों का मिलान हो।

मल्टीमीडिया प्रभाव (Multimedia effect): श्रव्य, चित्रों, एवं शब्दों का प्रयोग एक साथ हो।

मूर्त प्रभाव (Personalization effect): मल्टीमीडिया सामग्री में व्याख्या सामान्यतः बोलचाल की भाषा में हो जिससे सामग्री को मूर्त रूप दिया जा सके।

संसक्तता प्रभाव (Coherence effect): असंगत या असंबद्ध आडियो और वीडियों का सामग्री में प्रयोग न हो।

निरर्थकता प्रभाव (Redundancy effect): मल्टीमीडिया डिजाइन में जब एनीमेशन का प्रयोग किया जाये तो यह कोशिश की जाये इसमें आनलाइन टेक्ट्स कम से कम हो।

पूर्व प्रशिक्षण प्रभाव (Pretraining effect): जब भी मल्टीमीडिया हेतु सामग्री बनाई जाये इस बात का ध्यान रखा जाये कि विवरण में प्रयुक्त शब्दावली सिद्धान्तों, उपकरणों की चर्चा प्रारंभ में हो।

संकेतक प्रभाव (Signaling effect): इस प्रभाव के लिए वर्णित तथ्यों (Narration) को संकेतन मिले

शमक प्रभाव (Pacing effect): मल्टीमीडिया में इस तरह की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए जिससे सीखने वाले का नियंत्रण प्रदर्शन पर अवश्य हो।

निष्कर्ष

ई-गतिविधि विज्ञान सामग्रियों के लाभों को देखते हुए यह आवश्यक है कि विज्ञान के उन सिद्धान्तों का चयन किया जाये जो विद्यार्थियों को प्रायः समझने में कठिन प्रतीत होते हैं। गतिविधियों को मल्टीमीडिया में विकसित किया जाए। यह गतिविधियाँ सभी विषयों जैसे भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान, ऐस्ट्रॉनामी, पर्यावरण, अंतरिक्ष विज्ञान के अर्न्तगत प्रयुक्त परिकल्पनाओं, सिद्धान्तों एवं घटनाओं एवं विभिन्न प्रौद्योगिकी जैसे नैनोटेक्नोलॉजी, एयरोडायनामिक्स् आदि से संबंधित हो सकती हैं। यह सामग्री दूरस्थ शिक्षा में भी मदद करती हैं। संस्थाएं जो इस प्रकार की संसाधन सामग्रियाँ विकसित कर रही है उनको एक साथ आगे

आकर एक वेबपोर्टल पर स्वेच्छा से या एक कनर्सोटियम बनाकर यह गतिविधि आधारित सामग्रियों को रख सकती हैं और उनमें से कोई संस्था वेब ऐडमिनिस्ट्रेशन का कार्य भी कर सकती है। दूसरी ओर एक सिद्धान्त को समझने के लिए कई गतिविधियाँ सामने आएंगी जो विद्यार्थियों को सिद्धान्तों और उनके अनुप्रयोगों को समझाने में सहायक होगी। इस तरह के प्रयास निश्चित रूप से विज्ञान विद्यार्थियों को सामग्रियों के चयन में सुलभता प्रदान करेगा और विषय के प्रति रूचि पैदा करने में सहायक होगा।

आभार
लेखक, विज्ञान प्रसार के पूर्व मानद निदेशक, डॉ. सुबोध महंती के प्रति अतीव आभारी है जिन्होंने इस निबन्ध में बहुमूल्य सुझाव एवं सहयोग दिया है। इसके अतिरिक्त लेखक अपने उन सभी वरिष्ठ एवं कनिष्ठ सहकर्मियों का भी आभारी है जिनका सहयोग और मार्गदर्शन लेखन के दौरान प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मिला है।

सन्दर्भ :

- कोजमा आर.बी.(1991)। लर्निंग विथ् मीडिया : रिव्यू आफ एजुकेशनल रिसर्च, 61, 179-211
- मेयर, (2003)। एलीमेन्ट्स आफ ए साइंस आफ ई-लर्निंग : जो एजुकेशनल कम्प्यूटिंग रिसर्च Vol-29(3)-297-313,2003।
- कपिल त्रिपाठी, गतिविधि किट- बच्चों के मध्य विज्ञान संचार का लोकप्रिय माध्यम : सम्मेलन छवि, विज्ञान संचार पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, निस्केयर 2012
- कपिल त्रिपाठी (2004), बच्चों के लिए गतिविधि विज्ञान : त्रिसंगम, राष्ट्रीय बाल भवन, नई दिल्ली, 2004
- खगोलिकी गतिविधि किट् पर आधारित मल्टीमीडिया सीडी : विज्ञान प्रसार, नोएडा 2010
- नवाचारी भौतिकी प्रयोग पर मल्टीमीडिया सीडी : विज्ञान प्रसार, नोएडा 2006
- साइन आउट साइंस- सिपंल हैंड्स आन एक्सपेरिमेंट्स यूजिंग एवरीडे मेटीरियल्स : पेमब्रोक पब्लिशर्स लिमिटेड, ओन्टेरियो, कनाडा 2003
- रूनी बी.ए. (1993), ए न्यू एप्रोच प्रोमोट साइंस इन कम्यूनिटी

❖ वैज्ञानिक 'डी'
विज्ञान प्रसार
(विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग)
नोयडा (उ.प्र.)
ई-मेल :kapil@vigyanprasar.gov.in

HBCSE

भू-जल प्रदूषण – कारण एवं निवारण

◆ डॉ. दुर्गा दत्त ओझा

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि वायु, जल, मिट्टी, पेड़-पौधे तथा जीव-जंतु आदि पर्यावरण के अभिन्न एवं महत्वपूर्ण घटक हैं। ये सभी हमें प्रकृति से विरासत के रूप में मिले हैं तथा इनका वितरण भी सम्यक रूप से प्रकृति द्वारा किया गया है। ये ही हमारे प्राकृतिक संतुलन के आधार हैं। आज जब इनकी शुद्धता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है तो जाहिर है पूरे विश्व में इन्हें लेकर चिंता होना स्वाभाविक है।

इन सभी में जल का विशिष्ट स्थान है। जल का पीने से अधिक उपयोग सिंचाई कार्य, औद्योगिक क्षेत्र, ऊर्जा उत्पादन एवं सफाई कार्यों में होता है। हमारे देश में सतही जल स्रोत अत्यल्प होने तथा जलवायु की उच्च परिवर्तनशील प्रकृति होने के कारण भू-जल की पेयजल तथा सिंचाई कार्यों में उपभोग करने की उपयोगिता निरंतर बढ़ रही है। अकाल तथा सूखे की स्थिति में जल ही एकमात्र जल आपूर्ति का स्रोत होता है।

भू-जल की उपस्थिति एवं उपलब्धता क्षेत्र विशेष की स्थलाकृति में परिवर्तन, उपसतही भू विज्ञान तथा व्याप्त जलवायु पर बदलती रहती है। जब जल की भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक संरचना में इस तरह का परिवर्तन हो जाता है कि वह किसी प्राणी की जीवन दशाओं के लिए हानिकारक एवं अवांछित हो जाता है तो इस स्थिति को जल प्रदूषण कहा जाता है।

प्रायः भू-जल यानी भौम जल को शुद्ध माना जाता रहा है। परंतु विगत कुछ वर्षों में भू-जल भी प्रदूषण की चपेट में आ गया है। इसका मुख्य कारण मानवीय गतिविधियाँ और औद्योगिकीकरण हैं। भू-जल प्रदूषण का मुख्य कारण विषैले अकार्बनिक तथा कार्बनिक रसायनों का भू-जल के स्रोतों में निस्यंदन (Infiltration) है। अधिकांश प्रदूषण व्यर्थ जल के गलत ढंग से निपटान के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। इसके कारण जल उपयोग में बाधा पड़ सकती है तथा रोग फैलने से स्वास्थ्य संबंधी गंभीर संकट उत्पन्न हो सकती है।

भू-जल की उपयोगिता उसकी गुणवत्ता पर निर्भर करती है। शायद ही ऐसा कोई भू-जल होगा जिसमें लवण न घुले रहते हों। प्रायः झरनों के जल में लवण की मात्रा 25 मिग्रा./लीटर होती है तथा खारे जल में इनकी मात्रा 3,00,000 मिग्रा./लीटर तक हो सकती है। भू-जल के भौतिक गुणों में तापमान, रंग, गंध, अविलता (गंदलापन) तथा स्वाद आदि मुख्य हैं। इसके रासायनिक गुणों के अन्तर्गत पी.एच. मान, विद्युत चालकता, सोडियम, पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट, नाइट्रेट फ्लोराइड, सल्फेट, फ्लोराइड, बोरॉन, कैडियम, लैड, कॉपर, मैंगनीज, आदि का अध्ययन किया जाता है। जैविक गुणों में कोलीफार्म जीवाणु महत्वपूर्ण है। जल की गुणवत्ता तथा प्रदूषण के सूचकों संबंधी

HBCSE

जानकारी नीचे सारणी-1 में वर्णित की गई है।

सारणी-1 : जल गुणवत्ता के विभिन्न प्राचलों की अनुमेय सीमा

(अ)	विषैले पदार्थ (अधिकतम अनुमेय सीमा)	
	लेड	0.05 मिग्रा./लीटर
	आर्सेनिक	0.05 मिग्रा./लीटर
	सेलिनियम	0.01 मिग्रा./लीटर
	क्रोमियम	0.05 मिग्रा./लीटर
	सायनाइड	0.02 मिग्रा./लीटर
	कैडमियम	0.01 मिग्रा./लीटर
	रेडियो सक्रिय यौगिक	1000
(ब)	स्वास्थ्य को जोखिम प्रदान करने वाले अवयय	
	फ्लोराइड	1.5 मिग्रा./लीटर
	नाइट्रेट	45 मिग्रा./लीटर
(स)	पेयता को प्रभावित करने वाले यौगिक	
	टी.डी.एस.	1500 मिग्रा./लीटर
	आयरन	5.0 मिग्रा./लीटर
	मैंगनीज	5.0 मिग्रा./लीटर
	कॉपर	1.5 मिग्रा./लीटर
	जिंक	1000 मिग्रा./लीटर
	मैग्नीशियम+सोडियम सल्फेट	0.5 मिग्रा./लीटर
(द)	प्रदूषक रासायनिक सूचक	
	बी.ओ.डी.	6.0मिग्रा./लीटर
	सी.ओ.डी.	10.0 मिग्रा./लीटर
	कुल नाइट्रोजन (नाइट्रेट रहित)	1.0 मिग्रा./लीटर
	कुल नाइट्रोजन-अमोनिया	0.5 मिग्रा./लीटर
	कार्बन क्लोरोफार्म एक्सट्रेक्ट	0.5 मिग्रा./लीटर
	तेल एवं ग्रीस	1.0 मिग्रा./लीटर
	डी.ओ.	40 प्रतिशत

भू-जल प्रदूषण का स्रोत

भू-जल प्रदूषण के स्रोतों तथा कारणों के अनुसार निम्नलिखित चार श्रेणियाँ बनाई

HBCSE

जा सकती हैं।

(1) नगरीय स्रोत (2) औद्योगिक स्रोत (3) कृषि (4) विविध

1. **नगरीय स्रोत** : इस स्रोत के निम्नांकित कारण हैं

   i. सीवर का रिसाव- सामान्यतया सीवरों को जलरुद्ध होना चाहिए। परंतु मल-जल का रिसाव आम घटना है, विशेषतया पुरानी सीवर लाइनों में। खराब सीवर होने, वृक्षों की जड़ों में टूटन आने, बोझ पड़ने, मिट्टी खिसकने तथा भूकंप आदि आने के कारण रिसाव होने लगता है। परंतु निलंबित पदार्थों से दरारे बंद हो जाती है और रिसाव रुक जाता है। रिसाव के कारण जैव आक्सीजन मांग (BOD), रासायनिक मांग, नाइट्रेट, कार्बनिक यौगिक तथा रोगजनक जीवाणुओं का भू-जल में प्रवेश हो सकता हैं। इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्रों से आनी वाली सीवरों में भारी धातुएँ अपशिष्ट जल में प्रविष्ट हो जाती है।

   ii. द्रव अपशिष्ट- व्यर्थ जल घरेलू उपयोग, उद्योग तथा बहकर आने वाले वर्षा जल से प्राप्त होता है। नगरीय व्यर्थ जल से भू-जल में बैक्टीरिया, वाइरस, अकार्बनिक तथा कार्बनिक रसायन मिल सकते हैं तथा औद्योगिकी क्षेत्रों में भारी धातुएँ मिल सकती हैं। यह देखा गया है कि क्लोरीनीकरण से भी जल का प्रदूषण हो सकता है। कभी-कभी सतही व्यर्थ जल को उथले कुओं में डाल दिया जाता है। ऐसे कुएँ यदि पंपिग कुओं के पास हों तो सबसे अधिक खतरा रहता है।

   iii. ठोस अपशिष्ट- भूमि पर ठोस अपशिष्ट डालने से भू-जल प्रदूषण को बढ़ावा मिलता है। भूमि भराव का धोवन भू-जल को प्रदूषित कर सकता है। यदि जल स्तर उथला है तो भूमि-भराव की समस्या उत्पन्न करता है। ऐसे जल में पाए जाने वाले मुख्य प्रदूषक हैं- BOD, COD, आयरन, मैंगनीज, क्लोराइड, नाइट्रेट, कठोरता तथा लेड तत्व आदि। मीथेन (CH_4), कार्बन डाईआक्साइड (CO_2), अमोनिया (NH_3), हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) आदि गैसें भी भूमि-भराव से उत्पन्न हो सकती हैं और जल के साथ मिली हो सकती हैं।

2. **औद्योगिक स्रोतः** भू-जल प्रदूषण के इस स्रोत के निम्नांकित कारण होते हैं-

   i. द्रव अपशिष्ट– औद्योगिक क्षेत्रों में जल का मुख्य उपयोग शीतलन, सफाई तथा संसाधन में होता है। अतः उद्योग की किस्म तथा उपयोग के अनुसार व्यर्थ जल की गुणवत्ता बदलती रहती है। शीतलन से जो जल प्राप्त होता है इसमें लवण तथा ऊष्मा मुख्य प्रदूषक के रूप में विद्यमान रहते हैं। जहाँ औद्योगिक व्यर्थ जल को तालों, गड्ढ़ों में डाला जाता है वहाँ अपशिष्ट जल स्तर में जा मिलते हैं। खतरनाक तथा विषैले औद्योगिक अपशिष्टों का निपटान गहरे अंतःक्षेपण कुओं में किया जाता है।

   ii. टैंक तथा पाइप लाइन लीकेज- औद्योगिक प्रतिष्ठानों में अनेक रसायनों तथा ईंधनों का भंडारण भूमिगत होता है जिनसे रिसाव होता है और भू-जल प्रदूषित होता है। पेट्रोलियम तथा पेट्रो-उत्पाद ऐसे प्रदूषण के लिए

जिम्मेदार हैं। प्रायः तेल का प्रवेश मिट्टी में से नीचे बढ़ता जाता है और भौम जल स्तर तक पहुंच जाता है। तत्पश्चात् यह जल स्तर की सतह पर तैरता हुआ भू-जल में चला जाता है। ऐसा देखा गया है कि द्रव रेडियोसक्रिय व्यर्थ भी इसी तरह से प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।

iii. खनन- कोयला, फास्फेट तथा यूरेनियम की खानें अधिकतर जल स्तर के नीचे तक फैली रहती हैं और खनन कार्य का विस्तार करने के लिए प्रायः जल को पंप द्वारा बाहर निकाला जाता है। यह जल खनिजों से युक्त होता है, इसका पी.एच. मान कम रहता है तथा इसमें उच्च मात्रा में लोहा, एल्युमिनियम तथा सल्फेट घुले रहते हैं। कोयला की खानों में पाइराइट (FeS_2) रहता है जो आक्सीकृत होकर गंधक का अम्ल (H_2SO_4) तथा फेरस सल्फेट ($FeSO_4$) बनाता है। अतः जब ये उत्पाद भू-जल में मिलते हैं तो भू-जल का पी.एच. मान घट जाता है और लौह तथा सल्फेट की मात्रा बढ़ जाती है।

iv. तेल क्षेत्रों का लवणीय जल- तेल तथा गैस के उत्पादन के साथ-साथ काफी मात्रा में खारा जल बाहर निकाला जाता है। लवणीय जल में सोडियम तथा कैल्शियम, अमोनियम, बोरॉन, क्लोरीन, सल्फेट, भारी धातुएँ तथा विलयित ठोस रहते हैं। पहले यह खारा जल सतह पर सूखने दिया जाता था परंतु अब कुओं के द्वारा काफी गहराई में डाल दिया जाता है। जिससे मीठे पानी के स्रोत प्रभावित न हो। परंतु फिर भी खारे जल के इस निपटान से भू-जल प्रदूषित हो सकता है।

3. **कृषीय स्रोत :** भू-जल प्रदूषण के कृषीय स्रोत के निम्नांकित कारण होते हैं-

i. सिंचाई के लिए जो जल प्रयुक्त होता है उसका काफी अंश फसलें ग्रहण कर लेती हैं तथा शेष वाष्पीकृत हो जाता है। इससे बार-बार सिंचाई से लवणीयता बढ़ती है। उर्वरकों से भी लवण मिलते हैं। अतः वर्षा जल के कारण भू-जल में अधिक लवण मिलते हैं। इससे कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम बाइकार्बोनेट, सल्फेट, क्लोराइड तथा नाइट्रेट की मात्रा में वृद्धि होती है। यह भी देखा गया है कि भू-जल की लवणीयता भी एक प्रदूषक का कारक है तथा अधिक सिंचाई एवं अवैज्ञानिक तरीके से कृषि में जल का उपयोग भी जल प्लावन (Water Logging) की समस्या को बढ़ाता है।

ii. पशु अपशिष्ट- विकसित देशों में गोबर के ढेर और प्रायः बूचड़खानों, कसाईघरों के आसपास खून आदि देखा जाता है। अतः मिट्टी में ये अपशिष्ट मिलते रहते हैं। अतः कार्बनिक पदार्थों के विघटन के फलस्वरूप नाइट्रेट भू-जल में मिलकर इसे प्रदूषित करता है।

iii. रासायनिक उर्वरक एवं सुधारक- भारत सहित समूचे विश्व में अत्यधिक कृषि उत्पादन प्राप्त करने की होड़ में संतुलित उर्वरक प्रयोग की अपेक्षा नाइट्रोजनीय एवं फास्फेट उर्वरकों का बेहताशा एवं अविवेकपूर्ण उपयोग हो रहा है। भारत में 1970 के दशक में आयी हरित क्रांति के फलस्वरूप

नाइट्रोजनी उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से भू-जल की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

यह देखा गया है कि प्रकृति में पाए जाने वाले जल में सभी नाइट्रोजनीय पदार्थों की स्वतः यह प्रवृत्ति होती है कि वे नाइट्रेट में परिणित हो जाते हैं। भू-जल में उपलब्ध अन्य लवणों की भांति नाइट्रेट भूमिगत जल में पृथ्वी के भूजलीय एवं जैवमंडलीय नाइट्रोजन चक्र के माध्यम से प्रवेश करते हैं। भू जल में नाइट्रोजन यौगिक मुख्यतः नाइट्रेट, नाइट्राइट तथा अमोनियम के रूप में मिलते हैं। मिट्टी में नाइट्रेट भी अनेक स्त्रोतों से प्रवेश करते हैं। कुछ पौधे जैसे, ऐल्फा, फलीदार एवं दालों वाले वायुमंडल से सीधे नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं। कुछ भाग इनके द्वारा सोख लिया जाता है तथा बची हुई नाइट्रोजन जल में नाइट्रेट के रूप में घुलकर मिट्टी के माध्यम से अंततः भू-जल में मिल जाती है।

विगत छह दशकों अर्थात् 1951 से 2011 तक नाइट्रोजनीय उर्वरकों की खपत में अत्यधिक वृद्धि हुई है। (वर्ष 1951-52 में 0.06 लाख प्रति टन से 18.2 लाख प्रति टन 2009 में) विगत एक दशक में तो नाइट्रोजनीय उर्वरकों की खपत में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। हमारे देश के कुछ राज्यों में नाइट्रोजनीय उर्वरक की खपत को सारणी-2 में दर्शाया गया है।

सारणी-2 : भारत के कुछ राज्यों में नाइट्रोजनीय उर्वरक की खपत

राज्य	नाइट्रोजन उर्वरक की खपत (किग्रा./हेक्टेयर)
दिल्ली	347.5 (3.4)*
पांडिचेरी	260.9 (1.1)
पंजाब	130.6 (1.1)
हरियाणा	109.0 (1.2)
चंडीगढ़	105.0 (-3.0)
उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड	91.9(1.4)
आंध्र प्रदेश	84.1 (.0)
तमिलनाडु	72.2 (1.2)
बिहार व झारखंड	65.4 (1.4)
गुजरात	62.8 (1.5)
पश्चिम बंगाल	62.7 (1.3)
कर्नाटक	50.4 (1.5)
महाराष्ट्र	45.7 (1.3)
जम्मू-कश्मीर	43.0 (1.3)
मणिपुर	40.7 (1.3)
मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़	30.3 (1.8)
राजस्थान	29.0 (1.9)
केरल	28.5 (1.0)

HBCSE

*कोष्ठक में दिए गए मान वर्ष 1989-90 की तुलना में 1997-98 में नाइट्रोजन की खपत में हुई वृद्धि को दर्शाते हैं।
**स्रोत- उर्वरक सांख्यिकी (1997-98)

सारणी-2 के अध्ययन से विदित होता है कि दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, गुजरात आदि क्षेत्रों में नाइट्रोजन उर्वरक की खपत बहुत बढ़ी है। इस कारण इन क्षेत्रों के भू-जल में नाइट्रेट की सांद्रता भी बढ़ी है। विश्व के परिदृश्य में नाइट्रोजनीय उर्वरक की खपत में भारत का तीसरा स्थान है। देश के कई स्थानों के भू-जल में अधिकतम नाइट्रेट का मान 1030 (तमिलनाडु), 1080 (पंजाब), 1800 (हरियाणा) तथा 2800 मि.ग्रा./लीटर राजस्थान में पाया गया है जो कि विचारणीय विषय है। अधिकांश वैज्ञानिक भू-जल में बढ़ते नाइट्रेट सांद्रण का कारण नाइट्रोजनीय उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग को ही मानते हैं।

iv. कीटनाशक- हरित क्रांति के दौरान देश में विविध प्रकार के कीटनाशक, यथा फफूंदनाशी, शाकनाशी, मूषकनाशी कृंतकनाशी आदि का अविवेकपूर्ण उपयोग हो रहा है जिससे भू-जल भी प्रदूषित हो रहा है। इनकी न्यूनतम मात्रा भी पेयजल के लिए हानिकारक है। देश के जल संसाधन मंत्रालय द्वारा वर्ष 2001 में किए गए अध्ययन से ज्ञात होता है कि अकेले दिल्ली में वार्षिक व्यर्थ जल उत्पादन की दर 110,000 मिलियन लीटर/प्रतिदिन अर्थात् 40 घन कि.मी. है।

v. भू-जल में फ्लोराइड तथा आर्सेनिक की समस्या- जैसा कि विदित है कि देश की 85 प्रतिशत जनसंख्या पेय एवं घरेलु उपयोगों हेतु भू-जल का प्रयोग करती है। भू-जल में 1.5 मि.ग्रा./लीटर की अनुमेय सीमा से अधिक फ्लोराइड की उच्च सांद्रता स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न करती हैं। भू-जल प्रक्षेण कुओं से एकत्रित जल नमूनों के रासायनिक विश्लेषण पर आधारित परिणाम दर्शाते हैं कि अनेक स्थानों पर फ्लोराइड की उपलब्धता अनुमेय सीमा से अधिक है।

एक आकलन में देश के 20 राज्यों के 7.5 करोड़ भारतीय, फ्लोरोसिस रोग की चपेट में आ चुके हैं जिनमें बच्चों और महिलाओं की संख्या लगभग 60 लाख हैं। इनमें आंध्रप्रदेश, गुजरात, राजस्थान तथा तमिलनाडु सर्वाधिक ग्रसित राज्य है। जहाँ 50 से 100 प्रतिशत तक जिले प्रभावित हो चुके हैं।

हमारे देश में भू-जल प्रदूषण की समस्या में लवणीयता का भी बहुत योगदान है। जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार के वर्ष 2001 में किए गए अध्ययन से विदित होता है कि राजस्थान में 1,06,019 वर्ग कि.मी. क्षेत्र (लगभग 31 प्रतिशत) में भू-जल लवणीय है। इसी प्रकार गुजरात, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि क्षेत्रों के भू-जल में भी लवणीयता की समस्या है। अत्यधिक सिंचाई तथा कृषि क्षेत्र में अवैज्ञानिक तरीके से किए गए जल के उपयोग के कारण

HBCSE

लवणीयता एवं जल प्लावन की समस्या अधिक बढ़ी है। देश के विभिन्न राज्यों में फ्लोरोसिस प्रभावित जिलों का वितरण सारणी-3 में दिया गया है।

सारणी-3 : देश के विभिन्न राज्यों में फ्लोरोसिस प्रभावित जिले

क्र. सं.	राज्य	प्रभावित जिलों की संख्या
1	आंध्र प्रदेश	16
2	असम	3
3	बिहार	6
4	छत्तीसगढ़	2
5	दिल्ली	7
6	गुजरात	18
7	हरियाणा	12
8	जम्मू-कश्मीर	1
9	झारखंड	4
10	कर्नाटक	16
11	केरल	3
12	मध्य प्रदेश	14
13	महाराष्ट्र	10
14	उड़ीसा	18
15	पंजाब	17
16	राजस्थान	32
17	तमिलनाडू	8
18	उत्तर प्रदेश	7
19	पश्चिम बंगाल	4

HBCSE

4. विविध स्रोत तथा कारण : पेट्रोलियम स्टेशनों के आसपास व्यर्थ तेल भूमि पर फैलता है। दुर्घटनाओं के कारण भी पेट्रोल बिखरता है। औद्योगिक संयंत्रों के पास ठोस अपशिष्ट तथा कृषीय अपशिष्टों का अंबार लग जाता है। अतः जब वर्षा होती है तो इनको भेदकर निकलने वाले धोवन में भारी धातुएँ, लवण आदि प्रदूषक के रूप में भू-जल तक जा सकते हैं। इसी प्रकार शहरों में सेप्टिक तालों तथा सेसपूलों की बहुतायत हैं। घरों का मल-जल नीचे जाकर भू-जल में खनिजों के साथ-साथ बैक्टीरिया तथा वाइरस और पर्याप्त मात्रा में नाइट्रेट पहुँचा देता है। सतही प्रदूषित जल से भी भू-जल का प्रदूषण संभव है। सामान्यतया मिट्टी में से प्रदूषकों के गुजरने से और भू-जल तक अधिकांश रोगजनक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। यदि

ऊपरी सतह से भू-जल स्तर तक पर्याप्त महीन कण (गाद, मृतिका) न हों तो भू-जल तेजी से प्रदूषित होता है। परंतु ऐसा नहीं होता है।

भू-जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव

1. जल स्रोतों के चारों ओर अनियंत्रित तरीके से बिखरे कूड़े के ढेर में हानिकारक रासायनिक पदार्थ विद्यमान होते हैं जिससे न केवल हमारा भौतिक पर्यावरण एवं परिदृश्य बिगड़ता है अपितु यह स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं भी पैदा करता है। ये ठोस अपशिष्ट, कूड़े कचरे एवं सीवर मल-जल क्षेत्र विशेष के भू-जल को प्रदूषित करते हैं, फलतः भू-जल न केवल अपेय हो जाते है वरन् अन्य कार्यों हेतु भी अनुपयोगी बन जाता है।
2. औद्योगिक बहिस्रावों से जीवों के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव होते हैं तथा ये यकृत मस्तिष्क, गुर्दे तथा फेफड़ों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।
3. अम्ल तथा क्षार युक्त बहिस्रावों से जल संक्षारित हो जाता है।
4. कृषि कार्यों में अत्यधिक नाइट्रोजनी उर्वरकों के प्रयोग से भू-जल में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ जाती है। ऐसे अधिक नाइट्रेट युक्त जल का सेवन करने से मनुष्य की छोटी आंत में पाए जाने वाले बैक्टीरिया से नाइट्रेट यौगिक नाइट्राइट में परिवर्तित हो जाता है जो रक्त में विद्यमान हीमोग्लोबिन में उपलब्ध लौह के फैरस को फैरिक में बदल देता है। फलतः हीमोग्लोबिन मेथेमोग्लोबिन में बदल जाता है। इस परिवर्तन से हीमोग्लोबिन की आक्सीजन परिवहन की क्षमता क्षीण हो जाती है। बच्चों में होने वाले इस रोग को मेथेमोग्लोबिनिमीय कहते है। सामान्यतया स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में मेथेमोग्लोबिन की मात्रा 0.8 प्रतिशत होती है तथा रोग ग्रस्त होने पर 10 प्रतिशत हो जाती है, 20 प्रतिशत से अधिक मात्रा से सिरदर्द व चक्कर आने लगते हैं तथा 60 प्रतिशत की मात्रा में बेहोशी आने लगती है।
5. जल स्रोतों में बढ़ते हुए नाइट्रेट तथा फास्फेट के कारण नील-हरित शैवाल की बहुत वृद्धि होती है जो कुपोषण (यूट्रोफिकेशन) का कारण बन जाती है। इससे जलीय जीवों की मृत्यु भी हो जाती है।
6. उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से सब्जियों और फलों का आकार बढ़ जाता है तथा उनके कीट प्रकोप एवं रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।
7. नाइट्रेट विषाक्तता रोमंथी पशुओं में जठर आंत्रशोध उत्पन्न करता है। चरागाह में चरते पशुओं की इस कारण अचानक मृत्यु भी देखी गई है।
8. नाइट्रेट जब भोजन अथवा जल के माध्यम से हमारे शरीर में पहुंचता है तो वह पहले नाइट्राइट में तथा पुनः द्वितीयक ऐमीन, एमाइड तथा कार्बोमेट से अभिक्रिया करके एन-नाइट्रोसो यौगिक बनाता है जो कि अत्यधिक कैंसरकारी होते हैं।
9. कई उद्योगों, यथा- ऊन, सिल्क तथा शराब में भी नाइट्रेट की अधिकता से घातक प्रभाव देखे गये है।
10. भू-जल में अधिक फ्लोराइड के कारण कई प्रकार के रोग हो जाते हैं।

सर्वप्रथम फ्लोराइड दांतों को प्रभावित करता है जिसे दंत प्लोरोसिस रोग हो जाता है। इस बीमारी में दांतों में धब्बे तथा गड्ढ़े पड़ जाते है तथा धीरे-धीरे दांत सड़कर गिरने लग जाते हैं। इसका असर पहले बच्चों पर, तत्पश्चात् वयस्कों पर होता है। अधिक मात्रा में फ्लोराइड वाले जल का लंबे समय तक सेवन करने से जोड़ों में दर्द शुरू हो जाता है। इसे अस्थि-फ्लोरोसिस कहते हैं, हो जाता है। इससे युवा भी बूढ़े लगते हैं। यह एक सामार्थिक अर्थात् सामाजिक एवं आर्थिक समस्या है जो व्यक्ति को विकलांग बना देती है जिससे न केवल व्यक्ति वरन् उसका पूरा परिवार भी प्रभावित होता है।

11. भू-जल में आर्सेनिक विषाक्तता से पश्चिम बंगाल, बिहार, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश तथा असम के क्षेत्रों में आर्सेनियोसिस की समस्या हो चुकी है जिसके कारण ग्रसित रोगियों में चर्म कैंसर, हाथ-पैरों में छाले तथा मस्तिष्क विकार भी देखे गए हैं।
12. भू-जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव कृषि भूमि पर भी पड़ते है। राजस्थान में रंगाई-छपाई उद्योगों के बहिस्रावों में सैकड़ों हेक्टेयर भूमि की उर्वरता नष्ट हो चुकी है।

भू-जल का प्रदूषण से संरक्षण

भू-जल के स्रोत, जलभृत (एक्वीफर) सरंध्र तथा पारगम्य होने के कारण विभिन्न स्रोतों से प्रदूषण के प्रति संवेदनशील होते हैं। प्रदूषित जलभृत से पुनः शुद्ध भू-जल प्राप्त करना न केवल खर्चीला वरन् कठिन कार्य है। अतः विभिन्न स्रोतों से प्रदूषण की रोकथाम करना उचित रहता है। विदेशों में भू-जल प्रदूषण संवेदनशीलता के मानचित्र तैयार किए जाते हैं जिससे उसके आधार पर भू-जल की प्रदूषण से रोकथाम की जा सकती है। भू-जल को प्रदूषण से बचाने हेतु निम्नांकित उपाय किए जा सकते है :-

1. प्रदूषण के विभिन्न स्रोतों का सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण
2. क्षेत्र विशेष में भू-जल स्तर तथा उसके बहाव के अनुरूप औद्योगिक एवं नगरीय व्यर्थ (अपशिष्ट) पदार्थों के निस्तारण के स्थान निर्धारित किए जाए।
3. विषैले औद्योगिक बहिस्रावों के निस्तारण हेतु संबंधित उद्योगों में ही उनके द्वारा निस्तारण पूर्व उपचार की व्यवस्था की जाए।
4. पेयजल आपूर्ति के कुओं का स्थान बहुत सावधानीपूर्वक तय किया जाए।
5. पेयजल आपूर्ति के कुओं के संबंध में सबसे ऊपर के जलभृत से टेपन नहीं किया जाना चाहिए।
6. कृषि कार्यों में संतुलित रासायनिक उर्वरक प्रयोग पद्धति को मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला की सिफारिशों के अनुसार लागू किया जाए तथा जैवउर्वरक एवं जैवकीटनाशी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए।
7. भू-जल की रोकथाम हेतु जन चेतना जागृत करने के व्यापक तरीके अपनाए जाएं।

HBCSE

8. भू-जल प्रदूषण के क्षेत्र में विस्तृत अध्ययन, शोध की जाए तथा प्रदूषण संवेदनशील क्षेत्रों के मानचित्र तैयार किए जाएं जिससे उन क्षेत्रों में प्रदूषण नियंत्रण के प्रभाव कदम उठाये जा सके।
9. भू-जल/सतही जल को प्रदूषित करने वाले व्यक्तियों को दंड देने के लिए कानूनी व्यवस्था की जाए।

❖ वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रभागाध्यक्ष (सेवानिवृत्त)
भूजल विभाग,
जोधपुर-342001
ई-मेल : ddozha@gmail.com

HBCSE

कृषि एवं चिकित्सा के क्षेत्र में नाभिकीय तकनीक के अनुप्रयोग

◆ निमिष कपूर

सारांश

स्वच्छ ऊर्जा विकल्प के रूप में नाभिकीय ऊर्जा का लाभ केवल विद्युत उत्पादन तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि चिकित्सा, कृषि एवं उद्योग क्षेत्र में भी नाभिकीय ऊर्जा के शांतिमय उपयोग किये जा रहे हैं। इन व्यावहारिक क्षेत्रों में आयनकारी विकिरणों एवं समस्थानिकों (आइसोटोप) के अनुप्रयोगों को भारत एवं अन्य देशों में विस्तार दिया जा रहा है। नाभिकीय तकनीक के अनुप्रयोगों के परिणाम मानवजाति के बेहतर भविष्य की ओर इशारा कर रहे हैं। इनमें फसलों की नयी किस्मों के विकास, खाद्य परिरक्षण, चिकित्सीय उत्पादों का निर्जर्मीकरण आदि के लिए आयनकारी विकिरण का उपयोग किया जा रहा है। फसली पौधों के आनुवांशिक सुधार के लिए आयनकारी विकिरणों द्वारा म्यूटेशन या उत्परिवर्तन की खोज ने कृषि जगत में क्रांति ला दी है। इस प्रकार से नाभिकीय ऊर्जा के अनुप्रयोग द्वारा फसलों की उन्नत किस्मों के विकास में मदद मिल रही है, जिसका फायदा अंततः किसानों के पास पहुँच रहा है। आण्विक जीव विज्ञान में भी नाभिकीय ऊर्जा से संबंधित तकनीकों का प्रयोग शोध एवं विकास कार्यों को नई दिशा दे रहा है। समांगी तथा विषमांगी प्रणालियों में जीन की संरचना, संगठन, कार्य और अभिव्यक्ति पर शोध एवं अन्य जानकारियों की प्राप्ति के लिए आण्विक जीव विज्ञान में नाभिकीय ऊर्जा के अनुप्रयोग किये जा रहे हैं।

आज पादप जैव प्रौद्योगिकी के शोध के अंतर्गत आनुवांशिक सुधारों से अधिक उपज देने वाली फसलों की किस्में सामने आ रही हैं और अधिक उर्वरक की मांग की जा रही है। मिट्टी की उर्वरता तथा उर्वरकों के प्रयोग संबंधी अध्ययनों में रेडियो समस्थानिकों का व्यापक अनुप्रयोग मिट्टी के विभिन्न उर्वरकों के मूल्यांकन में किया गया है। कई रेडियो समस्थानिक प्रकृति में मौजूद हैं और सूक्ष्म तथा स्थूल पोषक तत्वों के रेडियो समस्थानिक कृत्रिम तरीके से उत्पन्न किये जा रहे हैं। पोषक तत्वों पर पाए जाने वाले रेडियो समस्थानिकों के अनुसार उवर्रकों में इनकी मात्रा सुनिश्चित की जा सकती है। विकिरण तकनीकों का प्रयोग विभिन्न प्रकार की मृदा में नमी तथा अंबार घनत्व नापने के लिए भी किया जा रहा है। विकिरण कीटाणुनाशन, वंध्या कीट तकनीक एवं कीटनाशी रसायनों की क्रियाविधि स्पष्ट करती रेडियो ट्रेसर विधियों यानि कीट पीड़क प्रबंधन के लिए विकिरण तथा रेडियो समस्थानिकों का उपयोग हो रहा है। नाभिकीय ऊर्जा के अनुप्रयोगों में खाद्य किरणीयन एक अतिमहत्वपूर्ण प्रयोग है जिसमें खाद्य पदार्थों को आयनकारी विकिरण की निर्धारित मात्रा में उद्भाषित करके उन्हें कीटों, सूक्ष्म जीवों के संदूषण तथा अन्य प्रकार के नुकसानों से बचाया जाता है। पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान के क्षेत्र में भी नाभिकीय तकनीकों के अनुप्रयोग सामने आए हैं,

जिसके फलस्वरूप पशुओं के स्वास्थ्य एवं उनकी उत्पादकता में सुधार किया जा रहा है। बोर्ड ऑफ रेडिएशन और आइसोटोप टेक्नोलॉजी (ब्रिट) ने रेडियोइम्यूनोएसे (आर.आई.ए.) रिएजेंटों के लिए जानकारी विकसित की है। यह तकनीक जानवरों में संक्रमण का पता लगाने एवं खिलाड़ियों के ड्रग दुरूपयोग (डोपिंग) की छानबीन में सहायक है। उत्परिर्वतन जनन तकनीक से भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में 23 उत्परिवर्तित किस्मों की फसलों का विकास किया गया है। आज रेडियो समस्थानिको के प्रयोग से रेडियो फार्मास्यूटिकल दवाओं के संयोजन तैयार किए जा रहे हैं। इनमें मनुष्य के आंतरिक अवययों के स्थिर एवं चल छायाचित्र लिए जाते हैं। इनके प्रयोग से कुछ रोगों का प्रभावी उपचार भी संभव है। कैंसर के विकिरण उपचार को आज विश्व भर में प्राथमिकता दी जा रही है। परमाणु ऊर्जा विभाग, भारत सरकार द्वारा स्वास्थ्य संबंधी विकास के कार्यों में कैंसर के उपचार के लिए दूर चिकित्सा तंत्र, रक्त किरणित्र का विकास, हाइड्रोजेल का विकास, आदि शामिल है। इस प्रकार चिकित्सा एवं कृषि के क्षेत्र में नाभिकीय ऊर्जा के अनुप्रयोग मील का पत्थर साबित हो रहे हैं।

प्रस्तावना

आज भारत एवं अन्य देशों में नाभिकीय ऊर्जा को एक स्वच्छ ऊर्जा विकल्प के रूप में स्थापित किया जा चुका है और नाभिकीय ऊर्जा से बेहतर भविष्य की अनेक परिकल्पनाओं पर देश दुनिया में लगातार शोध व अनुसंधान कार्य जारी है। दुनियाभर में नाभिकीय तकनीक के अनुप्रयोगों में आयनकारी या नाभिकीय विकिरणों एवं समस्थानिकों (आइसोटोपों) के अनुप्रयोग कृषि एवं चिकित्सा जगत में हो रहे हैं। देश के परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा नाभिकीय विद्युत के उत्पादन के साथ ही नाभिकीय तकनीक के अनेक शांतिमय उपयोगों पर बल दिया जा रहा है। भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र द्वारा नाभिकीय विकिरण के उपयोग से जो महत्वपूर्ण कार्य किया गया है, उनमें शामिल हैं फसलों की नई किस्मों का विकास, खाद्य परिरक्षण, चिकित्सकीय उत्पादों का निर्जर्मीकरण, इत्यादि। कृषि के क्षेत्र में रेडियोट्रेसरों के माध्यम से पौधों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले जल एवं उर्वरकों के संबंध में अध्ययन किए जा रहे हैं। विकिरण प्रेरित उत्परिवर्तन से बेहतर व अधिक उपज देने वाले एवं रोग-प्रतिरोधी पौधों के विकास में सहायता मिली है। आज विश्वभर में तीव्र विकिरण के सफलतापूर्वक प्रयोग से खाद्यान्न फसलों और पौधों की 1500 से अधिक नई प्रजातियों का विकास किया गया है जो अपनी मूल प्रजातियों की तुलना में अधिक पैदावार देती हैं और इनमें भारी वर्षा व ठंड सहने और कीटों का प्रतिरोध करने की अधिक क्षमता होती है।

नाभिकीय ऊर्जा के अनुप्रयोग स्वास्थ्य और उद्योग जगत में शांतिपूर्ण कार्यों के लिए किए जा रहे हैं। नाभिकीय ऊर्जा ने स्वास्थ्य क्षेत्र में भी बहुत महत्वपूर्ण बदलाव लाया है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में अधिकतर अनुप्रयोग एक्स-रे, सीटी-स्कैन, एम.आर.आई और अल्ट्रासाउंड स्कैनिंग विकिरण की दृश्य के पीछे देख सकने की क्षमता तथा गहन विकिरण के द्वारा कोशिकाओं को नष्ट करने की क्षमता पर

HBCSE

आधारित है। कैंसर के उपचार में और शल्यचिकित्सा या दवाइयों के स्थान पर भी नाभिकीय विकिरण का उपयोग किया जा रहा है। आज उद्योग भी नाभिकीय विकिरण के प्रयोग से अछूते नहीं हैं। हवाई अड्डों पर समान की जाँच, पाइपलाइनों में वेल्डिंग की त्रुटियों और दरारों की जाँच के लिए भी एक्स-रे का प्रयोग किया जाता है।

नाभिकीय तकनीक के शांतिपूर्ण अनुप्रयोगों में प्रयुक्त रेडियो समस्थानिक

नाभिकीय तकनीक के शांतिपूर्ण अनुप्रयोगों में भूमिका होती है रेडियो समस्थानिकों की। परिभाषा के अनुसार जिन परमाणुओं के परमाणु क्रमांक समान किंतु परमाणु भार अलग होते हैं, उन्हें समस्थानिक कहते हैं। रेडियो सक्रिय तत्वों के समस्थानिक रेडियो समस्थानिक कहलाते हैं। इनमें नाइट्रोजन-15, फॉस्फोरस-32, सोडियम-24, मैंग्नीज-54, आयरन-59 तथा कोबाल्ट-60 जैसे रेडियोसक्रिय परमाणु अपनी अतिरिक्त ऊर्जा ऐल्फा, बीटा तथा गामा नाम की नाभिकीय किरणों के जरिये निकाल कर कृषि एवं चिकित्सा जगत में उत्कृष्ट योगदान दे रहे हैं। रेडियो समस्थानिकों के प्रयोग से बेहतर गुणवत्ता वाले चिन्हित रसायनिक पदार्थ भी बनाए जाने हैं। हांलाकि कुछ रेडियो समस्थानिक प्रकृति में भी पाए जाते हैं पर कृषि एवं चिकित्सा में इस्तेमाल होने वाले विविध श्रेणियों के अधिकांश समस्थानिकों का उत्पादन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई में स्थापित नाभिकीय रियेक्टरों में न्यूट्रॉन प्रहार द्वारा किया जाता है।

आज भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (भापअ केंद्र) द्वारा अनुसंधान रियेक्टरों में विविध श्रेणियों के रेडियो समस्थानिकों का उत्पादन किया जा रहा है। भापअ केंद्र में समस्थानिक कार्यक्रम अप्सरा रिएक्टर में किरणन सुविधाओं के उपलब्ध होने के साथ ही 50 दशक के अंत में आरंभ हुआ। आज यह गर्व का विषय है कि नाभिकीय तकनीक के शांतिपूर्ण उपयोगों के अंतर्गत भापअ केंद्र देश के सैकड़ों अस्पतालों में रेडियो समस्थानिक एवं रेडियो फार्मास्युटिकल की आपूर्ति कर रहा है जिससे प्रतिवर्ष लाखों रोगी लाभन्वित हो रहे हैं। कोबाल्ट-60 गामा किरणों से निर्जर्मीकरण तकनीक की दक्षता सिद्ध हो चुकी है और भारत में चिकित्सा उत्पादों के निर्जर्मीकरण के लिए बड़े-पैमाने पर इसका उपयोग किया जा रहा है। आज पूरी सुरक्षा के साथ रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग मापित या निर्धारित मात्रा में किया जाता है, जिनकी गणना के लिए शोध केंद्र में गणक (काउन्टर्स) उपलब्ध होते हैं।

नाभिकीय तकनीक के कृषि एवं चिकित्सा के क्षेत्र में शांतिपूर्ण उपयोग

नाभिकीय तकनीक के कृषि एवं चिकित्सा के क्षेत्र में शांतिपूर्ण उपयोग पर निम्नाकिंत बिंदुओं में चर्चा की जाएगी :-

1. कृषि क्षेत्र में नाभिकीय विकिरणों एवं समस्थानिकों के अनुप्रयोग
    i. उत्परिवर्तन प्रजनन (म्यूटेशन ब्रीडिंग)

ii. मिट्टी की उर्वरता में संलग्न रेडियो समस्थानिक
iii. कीट पीड़क प्रबंधन में विकिरण तथा रेडियो समस्थानिक
iv. पीड़कनाशी या कीटनाशी अवशेष मापन
v. खाद्य पदार्थों का संरक्षण : खाद्य किरणीयन

2. चिकित्सा क्षेत्र में नाभिकीय विकिरणों एवं समस्थानिकों के अनुप्रयोग
   i. मानव स्वास्थ्य में रेडियो फार्मास्युटिकल दवाओं का योगदान
   ii. नैदानिक जाँच में पूर्व चेतावनी
   iii. कैंसर के विकिरण उपचार
   iv. निर्जर्मीकरण एवं खाद्य संरक्षण
   v. जंतु स्वास्थ्य एवं उत्पादकता में नाभिकीय तकनीक
   vi. हाइड्रोजेल का विकास

1. कृषि क्षेत्र में नाभिकीय विकिरणों एवं समस्थानिकों के अनुप्रयोग

i. उत्परिवर्तन प्रजनन (म्यूटेशन ब्रीडिंग)

वर्ष 1927 में एच. जे. मुलर ने फलमक्खी (ड्रोसोफिला मेलैनोगास्टर) तथा वर्ष 1928 में एल. जे. स्टाडलर ने मक्के के पौधे के उपयोग से खोज की कि नाभिकीय विकिरणों द्वारा म्यूटेशन या उत्परिवर्तन प्रेरित किया जा सकता है। भारत में 1930 के उत्तरार्ध में गेंहूँ के बीजों को एक्स-रे द्वारा उद्भाषित करने के प्रथम प्रयास किये गये थे। देश में आरंभिक प्रयासों में ही कपास के बीजों को एक्स-किरणों से उपचारित करके उनमें भिन्नता लाने के प्रयास किए गए थे।

पौधों के जीन में कुछ परिवर्तन प्राकृतिक रूप से होते हैं, जिन्हें उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) कहते हैं। उत्परिवर्तन के फलस्वरूप बेहतर फसल प्राप्त होती है। पौधे के उत्परिवर्तन नाभिकीय तकनीक से कराए जाने पर, पौधों में उत्परिवर्तनों की संख्या प्राकृतिक उत्परिवर्तनों से कहीं अधिक व बेहतर होती है। इस प्रक्रिया में रेडियो सक्रिय परमाणुओं या न्यूट्रॉनों से बीजो या पौधों को किरणीत किया जाता है जिससे उनमें कई बेहतर बदलाव आते हैं। बदलाव की इस प्रक्रिया को ही उत्परिवर्तन कहते हैं और जो बेहतर बीज बना, वह उत्परिवर्ती या म्यूटेंट कहलाता है। इन म्यूटेंट्स की बढ़ोत्तरी करके उन्नत फसलें उगाई जाती है जिसे हम म्यूटेशन ब्रीडिंग कहते हैं। हमारे परमाणु व कृषि वैज्ञानिकों ने इस प्रक्रिया द्वारा धान, दलहन, तिलहन, रेशेदार फसलों, सब्जियों तथा सजावटी पौधों की 200 से भी अधिक किस्में देश के किसानों को उपलब्ध कराई है। उदाहरण के तौर पर मूंगफली की कुल 10 उत्परिवर्ती या म्यूटेंट फसलें महाराष्ट्र, गुजरात, केरल, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, बिहार, हरियाणा व उत्तर प्रदेश में विस्तार ले चुकी है। इन उत्परिवर्ती फसलों से किसानों को सुधरी गुणवत्ता तथा 50% तक उत्पादन बढ़ोत्तरी वाली फसलें प्राप्त हुई।

HBCSE

उत्परिवर्तन द्वारा उड़द, मूँग, तूर दाल, राई, चावल और जूट की कुल 14 किस्मों को उगाकर किसानों ने बेहतर फसलें पाई, जिनके बीज बड़े थे, फसलें जल्दी तैयार हुईं और इनमें सीमित कीटनाशकों की आवश्यकता पड़ी। एक आँकड़े के अनुसार विश्व में म्यूटेशन ब्रीडिंग विधि से 1800 किस्म की बेहतर फसलों का विकास हुआ है। भारतीय कृषि अनुसंधान केंद्र द्वारा विकिरण प्रेरित उत्परिवर्तन से अरहर, मूँग, उड़द, मूँगफली, जूट, धान एवं सरसों की उन्नत प्रजातियों का विकास किया जा चुका है।

भापअ केन्द्र, ट्रॉम्बे, मुंबई के अप्सरा रिएक्टर में न्यूट्रॉन किरणोपचार की सुविधा उपलब्ध हो जाने पर कई आनुवांशिकविदों ने पौधों पर विकिरण के प्रभाव की जाँच आरंभ कर दी। वर्ष 1960 में उत्परिवर्तन प्रजनन कार्यक्रम अस्तित्व में आया। पिछले 3 से 4 दशकों के दौरान म्यूटेशन ब्रीडिंग द्वारा विकसित 200 से अधिक किस्में भारत में कृषि के लिए उपलब्ध कराई गई हैं। म्यूटेशन ब्रीडिंग में विविध प्रकार की फसलें जैसे धान्य, दलहन, तिलहन, रेशरदार फसलें, सब्जियाँ तथा सजावटी पौधे शामिल किये गये हैं। भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में म्यूटेशन ब्रीडिंग का सफलतम अनुप्रयोग विविध फसली पौधों, विशेषकर दलहनों तथा तिलहनों के आनुवांशिक सुधार में हो रहा है। परमाणु ऊर्जा आयोग के एक अनुमान के अनुसार ट्रॉम्बे दलहन प्रजातियों का विस्तार 330 हजार हेक्टेयर प्रति वर्ष से भी अधिक है जिससे किसानों को इन अधिक उपज देने वाली किस्मों का प्रयोग करने से प्राप्त अतिरिक्त उत्पादन से 7.2 करोड़ रूपए का आर्थिक लाभ प्राप्त होता है।

ii. मिट्टी की उर्वरता में संलग्न रेडियो समस्थानिक

रेडियो समस्थानिकों की सहायता से सामान्य खाद या कीटनाशकों की क्षमता की जाँच की जाती है ताकि बेहतर गुणवत्ता की खाद व कीटनाशकों के प्रयोग से अच्छे परिणाम मिल सकें। सामान्य खाद एवं कीटनाशकों के परमाणुओं में रेडियो समस्थानिकों की सहायता से बदलाव लाया जाता है। इस प्रकार के उर्वरक चिन्हित या अंकित उर्वरक कहलाते हैं। भारतीय परमाणु वैज्ञानिकों द्वारा फॉस्फोरस-32 से अंकित फॉस्फेटों के अध्ययन से एक लाभ का तथ्य सामने आया है कि खाद के तौर पर सस्ता अमोनियम पॉलीफॉॅट वास्तव में महँगे व प्रचलित मोनो व डाई अमोनियम फास्फेट के मुकाबले कहीं ज्यादा बेहतर और असरदार है। इसी प्रकार नाइट्रोजन-15 से चिन्हित जैविक खादों ने भी कई अच्छे परिणाम दिए हैं।

चिन्हित उर्वरकों के जरिए फॉस्फोरस, कैल्शियम, सल्फर जैसे पोषकों तथा जिंक, मैग्नीज़, मॉलिब्लेडनम जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की अलग-अलग मिट्टियों व जलवायु वाले खेतों में क्या भूमिकाएं हो सकती हैं, इनसे जुड़े

अध्ययन लगातार रेडियो समस्थानिकों के प्रयोग से सामने आ रहे हैं। इसके साथ ही रेडियो समस्थानिकों से युक्त कीटनाशक रसायनों के इस्तेमाल द्वारा इनके विषैलेपन का तथ्यपूर्ण आंकलन भी परमाणु वैज्ञानिक कर रहे हैं।

आज यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि खेत उर्वरक का प्रयोग दक्षता के साथ बगैर किसी नुकसान के किया जाए। आज मिट्टी की उर्वरता तथा उर्वरकों के प्रयोग संबंधी अध्ययनों में समस्थानिकों के व्यापक अनुप्रयोग से फास्फेटिक उर्वरकों के मूल्यांकन संभव हुए हैं। नाइट्रोफॉस्फेट तथा पॉलीफॉस्फेटों का प्रयोग किस प्रकार की मिट्टी एवं फसलों के लिए बेहतर होगा और फॉस्फेटी व नाइट्रोजनी उर्वरक के लिए कौन-सा स्थान बेहतर होगा, जैसे मूल्यांकन किए गए हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों (माइक्रोन्यूट्रिएंट्स) के मिट्टी-पौधे के संबंधों के अध्ययन में भी रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग किया गया है जहाँ सूक्ष्म पोषक तत्व फसल की पैदावार को सीमित कर देते हैं।

जहाँ कई रेडियो समस्थानिक प्रकृति में पाए जाते हैं, वही स्थूल व सूक्ष्म पोषक तत्वों सहित लगभग प्रत्येक तत्व के रेडियो समस्थानिक कृत्रिम तरीके से उत्पन्न किए जाते हैं एवं इनकी मापक मात्रा तय की जाती है। विकिरण तकनीकों का प्रयोग खेत की विभिन्न स्थितियों के परीक्षण में कारगर साबित हुआ है। इसमें मिट्टी की नमी आदि का भी ज्ञान होता है। कुछ सूक्ष्म पोषक तत्वों में एक जगह स्थिर रहने की प्रवृत्ति होती है, और इस प्रकार वे पौधे के विकास के लिए उपलब्ध नहीं रह पाते। मिट्टी में ऐसे पोषकों की गतिशीलता के अध्ययन में समस्थानिक उपयोगी रहे हैं।

HBCSE

iii. **कीट पीड़क प्रबंधन में विकिरण तथा रेडियो समस्थानिक**

कीट पीड़क प्रबंधन के क्षेत्र में विकिरण तथा रेडियो समस्थानिकों का प्रयोग किसानों व खेतों के लिए एक आदर्श प्रयोग है, जिसमें फसलों का कीटों से बचाव किया जाता है और किसानों को आर्थिक हानि होने का खतरा कम से कम रहता है।

विकिरण के प्रयोग से कीट पीड़क प्रबंधन में शामिल वंध्या कीट तकनीक (स्टेराइल इन्सेक्ट टेकनीक) व्यावहारिक कीट विज्ञान की एक बड़ी उपलब्धि है। इस तकनीक की संकल्पना वर्ष 1937 में ई.एफ. निपलिंग द्वारा की गयी थी। इस विधि में मुख्यतया प्रयोगशाला में कीटों को बड़ी संख्या में पाला जाता है, एवं आयनकारी विकिरण के उद्भासन द्वारा इन्हें लैंगिक रूप से वंध्या बनाया जाता है। वंध्या नर कीटों की संख्या स्वाभाविक नर कीटों से कई गुना अधिक होती है और जब वे

मादाओं से लैंगिक मिलन करते हैं तो उत्पन्न अण्डे अनुर्वर होते हैं। इस विधि का प्रयोग 'स्क्रूवर्मफ्लाई' के विरुद्ध सफलतापूर्वक किया गया है जो कि मवेशियों का एक गंभीर पीड़क है। भारतीय परमाणु अनुसंधान केंद्र में वंध्या कीट तकनीक एवं विकिरणों के प्रयोग द्वारा भण्डारित उत्पादों को पीड़कों से प्रयास किए जा रहे हैं। इनमें पोटैटो ट्यूबर मॉथ, कपास का स्पाटेड बॉलवर्म तथा भारतीय दालों को प्रभावित करने वाले ब्रूकिड शामिल है।

iv. पीड़कनाशी या कीटनाशी अवशेष मापन

फसलों की पैदावार के लिए पीड़कनाशी या कीटनाशी खेतीबारी का एक महत्वपूर्ण भाग है। ये रसायन लंबे समय तक हमारे खेतों में पड़े रहते हैं तथा खाद्य और चारे में प्रवेश कर सकते हैं। इनसे हम या हमारे जीव प्रभावित हो सकते हैं। अतः इन कृषि रसायनों की जानकारी के साथ ही इनके प्रभाव को उपयुक्त प्रबंधन क्रियाओं द्वारा कम करने की आवश्यकता है। इनके विषय में विस्तृत जानकारी रेडियो आइसोटोप की मदद से ही प्राप्त की जा सकती है। फसलों पर प्रयुक्त पीड़कनाशियों की नियति को समझने में 'रेडियोट्रेसर' प्रभावी सिद्ध हुए हैं। भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में किये गये अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि वनस्पति तेलों के शुद्धिकरण, विशेषकर निर्गंधीकरण प्रविधि से पीड़कनाशी अवशेषों की मात्रा में महत्वपूर्ण कमी हो जाती है। कीटनाशक तेलों में अधिक घुलनशील होते हैं जिस कारण इनकी फसलों पर छिड़के गये कीटनाशी खाद्य तेलों के साथ उपभोक्ताओं तक पहुँचते हैं। मूँगफली की फसल पर डाले जाने वाले कीटनाशक डी.डी.टी. या कार्बोरिल के अवशेष तेल में नहीं पाए जाते, जिन्हें क्षारित शोधन द्वारा हटा दिया जाता है। हांलाकि विखंडित अवशेष डी.डी.ई. या ऐल्फा नेफ्थाल के रूप में पाए जाते हैं।

v. खाद्य पदार्थों का संरक्षण : खाद्य किरणीयन

खाद्य उत्पादन के बाद एक बड़ी चुनौती होती है कि खाद्य पदार्थों की भण्डारण क्षमता बढ़ाकर, कीटों तथा सूक्ष्म जीवों से होने वाली खाद्य क्षति को कैसे कम किया जाए। इसके लिए कुछ पारम्परिक तरीके है जैसे डिब्बा बंद करना, रासायनिक परिरक्षण, हिमीकरण आदि। ये तरीके खर्चीले होते हैं जिन्हें हर आम किसान या खाद्य व्यापारी नहीं अपना सकता। खाद्य सामग्री के संरक्षण में नाभिकीय किरणों का खास योगदान सामने आया है जिसे खाद्य किरणीयन कहते हैं। यह न केवल सुविधाजनक होता है बल्कि इसमें लागत भी कम आती है। खाद्य किरणीयन में खाद्य पदार्थों को आयनकारी विकिरण की निर्धारित या मापित मात्रा में उद्भासित करना होता है। नाभिकीय किरणों की बौछार से आलू, प्याज, माँस, मछली, फलों, सब्जियों, खाद्यान्नों व मसालों जैसी खाद्यसामग्री को लंबे समय तक खराब होने से भी बचाया जा सकता है। कोबाल्ट-60 की मापित मात्रा

की गामा किरणों की बौछार से यह खाद्य साम्रगी लंबे समय तक संरक्षित रहती है क्योंकि इन पर उपस्थित कीटों, सूक्ष्मजीवों, फफूँद आदि का असर नहीं हो पाता। इससे खाद्य पदार्थ के स्वाद व पोषकता में कोई कमी नहीं आती और गंध-रंग व गुणवत्ता भी बनी रहती है। आज बड़े पैमाने पर भारतीय हाफुस आम को अमेरिका पहुँचाया जा रहा है और यह खाद्य किरणीयन से ही संभव हो सका है। लासल गाँव, महाराष्ट्र में किरणीयन तकनीक से इन आमों को निर्जन्तुकृत किया जाता है और उनका पकना भी धीमा हो जाता है। इस प्रकार किरणोपचार के बाद आम और अन्य मसालों को भारत से दुनिया के कई देशों में भेजा जा रहा है। किरणीत आलू, प्याज का अंकुरण बहुत धीमा हो जाता है और महीने भर से अधिक समय तक भी ये खराब नहीं होते। अंतरिक्ष यात्री अपने साथ सुरक्षित यानि किरणीत भोजन ही अंतरिक्ष में ले जाते हैं। दुनिया के 30 देशों में आज बड़े पैमाने पर खाद्य किरणीयन का प्रयोग किया जा रहा है जिससे भंडारण के दौरान खाद्य पदार्थों को सूक्ष्मजीवियों से सुरक्षित रखा जाता है। कोबाल्ट-60 की गामा किरणों के अतिरिक्त इलेक्ट्रॉनों व एक्स किरणों से भी भोजन को किरणीत करने की तकनीक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार की जा चुकी है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में पिछले 25 वर्षों तक खाद्य किरणीयन पर हुए शोध व विकास कार्यों में निम्नांकित खाद्य सामग्री का संरक्षण किया जा रहा है-

खाद्य सामग्री	**खाद्य किरणीयन से लाभ**
1. आलू और प्याज -	अंकुरण की रोक
2. आम और केला -	पकने में विलंब
3. गेहूँ, गेहूँ के उत्पाद, चावल और दाले-	कीटनाशन
4. मछली, अंडे और मांस-	खराब करने वाले सूक्ष्म जीवों में कमी और भंडारण अवधि में वृद्धि
5. हिमीकृत समुद्री खाद्य-	साल्मोनेला जैसे रोग कारणों का निवारण
6. मसाले-	कीटानाशन एवं सूक्ष्मजीवीय निर्दूषण

2. चिकित्सा क्षेत्र में नाभिकीय विकिरणों एवं समस्थानिकों के अनुप्रयोग

i. मानव स्वास्थ्य में रेडियो फार्मास्युटिकल दवाओं का योगदान

आज रेडियो फार्मास्युटिकल दवाओं के संयोजन किए जा रहे हैं और विशेष औषधियों का प्रयोग विभिन्न रोगों के निदान और इलाज के लिए किया

जा रहा है। नाभिकीय औषधि यानि न्यूक्लियर मेडिसिन की निर्माण प्रक्रिया में नाभिकीय समस्थानिकों को अन्य तत्वों या फार्मास्युटिकल यौगिकों के साथ जोड़ा जाता है और इस प्रकार बनाई गई औषधि रेडियो फार्मास्युटिकल कहलाती है। इसके कारण मनुष्य के आंतरिक भागों के स्थिर एवं चल छायाचित्र बगैर किसी चीरफाड़ के लिए जा रहे हैं। इन तकनीकों को न्यूक्लियर इमेंजिग का नाम दिया गया है जिसमें रोगी को बिना कोई तकलीफ दिए शारीरिक अंगों या अवययों के संरचनात्मक चित्र लिए जाते हैं। इनमें एक्स-रे, सीटी-स्कैन, एम.आर.आई और अल्ट्रासाउंस स्कैनिंग शामिल है। फंक्शनल न्यूक्लियर इमेजिंग सबसे प्रमुख और स्वीकार्य न्यूक्लियर मेडिसिन है जो शरीर के अंग के भौतिक पहलुओं की जांच करता है जिससे हम सीटी स्कैन या एम.आर.आई की तुलना में काफी पहले रोग की पहचान कर सकते हैं। फंक्शनल न्यूक्लियर इमेजिंग का प्रयोग कैंसर, किडनी, हृदय, फेफड़े, हड्डी, मस्तिष्क आदि से संबंधित रोगों के निदान के लिए सफलतापूर्वक किया जा रहा है। रेडियो आइसोटोप का मानव स्वास्थ्य के लिए उपयोग आण्विक ऊर्जा का शांतिपूर्ण उद्देश्य के लिए महत्वपूर्ण गैर ऊर्जा प्रयोग है। रेडियो आइसोटोप आज नैदानिक मकसद से काफी प्रचलन में हैं। चिकित्सकीय और दंत एक्स-रे इमेजर में इन रेडियोएक्टिव पदार्थों का प्रयोग होता है।

आज रेडियो फार्मास्युटिकल के उपयोग ने चिकित्सा जगत में एक क्रांति ला दी है। बोर्ड ऑफ रेडिएशन ऐण्ड आइसोटोप टेक्नोलॉजी (ब्रिट) में लगभग 25 रेडियो फार्मास्युटिकल उत्पाद तैयार किये गये हैं जो भारत के सैकड़ों नाभिकीय औषधीय केंद्रों की माँग पूरी कर रहे हैं और इनका निर्यात पड़ोसी देशों को भी किया जा रहा है।

ii. **नैदानिक जाँच में पूर्व चेतावनी**

लगभग एक शताब्दी पहले प्राकृतिक विकिरण ही एकमात्र ज्ञात विकिरण का प्रकार था। सन् 1865 में एक्स-रे ट्यूब के आविष्कार से चिकित्सा के क्षेत्र में क्रांति आ गई। प्रथम कृत्रिम रेडियोसक्रिय पदार्थ का उत्पादन 1934 में किया गया। कुछ समय पूर्व तक असाध्य और जानलेवा समझे जाने वाले कैंसर जैसे रोगों का आज आवश्यकतानुसार तैयार रेडियोसक्रिय समस्थानिकों से सफल उपचार किया जा रहा है। कृषि और उद्योग क्षेत्रों में विकिरण के नियंत्रित प्रयोग की सहायता से कृषि की बेहतर पद्धतियों का जन्म हुआ है और नवीन औद्योगिक प्रक्रियाओं का निर्माण हुआ है।

आज एक्स-रे की चिकित्सा क्षेत्र में उपलब्धता से कई बीमारियों का आरंभिक चरण में ही पता लगाया जा सकता है, जिससे समय रहते इलाज हो पाता है और जोखिम से बचा जा सकता है। महिलाओं में स्तन कैंसर का पता लगाने हेतु मैमोग्राफी का उपयोग किया जाता है। डॉक्टर

HBCSE

द्वारा हड्डियों में रोग या असामान्यता की जाँच, और हड्डियों में ऑस्टियोपोरोसिस (भुरभुरापन) रोग की जाँच के लिए एक्स-रे का उपयोग किया जाता है। कई बार नैदानिक प्रयोजन के लिए भी शरीर के अंदर रेडियोसक्रिय पदार्थ को इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है।

जब एक्स विकिरण शरीर में आंशिकरूप से प्रवेश करता है तो यह एक अर्ध-प्रतिच्छाया निर्मित करता है जिसमें अंधेरे और उजाले वाले क्षेत्र होते हैं। किसी रोगी की एक्स विकिरण प्रतिच्छाया जब फिल्म पर पड़ती है तो यह आंतरिक अंगों का प्रतिबिंब बनाती है, जिसके अध्ययन से चिकित्सक रोग का निदान करते हैं। फिल्म पर हड्डियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। लेकिन जब आँतों या कार्टिलेज की जाँच करनी होती है तो रोगी को एक कंट्रास्ट माध्यम इंजेक्शन द्वारा या मुँह के जरिए दिया जाता है। जिस स्थान का एक्स-रे लेना होता है, वहाँ जाकर यह माध्यम स्थिर हो जाता है। यह माध्यम विकिरण को तुरंत अवशोषित करता है, अतः अंग की स्पष्ट प्रतिच्छाया एक्स-रे फिल्म पर आ जाती है।

iii. कैंसर के विकिरण उपचार

कैंसर भारत में होने वाला एक प्रमुख रोग है जिसकी वजह से प्रति वर्ष 5 लाख मौतें हो जाती है। कैंसर के विकिरण उपचार के आज बेहतर परिणाम मिल रहे हैं। शरीर में कोशिकाओं की अनियंत्रित वृद्धि कैंसर कहलाती है। कैंसर के उपचार के कई तरीके हैं, जिनमें शल्यक्रिया, कीमोथेरेपी एवं रेडियोथैरेपी विकिरण उपचार शामिल है। कैंसर के मरीजों में से कइयों को इलाज की प्रक्रियाा के तहत रेडियोथैरेपी की आवश्यकता पड़ती है। रेडियोथैरेपी का असल मतलब है विकिरण का इस्तेमाल कर कैंसरग्रस्त कोशिकाओं का खात्मा। अब हम विकिरण ठीक सही जगह पर दे सकते हैं और विकिरण का प्रभाव सिर्फ इलाज किए जा रहे हिस्से पर ही होता है, जबकि कीमोथैरेपी का असर पूरे शरीर पर पड़ता है। रेडियोथैरेपी में कैंसर कोशिकाओं पर विकिरण केन्द्रित करके उनको नष्ट कर दिया जाता है। ऐसे विकिरण कोबाल्ट-60, या सीजियम-137 जैसे समस्थानिकों से प्राप्त किये जाते हैं। ऐसे समस्थानिक स्रोत का उत्पादन मुख्यतः बोर्ड ऑफ रेडिएशन और आइसोटोप टेक्नोलॉजी (ब्रिट) में होता है। आज देश में कैंसर के विकिरण उपचार, अनुसंधान एवं शिक्षण पर कई केंद्र कार्यरत है, जिसमें परमाणु ऊर्जा विभाग का टाटा स्मारक केंद्र (टी.एम.सी) विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो कैंसर के उपचार व अनुसंधान का देश का अग्रणी केंद्र है।

कैंसर के उपचार में रेडियोथेरेपी का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक ऊर्जा वाले विकिरण के साथ किया जाता है। रेडियोथेरेपी में एक टेली कोबाल्ट यूनिट या रेखीय त्वरक का प्रयोग किया जाता है। रेखीय त्वरक शरीर में

उच्च-ऊर्जा इलेक्ट्रॉन किरण पुंज को इस प्रकार निर्देशित किया जाता है कि यह केवल ट्यूमर या कैंसरग्रस्त ऊतकों पर ही प्रहार करे एवं निकट के अन्य ऊतकों एवं त्वचा को नुकसान न पहुँचे। आवश्यकतानुसार रेखीय त्वरक के माध्यम से शरीर के आंतरिक अंगों की प्रतिच्छाया एक्स-रे मशीन से प्राप्त की जा सकती है। कैंसर के उपचार के लिए एक कारगर पूर्णतः स्वदेशी टेलीकोबाल्ट मशीन भाभाट्रॉन का निर्माण भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुंबई ने किया है।

रेडियोथेरेपी का उपयोग थायरॉयड हारमोन के अत्यधिक और कुछ इस प्रकार के थायरॉइड कैंसर के लिए किया जाता है। रोगी को आयोडीन-131 युक्त घोल पिलाया जाता है जो थायरॉयड ग्रंथि तक पहुँच जाता है और आंतरिक रेडियोथेरेपी उपलब्ध कराता है। कुछ विशेष तरह के मामलों में शरीर में उपचार के स्थान के पास एक गहन विकिरण स्रोत प्रविष्ट करा दिया जाता है जो कि कुछ समय के लिए उपचार किए जाने वाले स्थान पर रेडियोथेरेपी उपलब्ध कराता है।

iv. **निर्जर्मीकरण एवं खाद्य संरक्षण**

अस्पताल के ऑपरेशन थियेटर में इस्तेमाल होने वाले उपकरण, दस्ताने आदि के निर्जर्मीकरण के लिए अतितीव्र विकिरण का प्रयोग किया जाता है। ये उपकरण व दस्ताने परम्परागत निर्जर्मीकरण में उपयोग किए जाने वाले उच्च ताप को नही सह पाते हैं। विकिरण का उपयोग कर कुछ दवाएं भी निर्जर्मीकृत की जाती है। खाद्य पदार्थों को किरणित कर उनके संरक्षण की अवधि बढ़ाई जा सकती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 20 प्रतिशत से अधिक खाद्य पदार्थ उपभोक्ता तक पहुँचने से पहले ही खराब हो जाते हैं जबकि खाद्य पदार्थ को किरणित करके लंबे समय के लिए, कई महीनों तक संरक्षित रखा जा सकता है। खाद्य पदार्थों के किरणन से ट्राइकिनी जैसे परजीवी और सालमोनेला जैसे रोगकारक जीवाणु भी समाप्त किए जा सकते हैं। किरणन द्वारा खाद्य पदार्थ पूरी तरह सुरक्षित रहते हैं। कहीं-कहीं यह भ्रम फैलाया जाता है कि किरणित खाद्य पदार्थ रेडियोसक्रिय हो जाते हैं जबकि वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होता। कोई भी किरणित खाद्य पदार्थ अपने में रेडियोसक्रिय नहीं हो सकता और इनसे उपभोक्ता को भी कोई खतरा नहीं होता।

v. जंतु स्वास्थ्य एवं उत्पादकता में नाभिकीय तकनीक

पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान के क्षेत्र में नाभिकीय तकनीकों का प्रयोग पशुओं का स्वास्थ और उनकी उत्पादकता सुधारने में किया जा रहा है। कार्बन, फास्फोरस एवं नाइट्रोजन के समस्थानिकों के प्रयोग से देशी घास तथा धान के पुआल की खुराक के अनुपूरकों का पता लगाया गया है। शोध द्वारा यह ज्ञात किया गया है कि बहुपोषक शीरा या खनिज ब्लाक

HBCSE

से बनाए गए अनुपूरक बेहतर होते हैं।

जानवर कई प्रकार के परजीवी, विषाण्विक तथा जीवाण्विक संक्रमणों के प्रति संवेदनशील होते हैं। जानवरों की इन बीमारियों का पता लगाने में आज रेडियोइम्यूनोएसे (आर.आई.ए) तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। जानवरों में गर्भाधान का प्रांरभिक अवस्था में पता लगा लेना इस तकनीक का एक आम अनुप्रयोग है। घुड़दौड़ में भी मनुष्य के खेलों की तरह ही आर.आई.ए. तकनीक ड्रग दुरुपयोग (डोपिंग) की छानबीन का एक तरीका बन गया है। आर.आई.ए तकनीक का प्रयोग प्रतिपिंडों की खोज करने में टीके (वैक्सीन) को प्रभावी बनाने के लिए भी किया जा रहा है। बोर्ड ऑफ रेडिएशन ऐण्ड आइसोटोप टेक्नोलॉजी (ब्रिट) ने आर.आई.ए. रिएजेंटों के लिए जानकारी विकसित की है और थायरॉइड जैसे महत्वपूर्ण हार्मोनों के लिए आर.आई.ए किटों का निर्माण किया है।

vi. हाइड्रोजेल का विकास

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र द्वारा विकिरण तकनीक से हाइड्रोजेल का विकास किया गया है। यह हाइड्रोजेल प्रचुर मात्रा में जल धारण करने की क्षमता रखता है। हाइड्रोजेल का प्रयोग शरीर के किसी अंग के जल जाने पर औषधि के रूप में किया जाता है। आज यह हाइड्रोजेल उपभोक्ता को सस्ते दामों में उपलब्ध कराया गया है।

आज देश में जहाँ एक ओर शून्य कार्बन उत्सर्जन वाली नाभिकीय तकनीक के बारे में स्वदेशी शोध पर जोर दिया जा रहा है, वहीं लोगों के मस्तिष्क में पैठ बन चुकी मिथ्या धारणाओं को समाप्त करने के प्रयास किए जा रहे हैं। आज लोगों में नाभिकीय तकनीक, विकिरण एवं रेडियो समस्थानिकों को लेकर तरह-तरह की भ्रांतियां घर कर गई है जैसे नाभिकीय तकनीक से केवल परमाणु बम ही बनता है, परमाणु विद्युत संयंत्र एक बम की तरह है तथा इसमें किसी दुर्घटना में नाभिकीय विकिरण की घातक मात्रा उत्पन्न हो सकती है, रेडियो समस्थानिक एवं विकिरण का कोई उपयोग नहीं है एवं ये घातक हैं, आदि। वास्तविकता तो यह है कि नाभिकीय ऊर्जा का प्रयोग आज भारत एवं विश्व में, न केवल विद्युत उत्पादन के लिए किया जा रहा है बल्कि चिकित्सा, कृषि एवं उद्योग में विकिरण एवं रेडियो समस्थानिकों के शांतिपूर्ण उपयोगों को आज अंतराष्ट्रीय स्तर की ख्याति एवं मान्यता मिल चुकी है। यह भी कहा जा सकता है कि नाभिकीय तकनीकों ने आज चिकित्सा एवं कृषि जगत में एक नई क्रांति ला दी है।

जीवन को बेहतर बनाते नाभिकीय तकनीक के शांतिपूर्ण उपयोग

कृषि के क्षेत्र में नाभिकीय तकनीक के शांतिपूर्ण उपयोग ने महत्वपूर्ण सामाजिक

HBCSE

प्रभाव डाला है। नाभिकीय कृषि एवं जैवतकनीकी विभाग व्यापक अनुसंधान के तहत म्यूटेशन तथा रिकॉम्बिनेशन ब्रीडिंग द्वारा अधिक पैदावार और जल्द परिपक्व होने वाली नस्ल के फसलों के विकास में जुटा है जिनमें जैविक तनावों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता हो, अधिक पोषक गुणवत्ता हो और बेहतर पारिस्थितिकी सामंजस्य की ताकत हो। अब तक फसलों की 40 तरह की नस्लों का विकास भारत के विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्र के अंतर्गत व्यवसायिक उत्पादन के लिए प्रदान किया गया है।

खाद्य किरणीयन की प्रक्रिया के तहत खाद्य-पदार्थों पर आयनिक विकिरण डालकर उसमें मौजूद सूक्ष्मजीवों, जीवाणु, रोगाणु या कीड़ों को नष्ट किया जाता है। कृषि उत्पादों की बरबादी को कम करने के लिए नाभिकीय तकनीकें इस्तेमाल की जाती है। नाभिकीय ऊर्जा के प्रयोग से जहाँ बरबादी में कमी आती है वहीं उपज में वृद्धि होती है और इस तरह खाद्य सुरक्षा की दिशा में हम कदम बढ़ाते हैं। यह एक्स-रे की तरह ही है। यह शरीर में नहीं रहता इसलिए यह सुरक्षित प्रक्रिया है। साथ ही यह अंकुरण को रोक कर प्याज और आलू को अधिक दिनों तक उपयोग के लायक बनाए रखता है। आम और दूसरे उत्पादों को भी यह जीवाणुमुक्त कर उन्हें सुरक्षित और ज्यादा दिनों तक के लिए टिकाऊ बनाता है। इस प्रक्रिया से खाद्य का अधिक समय तक उपलब्ध रहना सुनिश्चित हो पाता है।

वर्तमान में नाभिकीय तकनीक का हजार से भी अधिक तरीकों से शांतिपूर्ण इस्तेमाल कर हमारे जीवन को बढ़िया और दुनिया को बेहतर बनाया जा रहा है। इमारतों में लगे स्मोक डिटेक्टर नाभिकीय तकनीक का जाना-पहचाना नमूना है। नाभिकीय ऊर्जा शांतिपूर्ण उद्देश्य के लिए अन्य उपयोगों में शामिल है, औद्योगिक उपयोग, तेल व गैस की खोज, सड़क निर्माण, प्रदूषण की जानकारी, चट्टान और कीटों का उम्र निर्धारण एवं अंतरिक्ष अभियान।

आयनकारी विकिरण

ऐल्फा विकिरण में भारी, धन आवेशित कण या यूरेनियम, रेडियम, रेडॉन और प्लूटोनियम जैसे भारी तत्वों के परमाणुओं द्वारा उत्सर्जित 2 प्रोटॉन और 2 न्यूट्रॉन के पैकेज समाहित होते हैं। ऐल्फा विकिरण हवा में एक-दो सेंटीमीटर से अधिक संचलन नहीं कर सकता और यह कागज की शीट या त्वचा की बाहरी मृत कोशिकाओं की सतह (त्वचा की ऊपरी परत) से पूरी तरह अवरुद्ध हो जाता है किंतु यदि ऐल्फा कण उत्सर्जित करने वाला पदार्थ शरीर में प्रवेश कर जाता है तो वह अपने आसपास की कोशिकाओं को अपनी ऊर्जा उत्सर्जित करेगा। उदाहरण के लिए एक बार यदि यह फेफड़ों में पहुँच जाए तो यह संवेदनशील ऊतकों को आंतरिक डोज देगा क्योंकि उन्हें त्वचा की तरह ऊपरी त्वचा का सुरक्षा कवच प्राप्त नहीं होता।

बीटा विकिरण इलेक्ट्रॉन कण है जो ऐल्फा कणों से बहुत छोटे होते हैं। ये अधिक गहराई तक वेधन में सक्षम होते हैं। इन्हें धातु की चादर, खिड़की के कांच

या सामान्य कपड़ों से रोका जा सकता है और ये समान्यतः त्वचा की केवल ऊपरी तह को वेध पाते हैं जिससे अनावृत त्वचा को क्षति पहुँच सकती है। यदि बीटा कण शरीर में प्रवेश कर जाएं तो ये आंतरिक ऊतकों को किरणित कर देते हैं।

गामा विकिरण वैद्युतचुंबकीय तरंगें होती है। वायु में इसकी रेंज लंबी रहती है। इसकी वेधन क्षमता काफी अधिक होती है। जैसे ही गामा विकिरण किसी पदार्थ में प्रवेश करता है तो इसकी तीव्रता कम होना शुरू हो जाती है। अपने मार्ग में यह आसपास के परमाणुओं से टकराता चलता है। शरीर की कोशिकाओं के साथ इस तरह की क्रिया त्वचा या आंतरिक ऊतकों को क्षति पहुँचा सकती है। लेड और क्रांकीट जैसे गहन पदार्थ, गामा किरणों को रोकने के लिए अच्छे रोधक होते हैं।

एक्स विकिरण, गामा विकिरण की तरह ही नाभिक से उत्सर्जित होता है किंतु इसे एक एक्स-रे ट्यूब बिजली द्वारा प्रचालित होती है, अतः एक्स किरणों का उत्पादन एक स्विच के माध्यम से शुरू व बंद किया जा सकता है।

न्यूट्रॉन विकिरण परमाणु के नाभिक के विखंडन के दौरान पैदा होता है। यह अपने आप में आयनीकारक विकिरण नहीं होता है किंतु यदि यह दूसरे नाभिक से टकराता है तो यह उसे सक्रिय कर सकता है या उससे गामा किरणें या आवेशित कण उत्सर्जित हो सकते हैं, जिनके परिणामस्वरूप आयनकारी विकिरण पैदा होता है। न्यूट्रॉन की वेधन क्षमता, गामा किरणों से अधिक होती है और इन्हें क्रांकीट की मोटी दीवार, पानी या पैराफिन के रोधक से ही रोका जा सकता है। अच्छी बात यह है कि न्यूट्रॉन विकिरण, व्यावहारिक रूप में परमाणु रिएक्टर और परमाणु ईंधन के आसपास के अलावा और कहीं विद्यमान नहीं रहता।

❖ वैज्ञानिक
विज्ञान प्रसार
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
ए-50, सेक्टर 62, नोएडा-201 309
ई-मेल : nkapoor@vigyanprasar.gov.in, nimish2047@gmail.com

HBCSE

बूलीय बीजगणितः इलेक्ट्रॉनिक परिपथों के डिजाइन का आधार

◆ पूनम त्रिखा

सूचना संचार एवं इलेक्ट्रॉनिकी के क्षेत्र में निरंतर नए आयाम जुड़ते जा रहे हैं। कम्प्यूटर, मोबाइल एवं इंटरनेट आदि हमारी रोजमर्रा की आवश्यकता बन गई हैं। क्या आप जानते हैं कि इन सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों व युक्तियों का मुख्य आधार होता है, उनमें लगे विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक परिपथ और उनमें लगी छोटी-छोटी चिप। दरअसल ये चिप भी विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक परिपथों का संग्रह ही होती हैं जो कि बहुत अधिक सूचनाओं को एकत्रित कर सकती हैं। इन्हीं इलेक्ट्रॉनिक परिपथों के डिजाइन में बूलीय बीजगणित (Boolean Algebra) का उपयोग होता है। हम यह कह सकते हैं कि आज बूलीय बीजगणित, आंकिक इलेक्ट्रॉनिकी का आधार बन गया है।

हम जानते हैं कि बीजगणित, गणित की वह शाखा है जिसमें संख्याओं के स्थान पर चिन्हों का प्रयोग किया जाता है। बीजगणित चर तथा अचर राशियों के समीकरण को हल करने तथा चर राशियों के मान निकालने पर आधारित है। बीजगणित के विकास के फलस्वरूप निर्देशांक ज्यामिति व कैलकुलस का विकास हुआ जिससे गणित की उपयोगिता बहुत बढ़ गयी। इससे विज्ञान और तकनीकी के विकास को गति मिली।

बूलीय बीजगणित का विकास

सन् 1840 में, गणितज्ञ जार्ज बूल ने बीजगणित को एक तार्किक आधार प्रदान करते हुए एक नए रूप में प्रस्तुत किया जिसे आज बूलीय बीजगणित या बूली का तर्कशास्त्र के नाम से जाना जाता हैं। बूलीय बीजगणित, तार्किक ऑपरेशन का एक सम्पूर्ण तंत्र है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में जब बूलीय बीजगणित का उद्भव हुआ तो किसी ने इसे महत्व नहीं दिया। सन् 1938 में जब गणितज्ञ क्लॉड शैनन ने यह प्रदर्शित किया कि रिले युक्त परिपथ का कार्य बूलीय बीजगणित के तर्क पर आधारित है तब बूली का बीजगणित संगणक- गणित का आधार सिद्ध हुआ। आज उनका यह योगदान इतना महान और महत्वपूर्ण दीखता है कि संगणक (Computer) विज्ञान के जन्मदाताओं में उनकी गणना की जाती है। जबकि उनके युग में कम्प्यूटर का कहीं अता-पता नहीं था।

बूलीय बीजगणित दो अंकों (binary digits or bits) पर आधारित होता है ये अंक {शून्य, एक}, {असत्य, सत्य} या {F,T} के रूप में लिखे जाते हैं। हम अपने जीवन के प्रत्येक दिन कई ऐसे तार्किक निर्णय लेते हैं जिनमें केवल दो ही संभावनाएं होती हैं। जैसे कि, “क्या हमें कैल्कुलेटर का उपयोग करना चाहिए या नहीं?”, “क्या हमें किताब ले जानी चाहिए या नहीं?”। इस प्रकार के प्रत्येक प्रश्न

HBCSE

के उत्तर में या तो हाँ होती है या नहीं। ऐसे निर्णय जिनका परिणाम हाँ (सत्य) या नहीं (असत्य) पर निर्भर करता है, उन्हें बाइनरी निर्णय (binary decision) कहते हैं।

गणितज्ञ जार्ज बूल ने बूलीय बीजगणित में सत्य के लिए एक (1) का उपयोग तथा असत्य के लिए शून्य (0) का उपयोग किया। इन्हीं दो अंकों यानि शून्य (0) व एक (1) का उपयोग करके उन्होनें एक गणितीय सारिणी बनाई।

सत्य सारिणी

यह गणितीय सारिणी सभी संभावित तार्किक मूल्यों और उनके साथ दिए गए मूल्यों के परिणामों पर आधारित है जिसे सत्य सारिणी कहते हैं। यदि सारिणी में n इनपुट होते है तो सारिणी में उनके मूल्यों की संभावित संख्या 2^n होगी। जैसे हमारे पास 2 इनपुट हैं- a और b, तो सारिणी में संभावित मूल्यों की संख्या चार होगी जैसा कि निम्न तालिका-1 में दर्शाया गया है।

a	b	f
0	0	0
0	1	0
1	0	0
1	1	1

तालिका-1: सत्य सारिणी

सत्य सारिणी में यदि बूलीय कथनों का परिणाम सदैव सत्य/1 होता है तो उसे टॉटोलॉजी (Tautology) और यदि असत्य/0 होता है तो उसे कॉन्ट्राडिक्सन (Contradiction) कहते हैं।

बूलीय ऑपरेशन

बूलीय बीजगणित में द्विक ऑपरेशन (binary operation) के लिए दो प्रतीक परिभाषित किए गए है- तार्किक AND और तार्किक OR। इसी प्रकार एकाकी ऑपरेशन (uniary operation) के लिए NOT को परिभाषित किया गया हैं।

NOT ऑपरेटर

यह ऑपरेटर एक ही चर राशि पर कार्य करता है और इस ऑपरेशन को complement/negation कहते हैं। इसे दर्शाने के लिए ¬/~ या - (बार) का उपयोग करते हैं। जैसे $\bar{x}$, इसका अर्थ है कि x का complement अर्थात् अगर x का मान शून्य है तो $\bar{x}$ का मान एक हो जाएगा और यदि x का मान एक है तो $\bar{x}$ शून्य हो जाएगा।

x	$\bar{x}$
0	1
1	0

तालिका-2: NOT आपरेटर के लिए सत्य सारिणी

OR ऑपरेटर

बूलीय बीजगणित का दूसरा महत्वपूर्ण ऑपरेटर है- OR, जो तार्किक जोड़ के लिए उपयोग किया जाता है। जिसे '+' के चिन्ह से पहचाना जाता है जो बूले द्वारा प्रतिपादित है। इसके लिए अन्य चिन्हों का भी उपयोग किया जाता है जैसे V/U (तार्किक OR/Set Union), इसको समझने के लिए एक सरल उदाहरण लेते हैं जैसे कि "यदि मेरा वेतन बढ़ता है या मैं एक लॉटरी जीत जाता हूँ तो मैं एक कार खरीद सकूंगा।" यह कथन इस बात की व्याख्या करता है कि "कार खरीदना" दो तथ्यों "वेतन का बढ़ना" या "लॉटरी जीतना" पर निर्भर करता है। ये तथ्य असत्य/सत्य हो सकते हैं और उसी पर निर्भर करेगा कार का खरीदना। दोनो में से कोई भी एक तथ्य सत्य है तो कार का खरीदना संभव है। यदि हम "वेतन का बढ़ना" को x मान ले और "लॉटरी जीतना" को y मान ले तो, इस उदाहरण को निम्लिखित तरीके से सत्य सारिणी के रूप में भी लिखा जा सकता है-

x	y	F = x+y
0	0	0
0	1	1
1	0	1
1	1	1

तालिका-3: OR आपरेटर के लिए सत्य सारिणी

AND ऑपरेटर

AND ऑपरेटर तार्किक गुणनफल के लिए उपयोग किया जाता है। इसे पूर्णविराम बिंदु (.) से दर्शाया जाता है। जैसे x.y, इसे पढ़ा जाता है- x AND y। इसे x.y या xy किसी भी रूप में लिखा जा सकता है। इसको समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं जैसे कि, "यदि मैं एक कंम्यूटर खरीदता हूँ और एक इंटरनेट कनेक्शन लेता हूँ तो मैं ऑनलाइन ई-बुक पढ़ सकूगाँ।" यह कथन इस बात की व्याख्या करता है कि "ऑनलाइन ई-बुक पढ़ना" दो तथ्यों "कम्प्यूटर खरीदना" और "इंटरनेट कॅनक्शन लेना" दोनों पर निर्भर करता है। ये तथ्य असत्य/सत्य हो सकते हैं और उसी पर निर्भर करेगा ई-बुक पढ़ना। दोनों में से कोई भी एक तथ्य असत्य होता है तो ई-बुक पढ़ना संभव नहीं हैं। यदि हम "कम्प्यूटर खरीदना" को

HBCSE

x मान लें और “इंटरनेट कॅनक्शन“ को y मान लें, तो इस उदाहरण को निम्नलिखित तरीके से सत्य सारिणी के रूप में भी लिखा जा सकता है-

x	y	x.y
0	0	0
0	1	0
1	0	0
1	1	1

तालिका-4: AND आपरेटर के लिए सत्य सारिणी

बूलीय कथन (Boolean Expression)-

बूलीय कथन चर राशि (variable) और स्थिर राशि (constant) से मिलकर बने होते हैं और ये AND, OR, NOT ऑपरेटर से जुड़े होते हैं। जैसे- C+D, ĀB। प्रत्येक बूलीय कथन को सत्य सारिणी द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। जैसे Ā+BC

A	B	C	Ā	BC	Ā+BC
0	0	0	1	0	1
0	0	1	1	0	1
0	1	0	1	0	1
0	1	1	1	1	1
1	0	0	0	0	0
1	0	1	0	0	0
1	1	0	0	0	0
1	1	1	0	1	1

तालिका-5: Ā+BC के लिए सत्य सारिणी

HBCSE

सत्य सारिणी से बूलियन कथन लिखना

सत्य सारिणी के परिणामों में प्रत्येक बूलीय कथन के समांतर एक राशि सत्य होती है। इसे बूलीय कथन में आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है।

F सत्य होगा जब

A	B	C	F
0	0	0	0
0	0	1	0
0	1	0	1
0	1	1	0
1	0	0	0
1	0	1	0
1	1	0	0
1	1	1	1

A असत्य है AND
B सत्य है AND
C असत्य है

OR

A सत्य है AND
B सत्य है AND
C सत्य है

तब बूलियन कथन होगा, F = $\bar{A}B\bar{C} + ABC$

बूलियन कथन से सत्य सारिणी बनाना- इसे नीचे लिखे उदाहरण से समझते हैं:

$$F = AB+BC$$

इस बूलियन कथन में तीन (ABC) चर राशियां है तो सत्य सारिणी में 2^n के हिसाब से उनके मूल्यों की संभावित संख्या आठ होगीं, जो इस प्रकार है-

A	B	C	F
0	0	0	
0	0	1	
0	1	0	
0	1	1	
1	0	0	
1	0	1	
1	1	0	
1	1	1	

HBCSE

बूलीय कथन के इस उदाहरण में, AB आपस में AND ऑपरेशन से, और BC आपस में AND ऑपरेशन से, और दोनों आपस में OR ऑपरेशन से जुड़ें हैं। AB में C की कमी है तो BC में A की कमी है, दोनों को निम्नलिखित तरीके से बराबर करते हैं-

$$AB \equiv ABC + AB\bar{C} \longrightarrow [\ \bar{C} + C = 1]$$

$$BC \equiv ABC + \bar{A}BC \longrightarrow [\bar{A} + A = 1]$$

अब इसे 0 और 1 के रूप में लिखते हैं-

$ABC \longrightarrow 111$

$AB\bar{C} \longrightarrow 110$

$\bar{A}BC \longrightarrow 011$

अब सत्य सारिणी में इन मूल्यों के समांतर 1 लिखते है तो इस प्रकार हमारी सारिणी तैयार होती है।

$F = ABC + AB\bar{C} + \bar{A}BC$

A	B	C	F
0	0	0	0
0	0	1	0
0	1	0	0
0	1	1	1
1	0	0	0
1	0	1	0
1	1	0	1
1	1	1	1

HBCSE

तार्किक परिपथ (Logic gate)

जब क्लॉड शैनन ने बूलीय बीजगणित को टेलीफोन के स्विचिंग परिपथ (Switching Circuit) में उपयोग किया तो उसके बाद कम्प्यूटर इलेक्ट्रॉनिक्स में भी इसका उपयोग शुरू हुआ। कम्प्यूटर के क्षेत्र में बूलियन ऑपरेशन तार्किक परिपथों द्वारा किया जाता है।

ये परिपथ एक इलेक्ट्रॉनिक परिपथ है जो एक या एक से अधिक संकेत (Signal) ग्रहण करके उसका एक परिमाणिक संकेत प्रदान करते हैं। इसे डिजिटल तार्किक परिपथ भी कहते हैं क्योंकि ये परिपथ दो-अवस्था वाले परिपथ को परिभाषित करते हैं अर्थात् इनमें इनपुट और आउटपुट सिग्नल या तो कम वोल्टेज के (जो शून्य को दर्शाते है) और अधिक वोल्टेज के (जो एक को दर्शाते है) होते हैं अर्थात् ये ऑन/ऑफ अवस्था में होते हैं।

ये परिपथ सामान्यतया तीन प्रकार के होते है-

1) NOT परिपथ
2) OR परिपथ
3) AND परिपथ

इन सामान्य तीन परिपथों (AND, OR, NOT) से अन्य परिपथ (NAND, NOR, XOR) भी प्राप्त किए जा सकते हैं। प्रत्येक परिपथ के बायीं तरफ की लाइनें इनपुट तारों या पोर्ट को दर्शाती हैं और दायी तरफ की लाइनें आउटपुट पोर्ट को दर्शाती हैं।

NOT परिपथ

इस परिपथ में केवल एक ही सिग्नल प्रयुक्त होता है। इसकी आउटपुट अवस्था इनपुट अवस्था के विपरीत होती है। इसे निम्न तरीके से दर्शाते है-

<table>
<tr><th>संकेत (Symbol)</th><th>सत्य सारिणी</th></tr>
<tr><td>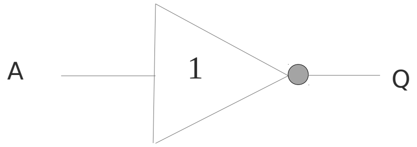

इनर्वटर या NOT परिपथ</td><td><table><tr><th>A</th><th>Q</th></tr><tr><td>0</td><td>1</td></tr><tr><td>1</td><td>0</td></tr></table></td></tr>
<tr><td colspan="2">बूलीय कथन Q = NOT A or Ā</td></tr>
</table>

OR परिपथ

यह परिपथ दो या दो से अधिक संकेत ग्रहण करता है लेकिन उत्तर में केवल एक ही सिग्नल देता है। यदि किसी भी इनपुट सिग्नल का मान 1 है तो यह आउटपुट सिग्नल का मान भी 1 होगा। इस परिपथ के चित्र निम्नप्रकार से हैं-

<table>
<tr><th>संकेत (Symbol)</th><th>सत्य सारिणी</th></tr>
<tr><td>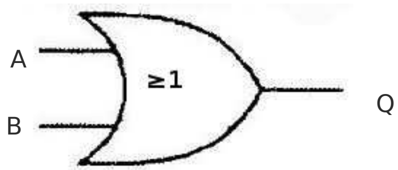

2-इनपुट OR परिपथ</td><td><table><tr><th>A</th><th>B</th><th>Q</th></tr><tr><td>0</td><td>0</td><td>0</td></tr><tr><td>0</td><td>1</td><td>1</td></tr><tr><td>1</td><td>0</td><td>1</td></tr><tr><td>1</td><td>1</td><td>1</td></tr></table></td></tr>
<tr><td colspan="2">बूलीय कथन Q = A+B</td></tr>
</table>

AND परिपथ-

ये परिपथ भी OR परिपथ की तरह दो या दो से अधिक संकेत/सिग्नल ग्रहण करता है और परिणाम में केवल एक ही सिग्नल प्रदान करता है। लेकिन इस परिपथ में जब सभी इनपुट का मान 1 होगा तभी आउटपुट सिग्नल का मान 1 होगा अन्यथा 0 होता है। इस परिपथ के चित्र निम्न प्रकार से हैं-

HBCSE

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी
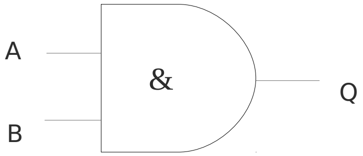 2-इनपुट AND परिपथ	<table><tr><th>A</th><th>B</th><th>Q</th></tr><tr><td>0</td><td>0</td><td>0</td></tr><tr><td>0</td><td>1</td><td>0</td></tr><tr><td>1</td><td>0</td><td>0</td></tr><tr><td>1</td><td>1</td><td>1</td></tr></table>
बूलीय कथन Q = A.B	

बूलीय बीजगणित के नियम

बूलीय बीजगणित के नियम, बूलीय कथनों के सरलीकरण के लिए उपयोग किए जाते हैं। निम्नलिखित तालिका में कुछ बूलीय नियम दिए गए है जो इस प्रकार हैं:

1	A+0 = A	2	A+1 = 1
3	A.0 = 0	4	A.1 = A
5	A+A = A	6	A+$\bar{A}$ = 1
7	A.A = A	8	A.$\bar{A}$ = 0
9	$\bar{\bar{a}}$ = a	10	(a) A+B = B+A (b) A.B = B.A
11	(a) A+(B+C) = (A+B)+C (b) A(BC) = (AB)C		

HBCSE

नियम-1 : A+0 = A

इस नियम के अनुसार, जब किसी चर राशि को OR ऑपरेशन के द्वारा शून्य(0) के साथ जोड़ा जाता है तो उसका मान उस चर मूल्य के बराबर होगा।

संकेत	सत्य सारिणी
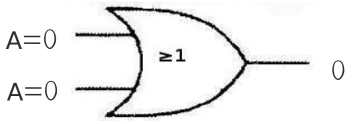 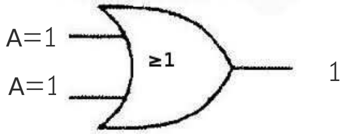	<table><tr><th>A</th><th>0</th><th>A</th></tr><tr><td>0</td><td>0</td><td>0</td></tr><tr><td>1</td><td>0</td><td>1</td></tr></table>
बूलीय नियम : A+0 = A	

नियम-2 : A+1 = 1

इस नियम के अनुसार, जब किसी चर राशि को OR ऑपरेशन के द्वारा एक(1) के साथ जोड़ा जाता है तो आउटपुट का मान हमेशा एक(1) ही होगा।

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी

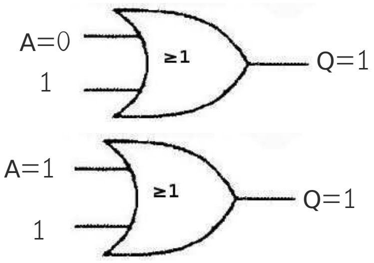

A	1	Q
0	1	1
1	1	1

बूलीय नियम : A+1 = 1

नियम-3 : A.0 = 0

इस नियम के अनुसार, जब भी किसी चर को शून्य(0) के साथ AND ऑपरेशन के द्वारा उसका तार्किक गुणनफल किया जायेगा तो आउटपुट हमेशा शून्य(0) ही होगा।

HBCSE

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी

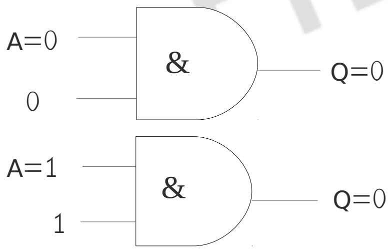

A	0	Q
0	0	0
1	0	0

बूलीय नियम : A.0 = 0

नियम-4 : A.1 = A

इस नियम के अनुसार, जब भी किसी चर के मूल्य को एक (1) के साथ AND ऑपरेशन के द्वारा तार्किक गुणनफल किया जायेगा तो उसका मान उस चर मूल्य के बराबर होगा।

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी
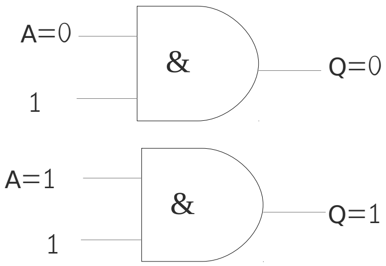	

A	1	Q
0	1	0
1	1	1

बूलीय नियम : A.1 = 1

नियम-5 : A+A = A

इस नियम के अनुसार, जब किसी चर के मान को खुद के साथ ही OR ऑपरेशन के द्वारा जोड़ा जाता है तब उसका मान उसके चर के मूल्य के बराबर ही होता है।

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी
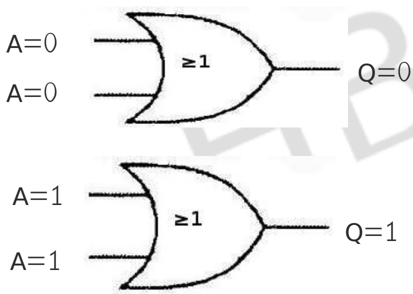	

A	A	Q
0	0	0
1	1	1

बूलीय नियम : A+A = A

नियम-6 : A+Ā = 1

इस नियम के अनुसार, जब किसी चर के मूल्य का मान उसी चर के कॉम्पलिमेंट मूल्य के साथ OR ऑपरेशन के द्वारा जोड़ा जाता है तो आउटपुट का मान एक के बराबर होता है।

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी

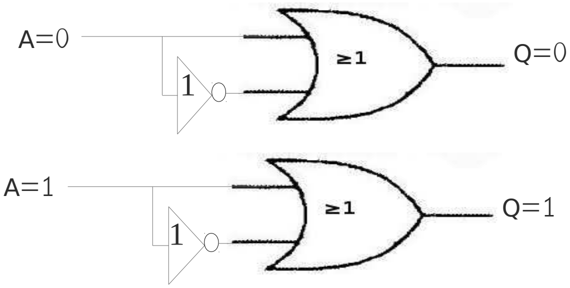

A	Ā	Q
0	1	1
1	0	1

बूलीय नियम : $A+\bar{A} = 1$

नियम-7 : A.A = A

इस नियम के अनुसार, जब किसी चर के मान को स्वयं के साथ ही AND ऑपरेशन के द्वारा तार्किक गुणनफल करते है तब उसका मान उसके चर मूल्य के बराबर ही होता है।

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी

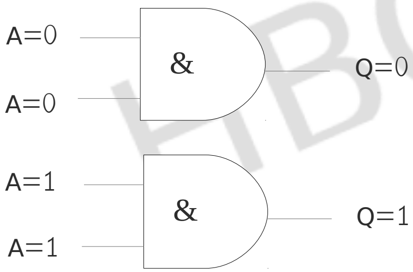

A	A	Q
0	0	0
1	1	1

बूलीय नियम : $A.A = A$

HBCSE

नियम-8 : A.Ā = 0

इस नियम के अनुसार, जब किसी चर के मान का खुद के कॉंप्लिमेंट मूल्य के साथ ही AND ऑपरेशन के द्वारा तार्किक गुणनफल होता है तब आउटपुट हमेशा शून्य ही होता है।

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी

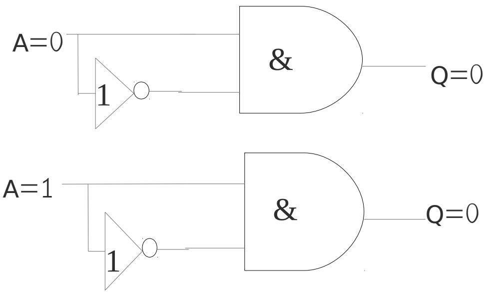

A	Ā	Q
0	1	0
1	0	0

बूलीय नियम : $A.\bar{A} = 0$

नियम-9 : $\bar{\bar{a}}$ =a

इस नियम के अनुसार, जब किसी चर के मान को दो बार NOT परिपथ में प्रवेश कराया जाए तो आउटपुट हमेशा चर के बराबर होता है।

संकेत (Symbol)	सत्य सारिणी

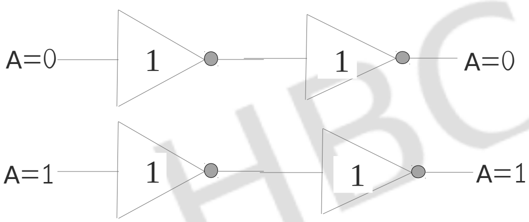

A	Ā	Q
0	1	0
1	0	1

बूलीय नियम : $\bar{\bar{a}}$ =a

HBCSE

नियम-10 : कम्यूटेटिव नियम (Commutative Law)-

इस नियम के अनुसार, चर के लिखे जाने का क्रम उसके परिणामों पर नहीं पड़ता है। नीचे लिखी सत्य सारिणी से यह सिद्ध हो जाता है। दो चर (variables) के मूल्यों को उसके AND/OR ऑपरेशन के लिए निम्न प्रकार से लिखा जाता है-

A) A+B = B+A

B) A.B = B.A

सत्य सारिणी					
A	B	A+B	B+A	A.B	B.A
0	0	0	0	0	0
0	1	1	1	0	0
1	0	1	1	0	0
1	1	1	1	1	1

नियम-11 : एसोसिएटिव नियम (Associative Law)

इस नियम के अनुसार, जब दो या दो से अधिक चरों (variable) को AND/OR ऑपरेशन से जोड़ा जाता है तो उन चरों के समूहों के क्रम का कोई प्रभाव उसके परिणामों पर नहीं होता है। एसोसिएटिव नियम तीन चरों (variable) के मूल्यों को उसके AND/OR ऑपरेशन के लिए निम्नप्रकार से लिखा जाता है-

A) A+(B+C) = (A+B)+C

B) A(BC) = (AB)C

सत्य सारिणी										
A	B	C	B+C	A+B	A+(B+C)	(A+B)+C	BC	AB	A(BC)	(AB)C
0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
0	0	1	1	0	1	1	0	0	0	0
0	1	0	1	1	1	1	0	0	0	0
0	1	1	1	1	1	1	1	0	0	0
1	0	0	0	1	1	1	0	0	0	0
1	0	1	1	1	1	1	0	0	0	0
1	1	0	1	1	1	1	0	1	0	0
1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1

HBCSE

बूलीय बीजगणित का उपयोग

जहाँ तक बूलीय बीजगणित के उपयोग का सवाल है, हम कह सकते हैं कि इसका सबसे अधिक उपयोग डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक परिपथों के डिजाइन में होता है। इसका उपयोग कम्प्यूटर के क्षेत्र के अतिरिक्त आधुनिक विडियो कार्ड में, डिजिटल ऑडियो, डिजिटल फोटोग्राफी और जो हम गूगल (google) और याहू (Yahoo) की वेबसाइटों पर शब्दों (की वर्ड) पर आधारित खोज करते हैं, इन सभी में बूलीय बीजगणित का उपयोग होता है।

NAND परिपथ जो NOT व AND परिपथ से मिलकर बना होता है। जब इसके सभी इनपुट का मान एक होता है तो आउटपुट शून्य होता है। इसी गुण को आधार मानकर इसके किसी एक इनपुट को अक्रियाशील (अर्थात् शून्य) करके इस परिपथ को क्रियाशील कर सकते है, इस युक्ति का उपयोग रासायनिक उद्योगों में किया जाता है। मालगोदामों (वेयरहाऊस) में रासायनिक मिश्रणों के रखने पर उनमें से जहरीली (Toxic) गैसें निकलती है। इन गैसों को बाहर निकालने व वातावरण में मिश्रित होने के लिए पंखों (exhaust fans) का उपयोग किया जाता है। नीचे दिए गए चित्र में तीन पंखें लगे हैं, जिनका आउटपुट NAND परिपथ के इनपुट के रूप में और NAND परिपथ का आउटपुट अलार्म से जुड़ा

होता है। तीनों पंखों के काम करने की अवस्था में इनका मान 111 होगा और आउटपुट शून्य अर्थात् अलार्म नहीं बजेगा। अगर इन पंखों में से कोई भी पंखा खराब हो जाता है तो अलार्म बज उठेगा। इसे सत्य सारिणी से भी समझा जा सकता है।

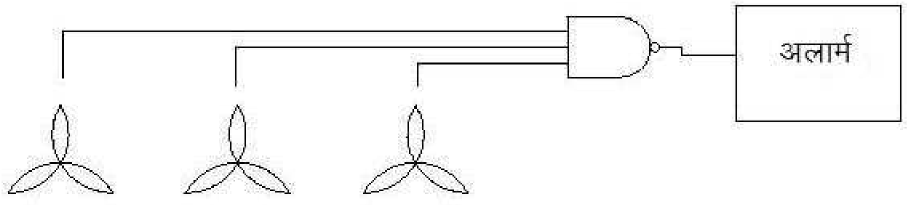

चित्र: फैन फेलियर डीटेक्शन सिस्टम पर आधारित NAND परिपथ

सत्य सारिणी			
A	B	C	अलार्म
0	0	0	1
0	0	1	1
0	1	0	1
0	1	1	1
1	0	0	1
1	0	1	1
1	1	0	1
1	1	1	0

HBCSE

इसी तरह NOR परिपथ जो NOT व OR परिपथ से मिलकर बना होता है। जब इसके सभी इनपुट का मान शून्य होता है तो आउटपुट का मान एक होता है। इस परिपथ का उपयोग पूरी तरह से ऑटोमैटिक वॉशिंग मशीन में किया जाता है। वॉशिंग मशीन में तीन सेंसर लगे होते है जिनका कार्य होता है- वॉशिंग मशीन के ढक्कन का खुला होना, टब में पानी का न्यूनतम स्तर तक भरा होना और कपड़ों व पानी के भार को जाँचना। यदि मशीन का ढ़क्कन खुला है और पानी अपने न्यूनतम स्तर से नीचे है या अधिकतम स्तर से ऊपर है तो सेंसर का मान एक होगा। इन तीनों सेंसर का आउटपुट NOR परिपथ से जुड़ा होता है। सामान्य अवस्था में जब तीनों सेंसर का आउटपुट शून्य होता है तो परिपथ का आउटपुट एक होगा अर्थात् मशीन का स्विच ऑन रहेगा। यदि तीनों सेंसर में से कोई भी सेंसर फेल हो जाता है तो परिपथ का आउटपुट शून्य होगा, जिससे मशीन का स्विच ऑफ हो जाएगा और मशीन बंद हो जाएगी। इसे सत्य सारिणी से भी

समझा जा सकता है।

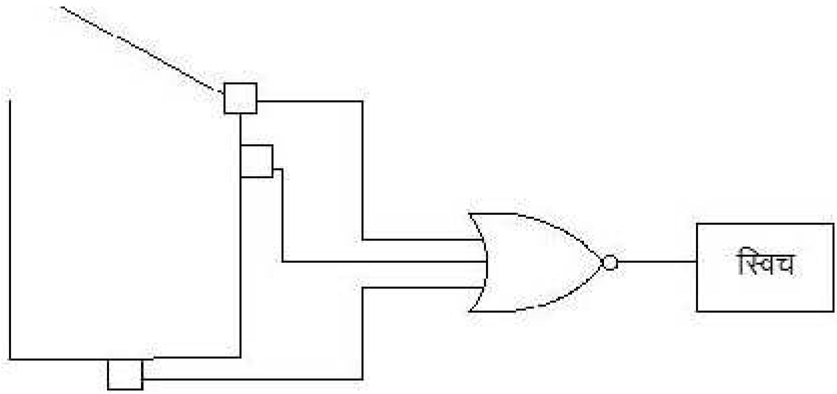

चित्र: वॉशिंग मशीन नियंत्रक पर आधारित NOR परिपथ

सत्य सारिणी			
A	B	C	स्विच
0	0	0	1
0	0	1	0
0	1	0	0
0	1	1	0
1	0	0	0
1	0	1	0
1	1	0	0
1	1	1	0

HBCSE

आपने एक विशेष प्रकार के नंबरों पर आधारित ताले देखे होंगे जिनमें नंबरों का एक विशेष क्रम मिलाने पर ताले खुलते या बंद होते है। ठीक इसी तरह के डिजिटल ताले (digital combination lock) होते हैं जिनमें NOR व AND गेट का उपयोग किया होता है। इसे बिना किसी चाबी के कोड द्वारा खोला जाता है और इस कोड को परिवर्तित भी किया जा सकता है। इस नवाचारी (इनोवेटिव) ताले को होटेल, स्कूल, ऑफिस, वेयरहाउस, नर्सरी और कार होम्स में उपयोग किया जाता है।

रेफ्रिजरेटर में एक ऑटोमेटेड डिवाइस लगी होती है जिसमें एक बर्जर/अलार्म लगा होता है। जब रेफ्रिजरेटर का दरवाजा खुला रह जाए या अंदर का तापमान गर्म हो जाए तो अलार्म बज उठता है। इस डिवाइस में भी बूलीय

बीजगणित का उपयोग तार्किक परिपथों द्वारा होता है।

यदि आप टीवी देखते हुए दरवाजे की घंटी की आवाज नहीं सुन पाते हैं तो आजकल एक इलेक्ट्रॉनिक डोर-बेल आती है जिसमें परिनालिका (solinoid) स्प्रिंग की भांति बनाए गए तार की संरचना होती है जिसमें से विधुत धारा प्रवाहित होने पर चुम्बकीय क्षेत्र निर्मित होता है और घंटी के बटन दबते ही आवाज के साथ इसमें लगा लैप भी जल उठता है। ऐसे अनगिनत उदाहरण है जिनमें तार्किक परिपथों के डिजाइनों में बूलीय बीजगणित का उपयोग किया जाता है।

ऐडर, इनकोडर और डिकोडर जैसे परिपथों का उपयोग कम्प्यूटर के क्षेत्र में होता है। ऐडर का कार्य है अंकों को जोड़ना। लेकिन ये अंक, डेसिमल अंक (0-9) नहीं बल्कि बाइनरी अंक (0,1) ही होने चाहिए। डेसीमल अंकों को बाइनरी अंकों में परिवर्तित करने के लिए इनकोडर का और बाइनरी अंकों को वापस डेसीमल अंकों में बदलने के लिए डिकोडर का प्रयोग होता है। इन सभी में AND, OR, NOT गेट का उपयोग होता है।

इंटरनेट पर गूगल (google) और याहू (yahoo) जैसे खोज इंजन से जब हम एक खोज में दो शब्दों को उपयोग करते है तो वे "और/AND" ऑपरेशन से जुड़े होते हैं। जैसे- "जुपिटर"."चांद" और जब हम अपनी खोज में एक या एक से अधिक शब्दों का उपयोग करते है तो वे "या/OR" ऑपरेशन से जुड़े होते हैं। बूलीय बीजगणित का उपयोग गूगल, याहू के अतिरिक्त ऑलटा वीसटा (Alta Vista), हॉट बोट (Hot Bot), वाइकोस प्रो (Uycos Pro) जैसे खोज इंजन भी करते हैं।

डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक परिपथों के डिजाईन में karnaugh-map (K-map) की सहायता से बूलीय कथनों का सरलीकरण करके, परिपथों में उपयोग होने वाले तार्किक परिपथों (Logic Gates) की संख्या कम कर सकते हैं और उन पर काफी संख्या में सूचनाओं को सुरक्षित रख सकते हैं। इस तरह यह सिद्ध होता है कि बूलीय बीजगणित इलेक्ट्रॉनिक परिपथों के डिजाइन का आधार है।

❖ प्रोग्रामर
एन.सी.आई.डी.
इग्नू, दिल्ली-96
ई-मेल : poonamtrikha@ignou.ac.in

शून्य की संकल्पना और भारत

◆ डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी

सोचिए, किसी परीक्षा में शून्य अंक मिलने पर एक परीक्षार्थी की क्या मनोदशा होती है। यह शून्य उस परीक्षार्थी की योग्यता पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है। क्रिकेट मैच में शून्य रन पर आउट होने वाले बल्लेबाज की हालत क्या ही देखने लायक होती है। टेनिस तथा बैडमिंटन में 'लव' स्कोर शून्य का द्योतक होता है। यह अलग बात है कि कोई खिलाड़ी शून्य को प्यार नहीं करता। आम बोलचाल में हम कहते हैं कि वह तो 'हीरो' से 'जीरो' बन गया। अतः प्रत्यक्ष रूप से लगता तो ऐसा ही है कि शून्य एक संपूर्ण अनुपस्थिति का सूचक है। यह कुछ भी नहीं है, यह एकदम निरर्थक एवं खाली है। लेकिन क्या शून्य के बिना कोई आधुनिक जीवन की कल्पना भी कर सकता है!

बीजगणित के एक सरल से युगपत समीकरण को शून्य को लाए बिना हल कर पाना संभव नहीं। किसी पिंड का तापमान या किसी वाहन की गति जानना हो या कोई भी मापन करना हो तो उसके लिए शून्य को संदर्भ-बिंदु के रूप में लिया जाता है। यहाँ तक कि महाद्रुत गति से परिकलन करने वाले सुपरकम्प्यूटर को भी कार्य करने के लिए शून्य की आवश्यकता होती है।

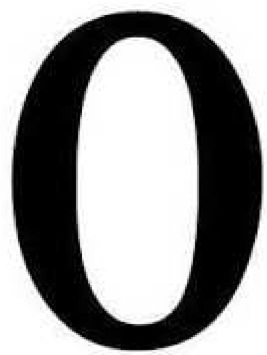

शून्य

सचमुच शून्य का आविष्कार मानव सभ्यता का एक महान आविष्कार है। शून्य की संकल्पना ने ही गणित को पूर्णता प्रदान दी। शून्य ने गणित की उपयोगिता, सूक्ष्मता एवं उसके सौंदर्य को महिमामंडित करने में अपना महती योगदान दिया। वास्तव में शून्य ही विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाले समग्र विकास के लिए जिम्मेदार है। इस तरह शून्य की संकल्पना न केवल गणित बल्कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के हर क्षेत्र में भी बहुत महत्वपूर्ण है।

अब यह सहज प्रश्न उठता है कि शून्य का आविष्कार, कहां, कब तथा किसने किया। यह एक निर्विवाद सत्य है कि शून्य का आविष्कार भारत में ही हुआ। लेकिन यह ज्ञात नहीं है कि इसका आविष्कार कब तथा किसने कया। बहुधा लोग भ्रमवश आर्यभट्ट को शून्य का आविष्कारक मान लेते हैं। कुछ विद्वान ऋग्वेद के द्वितीय मंडल के ऋषि गृत्सनंद को भी शून्य के आविष्कार का श्रेय देते हैं। लेकिन इनमें से किसी के भी सटीक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

ऐसा कहना शायद ठीक नहीं होगा कि दुनिया के दूसरे देशों के विद्वानों एवं गणितज्ञों ने शून्य के बारे में सोचा ही नहीं था। लेकिन वे शून्य का इस्तेमाल संकेत के रूप में नहीं करते थे। मध्य अमेरिका में निवास करने वाले मय सभ्यता के लोगों को कैलेण्डर बनाने के लिए लगभग 350 ई. में शून्य की आवश्यकता पड़ी थी। लेकिन उनकी गणितीय गणना में शून्य का कोई अस्तित्व नहीं था। मय सभ्यता के लोग शून्य का व्यवहार अवश्य करते थे लेकिन इसके लिए उनके पास कोई संकेत नहीं था। व्यवहार और बोलचाल की भाषा में अवश्य शून्य का इस्तेमाल होता था। जैसे अगर किसी के पास चार संतरे है और उसने चारो संतरे खा लिए तो उसके पास कोई संतरा नहीं बचा। इसको मय सभ्यता के लोग इस प्रकार व्यक्त करते थे कि उनके पास शून्य संतरा बचा। इस प्रकार उनकी बोलचाल आदि में शून्य की संकल्पना मौजूद थी।

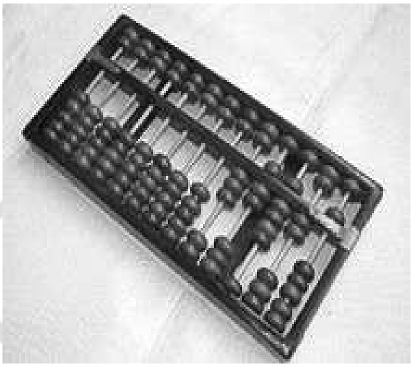

गिनतारा

कुछ देशों के लोग जैसे कि बेबीलोनवासी शून्य का प्रयोग खाली या रिक्त स्थान के लिए भी करते थे। बेबीलोनवासियों ने साठ पर आधारित स्थानमान पद्धति का विकास भी किया था लेकिन उसमें शून्य के चिन्ह यानी संकेत का प्रयोग नहीं था। दरअसल बेबीलोन में गणनाओं के लिए गिनतारा यानी एबेकस नामक युक्ति का इस्तेमाल होता था। इसमें एक फ्रेम के साथ जुड़ी ऊर्ध्वाधर छड़ें होती थीं। एक क्षैतिज छड़ फ्रेम को दो हिस्सों में बांटती थी। ऊपरी हिस्से में हर छड़ के साथ दो मनके जबकि निचले हिस्से में पांच मनके इकाइयों को सूचित करते थे। गिनतारे का इस्तेमाल जोड़, घटा, गुणा और भाग की गणितीय संक्रियाओं के लिए किया जाता था।

गिनतारे में शून्य को प्रदर्शित करने के लिए मनकों के बीच रिक्त स्थान छोड़ दिया जाता था। जैसे ऊपर के दोनों मनकों के नीचे का रिक्त स्थान तथा नीचे के पांच मनकों के ऊपर का रिक्त स्थान शून्य का द्योतक था। इस तरह बेबीलोनवासी शून्य के बारे में जानते थे और गिनतारे पर उसका इस्तेमाल करते थ। लेकिन शून्य को व्यक्त करने का उनके पास कोई संकेत नहीं था। बेबीलोन के अलावा चीन और जापान में भी गिनतारे का इस्तेमाल होता था। बल्कि इन देशों में तो आज भी गिनतारा बहुत लोकप्रिय है।

भारत में शून्य के लिए 'शून्य' शब्द के अलावा 'ख', 'आकाश', 'गगन', 'नभ' और 'बिंदु' जैसे शब्दों का भी इस्तेमाल किया जाता था। प्राचीन काल में शून्य को वृत्त के केंद्र में एक बिंदु के रूप में या खाली बिंदु के रूप में भी दर्शाया जाता था।

ऐसा कहा जाता है कि सबसे पहले 450 ईसा पूर्व में पाणिनि की अष्टाध्यायी में शून्य का प्रयोग हुआ था। लेकिन यह गणितीय दृष्टि से हुआ था। पाणिनि के व्याकरण के बाद लगभग 200 ईसा पूर्व में छंदसूत्र के प्रणेता आचार्य पिंगल ने शून्य का प्रयोग किया। गायत्री छंद के बारे में उन्होंने संस्कृत में जो लिखा, उसका अर्थ है:'गायत्री छंद के एक पद में 6 अक्षर होते हैं। जब इस अंक 6 का आधा किया जाता है तब 3 बचता है। इस 3 में से 1 निकाल देने और उसका आधा करने पर 1 बचता है। इसमें से 1 निकाल देने पर शून्य मिलता है।' इस तरह पिंगलाचार्य के छंद सूत्र में न केवल शून्य को प्राप्त करके दिखाया गया है बल्कि यह भी दिखाया गया है कि किसी संख्या में से उसी संख्या को घटाने पर शून्य बचता है। लेकिन पिंगलाचार्य का कार्य छंदों के नियम बनाने से जुड़ा था। उनके कार्य में 0 के अलावा 1 भी आया है। गणितीय दृष्टि से देखने पर पिंगलाचार्य के कार्य को 0 और 1 पर आधारित द्विअंकीय यानी बाइनरी गणित की झलक मिलती है। लेकिन छंदों से जुड़ा होने के कारण शून्य की खोज का गणितीय श्रेय पिंगल को नहीं दिया जाता।

मोहनजोदड़ों और हड़प्पा के काल, जो करीब ईसा पूर्व 3000 साल पहले का माना जाता है, से लंबाई मापने के परिशुद्ध पैमाने मिले हैं तथा तराजू के तोल के जो माप मिले हैं वे दाशमिक पद्धति पर आधारित हैं। इसका निष्कर्ष विद्वानों ने यह निकाला है कि उस काल में संभवतया लोग शून्य तथा दाशमिक स्थानमान पद्धति का उपयोग करते थे। लेकिन यह और भी गहन शोध का विषय है क्योंकि अभी अधिकांश विद्वानों के बीच इस बारे में मतैक्य नहीं है।

HBCSE

भारत में शून्य के आविष्कार से संबंधित तथ्य का विवरण बक्षाली पांडुलिपि (जिसे बक्षाली पांडुलिपि भी कहते हैं) से प्राप्त होता है। इस पांडुलिपि की खोज बक्षाली गांव के पास के टीले को खोदते समय एक किसान ने 1881 ई. में की थी। इस पांडुलिपि में भोजपत्र में लिखे गए 70 पत्र यानी पन्ने थे जिनमें कई अत्यंत जीर्ण अवस्था में थे। सबसे पहले डॉ. हार्नले ने ही इस पांडुलिपि के बारे में विवरण प्रकाशित किया था। बाद में जी.आर.काए नामक विद्वान ने तीन खंडों में इस पांडुलिपि को प्रकाशित किया। यह पांडुलिपि मूल पुस्तक की प्रतिलिपि है। इसकी भाषा के आधार पर अधिकांश विद्वान इसे ईसा पूर्व 200 से लेकर ईसा पश्चात् 300 के बीच का मानते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि बक्षाली पांडुलिपि में शून्ययुक्त दाशमिक स्थानमान अंक पद्धति के अंक संकेतों का इस्तेमाल हुआ है।

आर्यभट्ट

प्राचीन काल में गणित के ग्रंथ संस्कृत के श्लोकों के रूप में लिखे जाते थे। ऐसे पहले गणितज्ञ, जिनके बारे में जानकारी मिलती है, आर्यभट्ट थे। वह पांचवी सदी के गणितज्ञ थे। उनके द्वारा रचित

ग्रंथ का नाम आर्यभटीय था। यह ग्रंथ चार भागों या पादों में विभक्त है- दशगीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद और गोलपाद। इस ग्रंथ में कुल 121 श्लोक हैं। 'गणितपाद' में 33 श्लोक हैं। इसके दूसरे श्लोक में आर्यभट्ट ने लिखा है 'स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात्' जिसका अर्थ है कि प्रत्येक स्थान अपने पिछले स्थान से दस गुना है। इससे साफ पता चलता है कि आर्यभट्ट शून्ययुक्त दाशमिक स्थानमान अंक पद्धति से भली-भांति परिचित थे। लेकिन इसका कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि वह ही शून्य के मूल आविष्कारक थे। बक्षाली पांडुलिपि को आधार मानकर कुछ विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आर्यभट्ट से कम से कम चार-पांच सौ साल पहले शून्य पर आधारित स्थानमान अंक पद्धति का आविष्कार हो चुका था।

शून्य के व्यवहार के गणितीय नियमों का भी गणित में बड़ा महत्व है। सबसे पहले छठवीं शताब्दी के भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने ही अपने ग्रंथ ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत में शून्य के व्यवहार संबंधी नियम दिए। ब्रह्मगुप्त ने बताया कि जब किसी संख्या को उसी संख्या से घटाया जाता है तो शून्य प्राप्त होता है। किसी धनात्मक अथवा ऋणात्मक संख्या में शून्य को जोड़ने या उससे शून्य को घटाने पर उस संख्या का मान नहीं बदलता है और वही संख्या हमें प्राप्त होती है। ब्रह्मगुप्त ने यह भी बताया कि शून्य को शून्य में जोड़ने या उससे घटाने पर भी शून्य प्राप्त होता है। शून्य को शून्य से गुणा करने पर भी शून्य ही प्राप्त होता है। लेकिन शून्य को शून्य से भाग देने पर जो फल आता है ब्रह्मगुप्त उसे समझ नहीं पाए। इसलिए उनका यह कथन सही नहीं था कि शून्य को शून्य से भाग देने पर शून्य प्राप्त होता है।

ब्रह्मगुप्त के बाद नौंवी सदी में महावीर नामक एक श्रेष्ठ जैन गणितज्ञ ने भी शून्य के व्यवहार संबंधी नियम दिए। लेकिन उनका यह कथन कि किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर हमें वही संख्या प्राप्त होती है, सही नहीं था। इस बारे में सही नियम बारहवीं सदी के गणितज्ञ भास्कर-द्वितीय ने दिया। उन्होंने बताया कि किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर हमें अनंत राशि यानी जिसका कोई अंत नहीं, वह राशि प्राप्त होती है। भास्कर-द्वितीय ने तो अनंत के बारे में भी नियम दिए। उन्होंने बताया कि अनंत में बहुत बड़ी संख्या को जोड़ने अथवा उससे घटाने पर परिणाम अनंत ही रहता है। इसे समझाते हुए उन्होंने कहा कि जिस प्रकार प्रलय के समय अनंत ईश्वर में सभी के समा जाने और सृष्टि के समय उनकी उत्पत्ति होने पर अनंत ईश्वर को कोई अंतर नहीं पड़ता है।

लेकिन शून्य को शून्य से भाग देने पर क्या परिणाम प्राप्त होगा, इसका उत्तर हमारे प्रचीन भारतीय गणितज्ञ नहीं दे पाए। महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन ने अपने गणित के अध्यापक से यही प्रश्न पूछा था जिसका उत्तर उनके अध्यापक नहीं दे पाए थे। असल में शून्य को शून्य से भाग देने का परिणाम अनिर्धारित होता है। यह शून्य हो सकता है, परिमित संख्या अथवा अनंत संख्या,

HBCSE

कुछ भी हो सकता है।

आज शून्य की गणितीय एवं वैज्ञानिक क्षमता किसी से भी छिपी नहीं है। शून्य के बगैर वैज्ञानिक मापन की हम कल्पना तक नहीं कर सकते। कम्प्यूटर भी द्विआधारी अंक पद्धति यानी बाइनरी नंबर सिस्टम पर ही कार्य करते हैं, जिसमें 0 एवं 1 का प्रयोग किया जाता है। हमारी समस्त वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी से जुड़ी उपलब्धियों में शून्य की ही अनंत महत्ता है। वेदांत और दर्शनशास्त्र में भी शून्य गूढ़ रूप से रचा-बसा है।

सुप्रसिद्ध गणितज्ञ जॉर्ज हॉलस्टीड ने भारत द्वारा शून्य के आविष्कार के बारे में जो लिखा है वह गौर करने योग्य है। वह कहते हैं कि शून्य के आविष्कार और इसके महत्व की जितनी भी स्तुति की जाए, कम है। कुछ नहीं वाले इस शून्य को न केवल एक स्थान, नाम, चिन्ह या संकेत प्रदान करना बल्कि इसमें उपयोगी शक्ति भरना, उस भारतीय मस्तिष्क की एक विशेषता है जिसने इसे जन्म दिया है। गणित के किसी भी अन्य आविष्कार ने मानव बुद्धि एवं सामर्थ्य को इतना अधिक बलशाली नहीं बनाया है।

सचमुच गणित के इतिहास में शून्य की संकल्पना और उसके व्यवहार के गणितीय नियमों को देने के लिए भारतीय गणितज्ञों के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

❖ एसोशिएट प्रोफेसर, भौतिकी
देशबंधु कॉलेज, कालकाजी
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
43, देशबंधु सोसायटी
15, पटपड़गंज
दिल्ली-110092

HBCSE

स्टेम कोशिका

◆ मनीष मोहन गोरे

सारांश
स्टेम कोशिका (स्टेम सेल) से जुड़े अनुसंधानों ने आज पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। इस अनुसंधान को लेकर विज्ञान जगत में अनगिनत संभावनाओं की उम्मीद लगाई जा रही है जिनमें से अधिकतर मानव स्वास्थ्य से जुड़ी बीमारियों के निदान से संबंधित हैं। वर्ष 2011 के मेडिसिन के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले दो वैज्ञानिकों जॉन गर्डन (ब्रिटेन) और शिन्या यामांका (जापान) ने इन्हीं स्टेम सेल पर महत्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं जिसके लिए उन्हें संयुक्त रूप से यह सम्मान दिया गया है। इन्होंने अपने शोध के द्वारा यह साबित किया है कि शरीर की परिपक्व कोशिकाओं को पुनः स्टेम कोशिकाओं में परिवर्तित किया जा सकता है जिसे कि अब तक नामुमकिन समझा जा रहा था।

वर्ष 1908 में रूसी वैज्ञानिक एलेक्जेंडर माक्सिमोव (1874-1928) ने 'स्टेम कोशिका' शब्द का पहली बार प्रयोग किया था। इसके बाद इस कोशिका के स्वरूप, प्रकार और महत्व पर अनुसंधान आरंभ हो गया। आज इस बात का खुलासा हो चुका है कि ये स्टेम कोशिकाएं दरअसल जैविक कोशिकाएं होती हैं और बहुकोशिकीय जीवों में पायी जाती हैं। इन कोशिकाओं का विभाजन (सूत्री विभाजन-Mitosis) होता है और ये अनेक विशिष्ट कोशिकाओं में विभेदित हो जाती हैं। स्तनधारियों में स्टेम कोशिका दो प्रकार की होती हैं : भ्रूणीय स्टेम कोशिका और वयस्क स्टेम कोशिका। एक विकसित होते भ्रूण में स्टेम कोशिका लगभग सभी प्रकार की विशिष्ट कोशिकाओं में विभेदित हो सकती है। स्टेम कोशिका मस्तिष्क, तंत्रिका, हृदय और अग्न्याशय जैसी कोशिकाओं का निर्माण करती हैं। मनुष्यों में वयस्क स्टेम कोशिका के मुख्यतः तीन स्रोत (अस्थि मज्जा, वसाकाय ऊतक और रुधिर) होते हैं। जन्म के तुरंत बाद अम्बिलिकल कार्ड के रुधिर से भी स्टेम कोशिका को प्राप्त किया जा सकता है। वैज्ञानिक शोध के बाद यह सिद्ध हो चुका है कि शरीर के सभी ऊतकों और अंगों के निर्माण के लिए स्टेम कोशिका आरंभिक आधारभूत पदार्थ उपलब्ध कराती है। वैज्ञानिकों ने 1998 में सर्वप्रथम मनुष्य के भ्रूण से स्टेम कोशिका को निकाला था।

स्टेम कोशिका की कुछ खास विशेषताएं निम्न प्रकार हैं :-

1. स्टेम कोशिकाएं गंभीर बीमारी के कारण क्षतिग्रस्त या नष्ट हो चुकी कोशिकाओं या ऊतकों को स्थानांतरित करने की क्षमता रखती हैं।
2. ये कोशिकाएं स्वयं को लंबे समय के लिए द्विगुणित कर सकती हैं।
3. इन कोशिकाओं की मदद से असाध्य रोगों (जैसे पार्किन्सन, अलजाईमर, हृदय रोग, मेरुरज्जु में चोट आदि) का इलाज संभव है।

HBCSE

जहां एक तरफ, स्टेम कोशिका से अनेक रोगों के इलाज की उम्मीदें जगी हैं वहीं दूसरी ओर इन कोशिकाओं को हासिल करने के लिए मानव सहित अन्य जीवों के भ्रूण के उपयोग को अनैतिक माना जा रहा है। इस लेख में स्टेम कोशिका के स्वरूप, इसकी उत्पत्ति, प्रकार और विशेषताओं का वर्णन किया गया है। इसके अलावा इसमें स्टेम कोशिका के चिकित्सा क्षेत्र में महत्व की दृष्टि से भी चर्चा की गई है।

प्रस्तावना

स्टेम कोशिकाएं सभी बहुकोशिकीय जीवों में पाई जाती हैं और इन कोशिकाओं का विभाजन सूत्री कोशिका विभाजन (Mitosis) द्वारा होता है। विभाजन के बाद इन कोशिकाओं का जब ऊतक और अंगों में विभेदन होता है तब ये विभिन्न विशिष्ट कोशिकाओं/ऊतकों में बदल जाती हैं। स्तनधारियों (mammals) में स्टेम कोशिका के दो मुख्य प्रकार होते हैं : भ्रूण स्टेम कोशिका (embryonic stem cells) और वयस्क स्टेम कोशिका (adult stem cell)। भ्रूण स्टेम कोशिकाओं का निर्माण भ्रूण के ब्लास्टोसिस्ट अवस्था के कोशिका समूह से होता है जब कि वयस्क स्टेम कोशिकाएं अनेक ऊतकों में पाई जाती हैं। किसी विकसित हो रहे भ्रूण में ये स्टेम कोशिकाएं सभी विशिष्ट कोशिकाओं (इन्हें प्लूरीपोटेंट/बहुशक्ति कोशिकाएं कहते हैं) में विभेदित हो जाती हैं। दरअसल ये स्टेम कोशिकाएं वे आधारभूत कोशिकाएं होती हैं जिनसे अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण कोशिकाओं/ऊतकों (मस्तिष्क, तंत्रिका, अग्न्याशय कोशिकाएं आदि) का निर्माण होता है। इस प्रकार हर एक ऊतक और अंग के विकास के लिए स्टेम कोशिकाएं आरंभिक पदार्थ (starting materials) की भूमिका निभाती हैं।

स्टेम कोशिकाओं के स्रोत, प्रकार और महत्व

अंडाणु (egg) और शुक्राणु (sperm) के परस्पर संयोग से भ्रूण (embryo) बनता है। भ्रूण के विकास की तीन प्रमुख अवस्थाएं होती हैं- मारुला, ब्लास्टुला और गैस्ट्रुला। भ्रूण के विकास के 4-5 दिनों में मारुला अवस्था आती है और भ्रूण के इसी चरण में भ्रूण स्टेम कोशिकाओं का निर्माण होता है। भ्रूण के विकास के 11वें दिन के बाद कोशिका का विभेदन शुरू हो जाता है अर्थात भ्रूण अलग-अलग प्रकार के ऊतकों (कोशिकाओं का विशिष्ट समूह जो किसी विशिष्ट कार्य को संपन्न करता है) में विभेदित होने लगता है।

भ्रूण स्टेम कोशिका का प्रमुख स्रोत भ्रूण होता है जबकि वयस्क स्टेम कोशिका के एक से अधिक स्रोत जीव शरीर में होते हैं। अस्थिमज्जा, वसाकाय ऊतक (लिपिड कोशिकाएं) और रक्त, वयस्क स्टेम कोशिकाओं के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। जन्म के तुरंत बाद गर्भनाल (अम्बिलिकल कार्ड) के रक्त से भी स्टेम कोशिकाओं को प्राप्त किया जा सकता है।

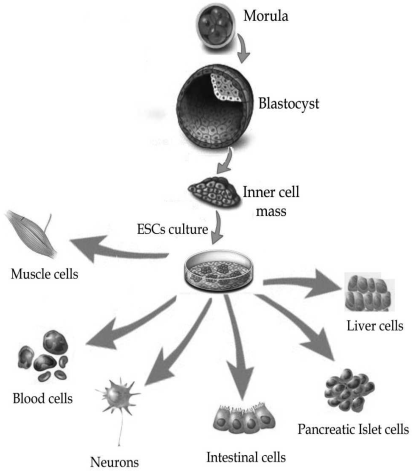

स्टेम कोशिकाओं का विभेदन

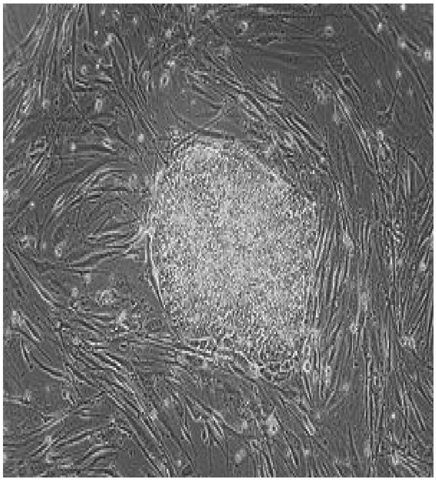

स्टेम कोशिका

स्टेम कोशिकाएं मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं: भ्रूणीय स्टेम (embryonic stem-ES) कोशिका और वयस्क स्टेम (adult stem-AS) कोशिका। भ्रूणीय स्टेम कोशिका को प्लूरीपोटेंट भी कहते हैं। जैसा कि पहले बताया गया है कि इन स्टेम कोशिकाओं का विकास भ्रूण की आरंभिक मारुला अवस्था के ब्लास्टोसिस्ट चरण से होता है। इस चरण के दौरान भ्रूण केवल 50-150 कोशिकाओं का होता है। भ्रूण के प्राथमिक जर्म लेयर तीन प्रकार के होते हैं- एक्टोडर्म (ectoderm), एंडोडर्म (endoderm) और मिसोडर्म (mesoderm)। एक्टोडर्म से जीव शरीर की त्वचा, वाह्य परतों और तंत्रिका तंत्र का विकास होता है; एंडोडर्म से आहारनाल और फेफड़ों का तथा मिसोडर्म से मांसपेशियों, हड्डियों, रक्त आदि का विकास होता है। जीवों के शरीर के निर्माण में जरूरी इन तीनों जर्म लेयर के विकास में ये स्टेम कोशिका आवश्यक आधारभूत तत्वों की पूर्ति करता है।

HBCSE

वयस्क स्टेम कोशिका, स्टेम कोशिकाओं का दूसरा मुख्य स्वरूप है और इन्हें सोमेटिक तथा जर्मलाईन स्टेम कोशिका भी कहते हैं। ये स्टेम कोशिका वयस्कों के अलावा बच्चों में भी पाई जाती है। अस्थि मज्जा वयस्क स्टेम कोशिका का एक समृद्ध स्रोत है और इसकी मदद से मेरुरज्जु के चोट, लीवर सिरोसिस, हृदय रोग और क्रॉनिक लिम्ब इस्केमिया जैसे गंभीर रोगों का उपचार किया जाता है। अस्थि मज्जा में स्टेम कोशिकाओं की मात्रा उम्र के साथ घटती जाती है और प्रजनन की उम्र में महिलाओं में यह स्टेम कोशिका समान उम्र के पुरुषों से अपेक्षाकृत कम होता है।

वयस्क स्टेम कोशिकाओं की मदद से अस्थिमज्जा ट्रांसप्लांट के जरिए ल्यूकेमिया और संबंधित अस्थि/रक्त कैंसर का इलाज बरसों से सफलतापूर्वक किया

जाता रहा है। यही नहीं, पशुओं के स्नायु (tendon) और अस्थिबंध (ligament) संबंधी चोटों के इलाज में भी वयस्क स्टेम कोशिकाओं का उपयोग किया जाता है। चिकित्सा के क्षेत्र में इन वयस्क स्टेम कोशिकाओं का उपयोग भ्रूणीय स्टेम कोशिकाओं के उपयोग जितना विवादस्पद नहीं है, क्योंकि वयस्क स्टेम कोशिका के लिए किसी भ्रूण को नष्ट नहीं करना पड़ता है। अमेरिकी सरकार चिकित्सा के क्षेत्र में वयस्क स्टेम कोशिकाओं पर अनुसंधान के लिए सरकारी अनुदान प्रदान करती है।

एम्नियाटिक फ्ल्यूइड से प्राप्त स्टेम कोशिकाएं भी बेहद सक्रिय होती हैं। मगर चूंकि इन कोशिकाओं को प्राप्त करने के लिए मानव भ्रूण का उपयोग करना होता है इसलिए इसको लेकर दुनिया में नैतिक बहस चल रही है।फिलहाल नैतिक प्रतिरोध की वजह से मानव भ्रूण के एम्नियाटिक फ्लुइड से प्राप्त होने वाली स्टेम कोशिकाओं के उपयोग पर प्रतिबन्ध है।

स्टेम कोशिका-चिकित्सा में संभावना

स्टेम कोशिकाओं ने अनेक असाध्य रोगों के इलाज की संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में अनुसंधानरत वैज्ञानिकों का मानना है कि स्टेम सेल थिरैपी से मनुष्यों में होने वाली अनेक जटिल बीमारियों का इलाज संभव है। वयस्क स्टेम सेल थिरैपी और अस्थिमज्जा ट्रांसप्लांट की मदद से ल्यूकेमिया रोग के इलाज को संभव बना दिया गया है। वैज्ञानिकों ने इस बात की सम्भावना जताई है कि निकट भविष्य में स्टेम सेल थिरैपी से कैंसर, पार्किन्सनस रोग, रीढ़ की हड्डी संबंधी चोट, मांसपेशियों की क्षति और एमायोट्राफिक लैटरल स्क्लेरोसिस जैसे असाध्य रोगों का इलाज किया जा सकेगा। एक संभावना यह भी जुड़ी है कि ट्रांसप्लांट किए गए स्टेम सेल में कोशिका विभाजन लगातार अनियंत्रित ढंग से होता रहा तो कहीं ये कैंसर का रुप न ले लें। इस खतरे से निपटने के लिए स्टेम सेल के उपयोग और शरीर में इसकी स्वीकार्यता को लेकर वैज्ञानिकों को अभी और अध्ययन-अनुसंधान करना होगा।

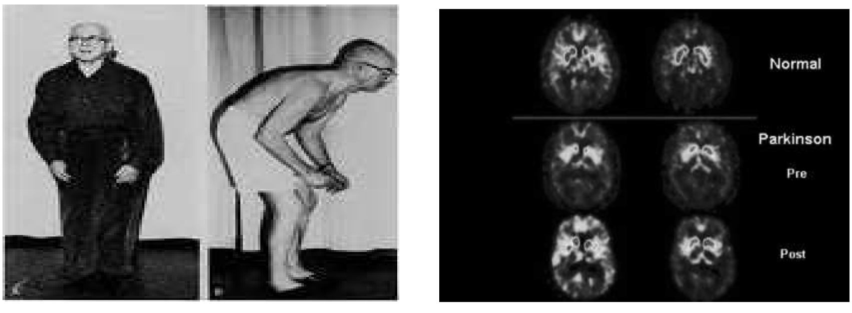

A B

चित्र 3: A पार्किन्सन रोग से पीड़ित व्यक्ति; B सामान्य और पर्किन्सन रोगी के मस्तिष्क कोशिकाओं में अंतर स्पष्ट करता चित्र

HBCSE

अल्जायिमर मरीज

ल्यूकेमिया का मरीज

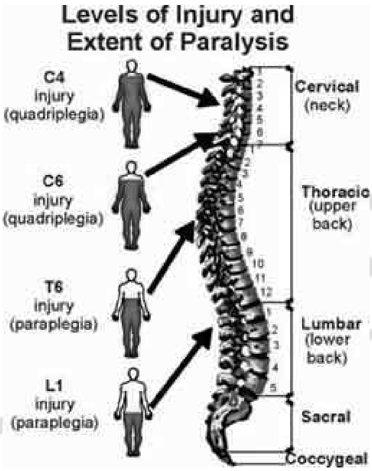

मेरुरज्जु में चोट

उपसंहार

स्टेम कोशिका से मानव जाति को अपार संभावनाओं की उम्मीद तो जगी है, परंतु वहीं दूसरी ओर इसके रोग-निदान में उपयोग को लेकर अनेक जटिलताओं के उत्पन्न होने का भी खतरा है। भ्रूण स्टेम कोशिकाओं पर अनुसंधान के पक्षधर लोगों का मत है कि ये अनुसंधान इसलिए होने चाहिए क्योंकि इसके माध्यम से जो इलाज होंगे उनसे गंभीर रोगों से पीड़ितों को छुटकारा मिलेगा। इस बात की मांग अनेक संगठनों द्वारा की जाती रही है कि "इन विट्रो" निषेचन के द्वारा अतिरिक्त भ्रूणों का सृजन करना चाहिए और संबंधित दंपत्ति की सहमति लेकर इन भ्रूणों का उपयोग अनुसंधान में होना चाहिए। यह भी सच है कि वर्तमान समाज में स्टेम कोशिका को लेकर अनेक सामाजिक और वैज्ञानिक अनिश्चितताएं, शंकाएं तथा द्वंद्व मौजूद हैं जिन्हें सरकार, वैज्ञानिकों, सामाजिक संगठनों और नागरिक समाजों के बीच परस्पर बातचीत के जरिए हल किया जा सकता है। इस तरह स्टेम कोशिका से जुड़े अनुसंधान और चिकित्सा क्षेत्र में इनके उपयोग को लेकर तभी कोई स्पष्ट विचार बन सकता है।

सन्दर्भ

1. आधुनिक जंतु विज्ञान, रमेश गुप्ता, प्रकाश पब्लिकेशंस, मुजफ्फरनगर, 1996
2. माध्यमिक वनस्पति विज्ञान, एम.पी. कोशिक, प्रकाश पब्लिकेशंस, मुजफ्फरनगर, 2000
3. Stem Cells Tapped to Replenish Organs, thescientist.com, Nov 2000. By Douglas Steinberg.
4. Gilbert, Scott F (2000). "Early Mammalian Development". Developmental Biology. Sinauer Associates.
5. Hall BK (2000) " The neural crest as a fourth germ layer and vertebrates as quadroblastic not triploblastic". Evolution and Development 2, 3-5 pmid=11256415 url=http :/onlinelibrary.wiley.com/resolve/openurl? genre=article&sid=nlm :pubmed&issn=1520-5 41x&date=2000&volume=2&issue=1&page=3

HBCSE

❖ कनिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी
विज्ञान प्रसार
(विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग)
ए-50, सेक्टर-62,
नोएडा-201309 (उ.प्र.)

भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की विकास-यात्रा

◆ राधाकांत अंथवाल

वर्ष 2012 भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम का स्वर्ण जयंती वर्ष था। 21 नवम्बर, 1963 को भारत ने एक छोटा-सा रॉकेट छोड़कर अंतरिक्ष में एक 'बड़ा' कदम रखा था। इन पचास वर्षों में भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम बहुत लंबी दूरी तय करते हुए चंद्रमा के बाद अब मंगल की ओर प्रस्थान करने को उन्मुख है। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की यह यात्रा और पहला कदम रखने से पहले की गाथा बड़ी रोचक है। तो आइए हम भी अपनी बात वहीं से शुरु करते हैं। जहां से इस यात्रा पर निकलने के विचार का प्रस्फुरण हुआ।

डॉ. विक्रम साराभाई

यह बात 4 अक्तूबर, 1957 की है। इस दिन तत्कालीन सोवियत संघ ने पहले कृत्रिम उपग्रह स्पुतनिक-1 को अंतरिक्ष में पृथ्वी की कक्षा में स्थापित कर एक नए युग की शुरुआत की थी। इस खबर को सुनते ही डॉ. विक्रम साराभाई ने कहा था, जल्दी ही हमारा देश भी अंतरिक्ष में रॉकेट भेजेगा। उस समय डॉ. साराभाई किसी सरकारी पद पर नहीं थे। वे तो अहमदाबाद स्थित भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला (फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी) में प्रोफेसर थे और साथ ही अपने पारिवारिक व्यवसाय में हाथ बंटाते थे। इस प्रयोगशाला की स्थापना सन् 1947 में डॉ. साराभाई ने ही की थी। डॉ. साराभाई ने अंतरिक्ष कार्यक्रम की योजना बनाकर 1961 में भारत सरकार को सौंपी। तब पं. जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री थे। उन्हें डॉ. साराभाई की योजना पसंद आई और उसे भारत सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया। सन् 1962 में परमाणु ऊर्जा विभाग, भारत सरकार के अंतर्गत अंतरिक्ष अनुसंधान समिति का गठन किया गया जिसे भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति (इंडियन नेशनल कमेटी फॉर स्पेस-इन्कोस्पार) नाम दिया गया। डॉ. साराभाई इस समिति के अध्यक्ष बनाए गए और समिति का मुख्यालय बनी डॉ. साराभाई की भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला।

थुम्बा में स्थित चर्च

डॉ. साराभाई को एक ऐसी जगह की तलाश थी जहां से रॉकेट को अंतरिक्ष में भेजा जा सके। वह जगह मिली केरल के तिरुअनंतपुरम से करीब 16 किलोमीटर दूर पश्चिम तट पर स्थित थुम्बा में। थुम्बा के गांवों में हजारों की संख्या में मछुआरे रह रहे थे। वहाँ एक भव्य चर्च भी था। डॉ. साराभाई चर्च के बिशप से मिले और उनसे चर्च और आसपास की जमीन को अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र बनाने के लिए देने का आग्रह किया। बिशप ने डॉ. साराभाई के आग्रह को मान लिया और इस प्रकार वह चर्च भारत के अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र की स्थली बना। थुम्बा में अंतरिक्ष कार्यक्रम शुरू करने से पहले गांवों से सभी लोगों को पास ही सुरक्षित दूरी पर नई बस्ती में बसाया गया। उनके लिए मकान, स्कूल, अस्पताल और साथ ही एक चर्च भी बनाया गया।

थुम्बा से भारत के पहले रॉकेट को छोड़ने की तैयारियां चल रही थी। इसी बीच देश के 6 युवा वैज्ञानिकों/इंजीनियरों को अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' में साउंडिंग रॉकेट के प्रमोचन (लांचिंग) से संबंधित प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। परिज्ञापी या साउंडिंग रॉकेट वायुमंडल के विभिन्न पैरामीटरों के अध्ययन के लिए आकाश में भेजे जाते हैं। इन 6 लोगों के दल में डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम भी शामिल थे।

नाइक अपाचे

पचास वर्ष पूर्व, दिनांक 21 नवम्बर, 1963 दिन एक नया इतिहास रचा गया। इस दिन भारत ने थुम्बा के भूमध्यरेखीय रॉकेट प्रमोचन केंद्र (थुम्बा इक्वैटोरियल रॉकेट लाचिंग स्टेशन-टर्ल्स) से पहला रॉकेट छोड़ा और इस प्रकार भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। उस साउंडिग रॉकेट का नाम था 'नाइक अपाचे', जो अमेरिका से मिला था। उस साउंडिंग रॉकेट को अंतरिक्ष में भेजने के लिए फ्रांस और तब के सोवियत संघ के वैज्ञानिकों-इंजीनियरों की मदद ली गई थी। सन् 1965 में थुम्बा में अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी केंद्र (स्पेस साइंस एंड टेक्नोलॉजी सेंटर-एसएसटीसी) की स्थापना की गई और 1967 में भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए अहमदाबाद में उपग्रह दूरसंचार भू-केंद्र की स्थापना की गई। 2 फरवरी, 1968 को टर्ल्स को संयुक्त राष्ट्र को समर्पित किया गया।

जल्दी ही भारत के अंतरिक्ष वैज्ञानिकों और इंजीनियरों ने देश में ही साउंडिंग रॉकेट बनाने में सफलता हासिल कर ली। इस एक चरण (खंड) यानी सिंगल स्टेज रॉकेट का व्यास 75 मिलीमीटर था और इसके ईंधन को भी देश में ही विकसित किया गया था। इस पहले स्वदेशी रॉकेट को 'रोहिणी-75' नाम दिया गया और 20 नवम्बर, 1967 को थुम्बा से इसका सफल प्रमोचन किया गया। फिर

इसी रॉकेट में कंपोजिट प्रोपेलेंट का इस्तेमाल करके फरवरी, 1969 को इसका सफल प्रमोचन किया गया।

15 अगस्त 1969 को डॉ. साराभाई की अध्यक्षता में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इंडियन स्पेस रिसर्च आर्गेनाइजेशन-इसरो) का गठन किया गया और इसके साथ ही देश में उपग्रहों और उपग्रहों को अंतरिक्ष में पहुंचाने वाले रॉकेटों यानी प्रमोचन यान (लांच व्हिकल) के निर्माण का फैसला लिया गया। आगे बड़े रॉकेटों के प्रमोचन के लिए श्रीहरिकोटा (आंध्र प्रदेश) को नए स्थल के रूप में तैयार कर लिया गया।

इसरो द्वारा एक ऐसे रॉकेट के निर्माण की योजना बनाई गई जो छोटे उपग्रह को पृथ्वी की कक्षा में पहुंचाने में सक्षम हो। इस रॉकेट को एसएलवी यानी सैटेलाइट लांच व्हिकल (उपग्रह प्रमोचन यान) नाम दिया गया। डॉ. विक्रम साराभाई ने एसएलवी को डिजाइन करने का काम तीन अलग-अलग टीमों को दिया था। हर एक टीम को अलग-अलग काम करते हुए चार चरण (स्टेज) वाले एसएलवी को डिजाइन तैयार करना था जिनमें फर्क सिर्फ व्यास और लंबाई का था। पहली टीम द्वारा डिजाइन किए जा रहे रॉकेट को एसएलवी-1, दूसरी टीम के रॉकेट को एसएलवी-2 और तीसरी टीम के रॉकेट को एसएलवी-3 नाम दिया गया। अंततः एसएलवी-3 को सर्वोत्तम पाया। और इस तीसरी टीम के लीडर थे डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम। इस चयन के बाद डॉ. कलाम एसएलवी-3 के विकास में जुट गए।

एसएलवी-3

भारत ने 1975-76 के दौरान उपग्रह शैक्षिक टेलीविजन प्रयोग (सैटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन इक्सपेरिमेंट- साइट) का आयोजन किया। यह विश्व का सबसे बड़ा जनसंचार प्रयोग था जिसके लिए अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' के उपग्रह 'ए टी एस' का उपयोग किया गया। इसके अंतर्गत इसरो ने दूर-दराज के 2400 गांवों को अलग-अलग 6 समूहों में बांटकर वहां टी.वी. सेट लगाए और शैक्षिक कार्यक्रम तैयार करके 'ए टी एस' के जरिए प्रसारित किया। प्रसिद्ध वैज्ञानिक, शिक्षाविद् एवं विज्ञान संचारक प्रो. यशपाल के निर्देशन में संचालित इस प्रयोग में शैक्षिक के अलावा परिवार कल्याण, कृषि, प्राथमिक शिक्षा और अध्यापक प्रशिक्षण जैसे कार्यक्रम भी प्रसारित किए गए। इस कार्यक्रम के सफल आयोजन के लिए प्रो. यशपाल को 1980 में मार्कोनी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

इसरो का 100वां मिशन
भारतीय अंतरिक्ष यात्रा का मील का पत्थर

दिनांक 9 सितंबर, 2012 स्थान सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र, श्रीहरिकोटा, आंध्र प्रदेश। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए एक विशेष अवसर, एक ऐतिहासिक दिन, एक खास खुशगवार सुबह। रविवार, अवकाश का दिन एक ऐसे कार्यक्रम का आयोजन जो जमीन से शुरू होकर आकाश में अपनी सफलता का परचम लहराएगा। आज भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन इसरो के लगभग पांच दशक की लंबी यात्रा में शतकीय मिशन का आयोजन था, जिसमें पीएसएलवी को अपनी बाइसवीं उड़ान (पीएसएलवी-सी 21) में दो विदेशी उपग्रहों-4 फ्रांस के उपग्रह 'स्पॉट-6' और जापान के उपग्रह 'प्रोईटेरस' को अंतरिक्ष में ध्रुवीय कक्षा में स्थापित करना था। अर्थात् पीएसएलवी-सी 21 की यह उड़ान पूर्णतया वाणिज्यिक थी।

पीएसएलवी-सी21

इन ऐतिहासिक क्षणों के प्रत्यक्षदर्शी के रूप में भारत के प्रधानमंत्री प्रमोचन स्थल पर इसरो के वैज्ञानिकों-इंजीनियरों के मध्य उपस्थित थे। साथ में थे अनेक विशिष्ट व्यक्ति जिनमें सम्मिलित थे इसरो के पूर्व अध्यक्ष डॉ. यू.आर. राव, जो 19 अप्रैल 1975 को भारत के प्रथम अंतरिक्ष मिशन के रूप में आर्यभट्ट उपग्रह के प्रमोचन के अवसर पर बैकानूर में उपस्थित थे।

100 मिशन की सफलता को संबोधित करते हुए

प्रमोचन से पहले की निर्धारित 51 घंटे की उलटी गिनती में मिशन से जुड़ी 758 विशिष्ट गतिविधियों के पूर्णरूपेण अनुकूल पाए जाने पर ही प्रातः 9:53 बजे उड़ान शुरू होनी थी। लेकिन आकाशीय मार्ग में किसी अंतरिक्ष कचरे से टकराने की आशंका को दूर करने के लिए पीएसएलवी-सी 21 को 2 मिनट बाद प्रातः 9:55 पर रवाना किया गया। विदेशी उपग्रहों को लेकर 44 मीटर ऊंचा पीएसएलवी एक भारी गर्जना के साथ आकाश की ओर बढ़ा तो वहां उपस्थित प्रधानमंत्री, विशिष्ट अतिथि और इसरो-परिवार की तालियों की गड़गड़ाहट से कक्ष गूंज उठा। आगे सब कुछ निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार चल रहा था। बादलों को चीरते आगे, बढ़ते चार-चरण (स्टेज) के

पीएसएलवी का पहला, दूसरा, तीसरा तथा चौथा चरण अपने-अपने निर्धारित कार्यक्रमानुसार प्रज्वलित हुए तथा प्रमोचन यान को निर्धारित ऊंचाई तक पंहुचाते हुए क्रमश: अलग होते गए और अंततः पीएसएलवी ने 18 मिनट और 37 सेकंड बाद दोनों उपग्रहों को 655 किलोमीटर ऊंचाई की उनकी ध्रुवीय कक्षाओं में सफलतापूर्वक पंहुचा दिया।

पीएसएलवी सन् 1999 से अब तक विभिन्न देशों के 28 उपग्रहों को अंतरिक्ष में पहुंचा चुका है। इनमें 'स्पॉट-6' अब तक प्रमोचित विदेशी उपग्रहों में सबसे भारी है। इसका भार 712 किलोग्राम, जबकि सूक्ष्म उपग्रह श्रेणी के जापानी उपग्रह **प्रोईटेरस** *का भार सिर्फ 15 किलोग्राम था। दोनों नीतभारों (पेलोड्स) का कुल भार ज्यादा न होने के कारण इस वाणिज्यिक उड़ान में पीएसएलवी के कोर एलोन वर्जन का उपयोग किया गया।*

यूरोपियन स्पेस टेक्नोलॉजी कंपनी एस्ट्रियम एस.ए.एस. द्वारा निर्मित फ्रांसीसी उपग्रह 'स्पॉट-6 प्रकाशिक सुदूर संवेदन उपग्रह (आप्टिकल रिमोट सेंसिंग सैटेलाइट) है जिसका विभेदन (रिजोल्यूशन) 1.5 मीटर है। ओसाका इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलॉजी, जापान के विद्यार्थियों द्वारा भू-सर्वेक्षण के प्रयोजन से निर्मित प्रोईटेरेस का उद्देश्य प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन है।

डॉ. साराभाई का 30 दिसंबर 1971 को तिरुअनंतपुरम में आकस्मिक निधन हो गया। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के इस प्रणेता का मात्र 52 वर्ष की अल्पायु में देहान्त हो गया, लेकिन केवल एक दशक की अवधि में उन्होंने भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की गहरी बुनियाद रख दी थी। अंतरिक्ष युग के प्रारंभिक वर्षों में ही भारत को अंतरिक्ष शक्ति बनाने की उनकी दूरदृष्टि को विश्व भर में सराहा गया। उन्हें अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मान मिले। सन 1974 में इंटरनेशनल ऐस्ट्रॉनामिकल यूनियन ने निर्णय लिया कि चंद्रमा के क्रेटर बेसल (Moon Crater BESSEL) को 'डॉ. साराभाई क्रेटर' के नाम से जाना जाएगा। उनके बाद प्रो. सतीश धवन ने इसरो की बागडोर संभाली और भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम को आगे बढ़ाते हुए नई ऊंचाइयों की ओर ले गए।

जून 1972 को अंतरिक्ष आयोग और अंतरिक्ष विभाग की स्थापना हुई और इसरो को अंतरिक्ष विभाग के अधीन लाया गया। 19 अप्रैल 1975 को प्रथम भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट को तत्कालीन सोवियत के बैकानूर केंद्र से उन्हीं के कॉस्मोस रॉकेट के द्वारा अंतरिक्ष में स्थापित किया गया। यह भारत का पहला अंतरिक्ष मिशन था और अब 9 सितंबर, 2012 को भारत पीएसएलवी-सी21 को प्रमोचित करके अंतरिक्ष मिशनों का शतक बनाकर एक नया इतिहास रच चुका है। देश में उपग्रह प्रमोचन यान और उपग्रहों के डिजाइन और निर्माण का कार्य साथ-साथ चलता रहा। तो आइए पहले उपग्रह प्रमोचन यानों की चर्चा कर लें।

डॉ. कलाम की टीम द्वारा विकसित एसएलवी-3 का 10 अगस्त 1979 को किया गया पहला प्रायोगिक परीक्षण असफल रहा। उसके एक साल के अंदर ही 18 जुलाई 1980 को आयोजित दूसरा परीक्षण पूरी तरह सफल रहा। इस उड़ान में एसएलवी-3 ने 35 किलोग्राम के रोहिणी उपग्रह को अंतरिक्ष में पृथ्वी की 300x900 किलोमीटर ऊंचाई को दीर्घवृत्ताकार कक्षा में पहुंचाया। एसएलवी-3 की बाद की उड़ान भी सफल रही।

प्रथम भारतीय अंतरिक्ष यात्री राकेश शर्मा जो 3 अप्रैल 1984 को तत्कालीन सोवियत संघ के योयुज अंतरिक्षयान से सैल्यूत अंतरिक्ष केंद्र में गए। उनके अंतरिक्ष प्रवास के दौरान अंतरिक्षयुगीन दूरसंचार सेवा के माध्यम से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ उनकी एक वार्ता का आयोजन किया गया। बातचीत के दौरान श्रीमती गांधी ने जब उनसे पूछा "अंतरिक्ष से भारत कैसे दिखता है" राकेश शर्मा का उत्तर था "सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा'।

राकेश शर्मा

इन सफलताओं के बाद और ज्यादा वजनी उपग्रहों को अंतरिक्ष में भेजने के लिए शक्तिशाली प्रमोचन यान बनाया गया जिसे आगमेंटेट सैटेलाइट लांच व्हिकल (एएसएलवी) नाम दिया गया। यह पांच चरण का रॉकेट था। एएसएलवी की पहली दो उड़ानें (24 मार्च, 1987 और 13 जुलाई, 1988) तो असफल रहीं लेकिन 20 मई, 1992 को आयोजित तीसरी उड़ान में यह रॉकेट स्ट्रॉस-सी नामक उपग्रह को अंतरिक्ष में पहुंचाने में सफल रहा। एएसएलवी की सफलता के बाद और ज्यादा शक्तिशाली रॉकेट-पीएसएलवी (पोलर सैटेलाइट व्हिकल) का विकास किया गया। यह एक महत्वपूर्ण विकास था। यह नया रॉकेट चार खंडों का बनाया गया।

पीएसएलवी की पहली उड़ान (20 सितंबर, 1993) तो असफल रही लेकिन 15 अक्तूबर, 1994 को आयोजित दूसरी उड़ान पूरी तरह सफल रही जिसमें इस रॉकेट ने आईआरएस-पी2 उपग्रह को पृथ्वी की ध्रुवीय सूर्य-समकालिक (पोलर सन सिंक्रोनस) कक्षा में पहुंचाया। 9 सितंबर 2012 तक पीएसएलवी की कुल 22 उड़ानें हो चुकी हैं और इन उड़ानों में यह रॉकेट अनेक महत्वपूर्ण भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रहों (रिमोट सेंसिंग सैटेलाइटस-आईआरएस), दूसरे देशों के कुल 28 उपग्रह और एक अंतरिक्ष कैप्स्यूल एवं एडवांस्ड एवियोनिक्स मॉड्यूल को, कभी अकेले और कभी अनेक छोटे-बड़े उपग्रहों के साथ, पृथ्वी की ध्रुवीय सूर्य-समकालिक कक्षाओं में सफलतापूर्वक पहुंचा चुका है। इसके अलावा यह मौसम विज्ञान उपग्रह कल्पना-1 (मैटसैट-I) तथा संचार उपग्रह जीसैट-12 को भू-स्थिर अंतरण कक्षा (जियोस्टेशनरी ट्रांसफर आर्बिट) में और चंद्रयान-1 को चंद्रमा की

HBCSE

कक्षा में पहुंचा चुका है।

इन्सैट जैसे भारी-भरकम संचार उपग्रहों को भू-मध्यरेखा से 36,000 किलोमीटर ऊपर की भू-स्थिर (जियोस्टेशनरी) कक्षा में भेजा जाता है। इस कक्षा में स्थापित उपग्रह उतने ही समय में पृथ्वी का एक चक्कर लगाते हैं जितने समय में पृथ्वी अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाती है। इस प्रकार इस कक्षा में चक्कर काटते उपग्रह धरती के किसी एक स्थान से स्थिर दिखते हैं। यही वजह है कि इस कक्षा को भू-स्थिर कक्षा कहा जाता है।

इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने के साथ ही इसरो ने भू-स्थिर कक्षा में उपग्रह पहुंचाने में सक्षम रॉकेट का विकास भी कर लिया था जिसे जीएसएलवी (जियोसिंक्रोनस सैटेलाइट लांच व्हिकल) यानी भू-समकालिक उपग्रह प्रमोचन यान नाम दिया गया। जीएसएलवी के जरिए उपग्रहों को भू-मध्य रेखा के लगभग 36,000 किलोमीटर ऊपर की भू-समकालिक अंतरण कक्षा (जियोसिंक्रोनस ट्रांसफर आर्बिट-जीटीओं) में पहुंचाया जाता है। इसके बाद उपग्रह में लगी मोटरों को दागकर इसे भू-स्थिर कक्षा में पहुंचाया जाता है।

जीएसएलवी तीन खंडों (स्टेज) वाला रॉकेट है, जिसमें सबसे ऊपर के खंड में क्रायोजेनिक इंजन का इस्तेमाल होता है। जीएसएलवी ने 18 अप्रैल, 2001 को आयोजित अपनी पहली विकासात्मक परीक्षण उड़ान में जीसैट-1 नामक उपग्रह को 8 मई, 2003 को दूसरी विकासात्मक परीक्षण उड़ान में जीसैट-2 को अंतरिक्ष में पहुंचाया। इन दो सफल विकासात्मक (डेवेलपमेंटल) परीक्षण उड़ानों के बाद जीएसएलवी को परिचालनात्मक घोषित कर दिया गया। जीएसएलवी ने 20 सितंबर, 2004 को आयोजित तीसरी उड़ान, जो पहली परिचालनात्मक (आपरेशनल) उड़ान थी, में 1950 किलोग्राम के 'एडुसैट' उपग्रह को अंतरिक्ष में पहुंचाया।

तीन सफल उड़ानों के बाद 10 जुलाई, 2006 को जीएसएलवी की चौथी उड़ान का आयोजन किया गया। इस उड़ान में इसे 2,168 किलोग्राम भार के इन्सैट-4सी नामक भारतीय संचार उपग्रह को अंतरिक्ष में पहुंचाना था। यह पहला मौका था जब इसरो द्वारा अपने ही देश से अपने ही प्रमोचन यान के जरिए इन्सैट श्रृंखला के किसी उपग्रह को अंतरिक्ष में भेजा जा रहा था। लेकिन तकनीकी गड़बड़ी के कारण यह उड़ान असफल रही और इसमें सवार इन्सैट-4सी उपग्रह नष्ट हो गया। 2 सितंबर 2007 को आयोजित जीएसएलवी की पांचवीं उड़ान पूर्णतया सफल रही जिसमें इन्सैट-4सी के बदले तैयार किए गए 2,130 किलोग्राम के इन्सैट-4सी आर संचार उपग्रह को भू-समकालिक अंतरण कक्षा में पहुंचाया गया। इन पांच उड़ानों तक रूस से प्राप्त क्रायोजेनिक इंजन का इस्तेमाल हुआ।

अंतरिक्ष से वापस लाए उपग्रह

पीएसएलवी सी-7

इसरो ने 10 जनवरी, 2007 को सतीश धवन अंतरिक्ष केंद्र, श्रीहरिकोटा, आंध्र प्रदेश से पीएसएलवी-सी7 के द्वारा एक साथ चार उपग्रहों को अंतरिक्ष में पहुंचा कर एक नया इतिहास रचा। यह पहला मौका था जब इसरो ने एक ही प्रमोचन यान से एक साथ चार उपग्रहों को अंतरिक्ष में लगभग 635 किलोमीटर ऊंचाई की ध्रुवीय सूर्यसमकालिक कक्षा (पोलर सनसिन्क्रोनस आर्बिट) में सफलतापूर्वक स्थापित किया। इस उड़ान की सबसे महत्वपूर्ण और नई बात यह थी कि पीएसएलवी-सी7 ने भारतीय उपग्रह कार्टोसैट-2 और दो विदेशी उपग्रहों- इंडोनिशिया के लॉपान-टबसैट उपग्रह और अर्जेंटीना के पेहुएनसैट-1 उपग्रह के साथ एक ऐसा भारतीय उपग्रह भी भेजा जो वास्तव में एक अंतरिक्ष कैप्स्यूल था। 550 किलोग्राम के इस अंतरिक्ष कैप्स्यूल को बारह दिन से लेकर एक महीने के भीतर वापस धरती पर लाया जाना था। और ठीक बारहवें दिन 22 जनवरी, 2007 को कुछ तयशुदा कार्यक्रमानुसार इसे धरती पर बंगाल की खाड़ी में सकुशल उतारकर इसरो ने एक बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की। यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग था जिसे अंतरिक्ष कैप्स्यूल पुनर्पाप्ति प्रयोग (स्पेस कैप्स्यूल रिकवरी इक्सपेरिमेंट- एसआरई-1) नाम दिया गया। भारत इस प्रयोग की सफलता के साथ अमेरिका, रूस और चीन के बाद ऐसा चौथा देश हो गया जो अंतरिक्ष में छोड़े गए उपग्रह को वापस धरती पर लाने की प्रौद्योगिकी क्षमता रखता है।

इस प्रयोग की सफलता अंतरिक्ष में स्थापित उपग्रह को धरती पर वापस लाने की प्रक्रिया में वायुमंडल में पुनःप्रवेश (री-एंट्री) की प्रौद्योगिकी में महारत हासिल करने और एक ऐसे प्रमोचन यान अर्थात् रॉकेट के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था जो उपग्रह आदि के प्रमोचन में बार-बार इस्तेमाल होगा। अंतरिक्ष सूक्ष्मगुरुत्व के प्रयोगों के लिए कम लागत का प्लेटफार्म उपलब्ध करने की दिशा में भी यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग था। यह प्रयोग आने वाले सालों में भारत द्वारा अपने अंतरिक्ष यान से किसी भारतीय को अंतरिक्ष में भेजने, भारत से अंतरिक्ष पर्यटकों को अंतरिक्ष की सैर पर ले जाने और पहले भारतीय को चंद्रमा पर उतारने जैसी महत्त्वाकांक्षी योजनाओं की दिशा में पहला महत्त्वपूर्ण कदम था। और अब अंतरिक्ष कैप्स्यूल पुनः प्राप्ति प्रयोग-2 (एसआई-2) की तैयारियां चल रही है।

स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन वाले जीएसएलवी-मार्क II के द्वारा संचार उपग्रह जीसैट-4 को 15 अप्रैल, 2010 को अंतरिक्ष में स्थापित करने का कार्यक्रम असफल रहा। इसी तरह 25 दिसंबर, 2010 को जीसैट-5पी को अंतरिक्ष में स्थापित करने के लिए आयोजित की गई उड़ान भी असफल रही। जीएसएलवी से अभी 2,000 किलोग्राम से थोड़ा वजनी श्रेणी के उपग्रह को अंतरिक्ष में भेजने में सफलता हासिल हुई है। इसरो अपने भारी-भरकम संचार उपग्रहों को स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन वाले जीएसएलवी से अंतरिक्ष में पहुंचाने की ओर प्रयासरत है और अब जल्दी ही स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन वाले जीएसएलवी से जीसैट-14 को अंतरिक्ष में छोड़ा जाएगा।

आइए, अब भारतीय उपग्रहों की चर्चा करते है। पहले भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट के 19 अप्रैल 1975 को अंतरिक्ष में स्थापना से लेकर अब तक इसरो 63 उपग्रह अंतरिक्ष में पहुंचा चुका हैं। उपग्रहों के विकास और निर्माण के मामले में भारत ने काफी पहले आत्मनिर्भरता हासिल कर ली थी। आईआरएस श्रृंखला के भारी-भरकम संचार उपग्रहों का निर्माण देश में ही होता है।

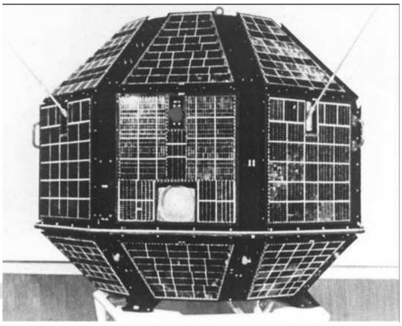

आर्यभट्ट उपग्रह

देश में ही डिजाइन और विकसित प्रथम भारतीय उपग्रह आर्यभट्ट का भार 368 किलोग्राम था जो छह साल की निर्धारित अवधि से कही ज्यादा लगभग 17 साल तक सक्रिय रहा। आर्यभट्ट की उल्लेखनीय सफलता के बाद इसरो ने अपेक्षाकृत बड़े और वजनी उपग्रह-भास्कर-1 और भास्कर-2 तैयार किए जो भारत के शुरुआती सुदूर संवेदन उपग्रह थे। इन उपग्रहों को भी सोवियत संघ के रॉकेटों द्वारा क्रमशः 7 जून, 1979 और 20 नवंबर, 1981 को प्रमोचित किया गया।

भारत के पहले और देश में ही निर्मित संचार उपग्रह 'एपल' को यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी के एरियन रॉकेट ने 19 जून 1981 को अंतरिक्ष में भू-समकालिक अंतरण कक्ष में पहुंचाया। कुल 670 किलोग्राम का उपग्रह एपल भारत का पहला स्वदेशी प्रायोगिक संचार उपग्रह था जिसे डिजाइन और विकसित करने का कार्य सिर्फ दो साल में पूरा कर लिया गया था। इस उपग्रह को भू-समकालिक अंतरण कक्षा से भू-स्थिर कक्षा में पहुंचाने का काम इसरो द्वारा ही किया गया था।

संचार उपग्रह एपल

एपल का उपयोग अनेक संचार प्रयोगों को संपन्न करने में किया गया और इस उपग्रह के निर्माण और प्रचालन के अनुभव इन्सैट-2 श्रृंखला के उपग्रहों को डिजाइन करने, विकसित करने और प्रचालित करने में अत्यंत उपयोगी साबित हुए।

नई दिल्ली में 1982 में आयोजित एशियाई खेलों के प्रसारण की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए प्रथम पीढ़ी के संचार उपग्रहों यानी इन्सैट-1 श्रृंखला के उपग्रहों को निर्मित करने का काम एक अमेरिकी कंपनी को सौंपा गया था। लेकिन इसके बाद दूसरी पीढ़ी यानी इन्सैट-2 श्रृंखला के संचार उपग्रहों और बाद के सभी संचार उपग्रहों को देश में ही डिजाइन और विकसित किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह श्रृंखला के पहले उपग्रह इन्सैट-1ए को 10 अप्रैल 1982 को अमेरिकी डेल्टा रॉकेट से, और फिर इन्सैट-1बी को 30 अगस्त 1983 को अमेरिकी स्पेस शटल द्वारा अंतरिक्ष में पहुंचाया गया था। इन्सैट-1सी को यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी के एरियन रॉकेट द्वारा फ्रेंच गुएना के कौरू से और इन्सैट-1डी को अमेरिकी डेल्टा रॉकेट से अंतरिक्ष में पहुंचाया गया लेकिन फिर इसके बाद के इन्सैट श्रृंखला के उपग्रहों को एरियन रॉकेट से ही अंतरिक्ष में भेजा गया। 12 मार्च, 2007 को एरियन रॉकेट ने इन्सैट-4बी को अंतरिक्ष में पहुंचाया। इसके बाद 2 सितंबर, 2007 को इन्सैट-4सीआर को भारत से ही भारतीय प्रमोचन यान जीएसएलवी के जरिए अंतरिक्ष में पहुंचाया गया।

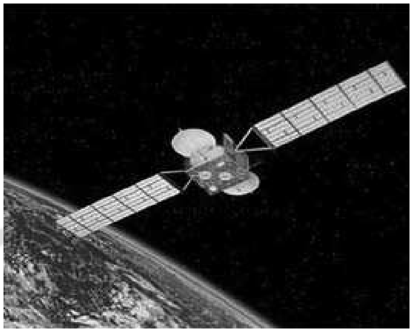

जीसैट-10

फ्रेंच गुएना से एरियन रॉकेट द्वारा 21 मई, 2011 को जीसैट-8 को और अभी 101वें, भारतीय अंतरिक्ष मिशन के रूप में 29 सितंबर, 2012 को अब तक के सबसे वजनी 3400 किलोग्राम के भारतीय संचार उपग्रह जीसैट-10 को अंतरिक्ष में पहुंचाया गया।

भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रहों (रिमोट सेंसिंग सैटेलाइट्स) की श्रृंखला 17 मार्च, 1988 को आईआरएस-1ए उपग्रह को अंतरिक्ष में छोड़े जाने के साथ शुरू हुई जिसे तब के सोवियत संघ के बैकानूर अंतरिक्ष केंद्र से वोस्तोक रॉकेट के जरिए अंतरिक्ष में भेजा गया था। इसके पश्चात आईआरएस श्रृंखला के दो और उपग्रहों को रूस के रॉकेट द्वारा बैकानूर अंतरिक्ष केंद्र से प्रमोचित किया गया। उसके बाद से इस श्रृंखला के सभी उपग्रहों को भारत के रॉकेट पीएसएलवी द्वारा अंतरिक्ष में भेजा जा रहा है। इस श्रृंखला के उपग्रहों को पृथ्वी की ध्रुवीय कक्षा में स्थापित किया जाता है। यह कक्षा पृथ्वी के दोनों ध्रुवों के ऊपर से गुजरती हैं।

26 अप्रैल 2012 को पीएसएलवी-सी19 द्वारा अंतरिक्ष में पहुंचाया गया रिसैट-1 भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रहों के परिवार का नवीनतम सदस्य है। तो यह थी भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की अब तक की यात्रा की एक झलक। यह यात्रा अविराम जारी है और नई-नई ऊंचाइयों की ओर अग्रसर है।

❖ संपादक, आविष्कार
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन,
20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र,
कैलाश कॉलोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048
ई-मेल : rkanthwal@nrdc.in

HBCSE

जीवन की कुछ महत्वपूर्ण क्रियाएं तथा रसायनों की भूमिका

◆ डॉ. अर्चना पाण्डेय

हमारे मस्तिष्क में प्रत्येक क्षण में लगभग एक लाख रासायनिक अभिक्रियाएँ होती हैं। वास्तव में मस्तिष्क एक रेडियोट्रान्समीटर का काम करता है और हर समय विद्युत तंरगों के सिग्नल बाहर भेजता रहता है। यहाँ तक कि मृत्यु के 37 घंटे के बाद तक भी मस्तिष्क इस तरह के सिग्नल भेजता रहता है। हमारा मस्तिष्क पचास से अधिक ऐसे रासायनिक पदार्थ पैदा करता है जो औषधि की तरह काम करते है। इन पदार्थों का सीधा संबंध स्मृति, बौद्धिक क्षमता, भावनाओं तथा सोने-जागने से होता है। वैसे तो शरीर की प्रत्येक क्रिया किसी न किसी रासायनिक पदार्थ से संचालित होती है परंतु यहाँ पर कुछ खास प्रक्रमों का ही उल्लेख किया जा रहा है।

निद्रा एवं जागरण की प्रक्रिया (मेलाटोनिन)

हम सभी लोग रात में अच्छी नींद लेने का महत्व जानते हैं। लेकिन यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि सोने और जागने का यह चक्र कुछ रासायनिक पदार्थों पर निर्भर करता है जो मस्तिष्क में पैदा होते हैं।

इसमें सबसे महत्वपूर्ण एडिनोसीन तथा मेलाटोनिन है। एडिनोसीन एक उपोत्पाद (byproduct) की तरह पैदा होता है जब शरीर ऊर्जा का उपभोग कर चुका होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह हमारे शरीर में सारे दिन एकत्र होता रहता है और थकान व उनींदेपन का अहसास जगाता है जो सोने की प्रक्रिया का प्रथम सोपान है। जब हम सो लेते हैं तो यह शरीर से समाप्त हो जाता है और हम सुबह उठने पर एक तरह की ताजगी अनुभव करते हैं। इसीलिए बहुत थक जाने के बाद प्रायः लोग आसानी से लोग सो जाते हैं और पूरी नींद न लेने पर थकान महसूस करते हैं।

मेलाटोनिन मस्तिष्क के केंद्र में उपस्थित पीनियल ग्रंथि से निकलता है। रासायनिक रूप से यह N-ऐसिटाइल 5-मिथॉक्सीट्रिप्टामीन है। यह एक अंतःस्रावी हार्मोन है जो सीधे रक्त में पहुँचता है। यह चैतन्यता व सजगता को अवरुद्ध कर सोने में मदद करता है। इसका उत्पादन एक प्रकाश संवेदी प्रक्रिया है। सूर्य के अस्त होते ही मेलाटोनिन का स्तर बढ़ने लगता है तथा मध्यरात्रि 2 बजे सबसे अधिक होता है। इसके बाद इसकी मात्रा कम होने लगती है और सूर्योदय होते ही इसका

बनना बंद हो जाता है। यही कारण है कि सूर्योदय के उपरान्त प्रायः लोग स्वतः जाग जाते हैं।

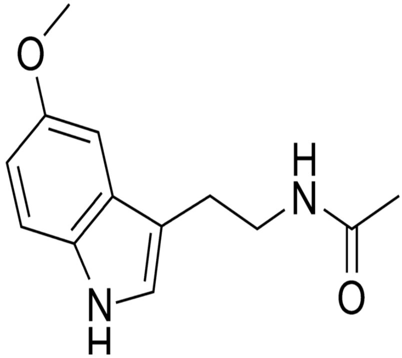

केयूमॉव नामक वैज्ञानिक ने शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि रेटिना पर प्रकाश पड़ते ही इसका उत्पादन बाधित हो जाता है तथा अंधकार होते ही इसका स्तर बढ़ने लगता है। यह भी देखा गया है कि नीले प्रकाश (460-480 नैनोमीटर) की अवधि अधिक देर के लिए हो तो इसका निकलना बिल्कुल ही बंद हो जाता है। वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा यह भी पाया कि 530 नैनोमीटर से बड़ी तरंगदैर्ध्य का प्रकाश मेलाटोनिन का उत्पादन नहीं रोकता। मेलाटोनिन चूँकि नींद लाने में सहायक है अतः जो लोग जल्दी सोना चाहते हैं उन्हें नीले प्रकाश से बचना चाहिए।

प्रकाश व अंधकार की मात्रा बदलने से सोने व जागने का चक्र परिवर्तित किया जा सकता है क्योंकि इस परिवर्तन को करने से मेलाटोनिन का स्तर घटाया व बढ़ाया जा सकता है। एक स्वस्थ व्यक्ति में रात्रि लगभग 5-25 माइक्रोग्राम तक मेलाटोनिन पैदा होता है। इसीलिए वृद्धावस्था में नींद कम आती है या रुक-रुककर आती है। बच्चों में जन्म के तीन महीने बाद मेलाटोनिन का उत्पादन शुरू होता है। मध्यरात्रि से लेकर सुबह 8 बजे तक इसका स्तर सबसे अधिक होता है।

यह चेरी, केले, अंगूर, दालों, ओलिव ऑयल व बीयर में पाया जाता है। अमेरिका में 1990 के आसपास मेलाटोनिन उत्पाद उपलब्ध थे लेकिन न्यूरोहार्मोन होने के कारण अन्य देशों में इसकी बिक्री प्रतिबंधित है। चिकित्सकीय परामर्श से ही इसको खरीदा जा सकता है।

एक प्रयोग में 112 वृद्ध व्यक्तियों को 21 मिग्रा. मेलाटोनिन सोने के एक घण्टा पहले दिया गया। ऐसा देखा गया कि उन्हें सोने व जागने दोनों में समय कम लगा। एक देश से दूसरे देश में जाने पर या पारी (शिफ्ट ड्यूटी) में काम करने वालों को **जेट लैग** की समस्या हो जाती है। जेट लैग शरीर में मौजूद जैविक घड़ी को अस्त-व्यस्त कर देता है जिसके परिणामस्वरूप थकान व सिरदर्द हो जाता है, साथ ही एकाग्रता में कमी हो जाती है। मेलाटोनिन की मदद से जेट लैग की समस्या से भी मुक्ति मिल जाती है।

यह एक अच्छा प्रतिआक्सीकारक भी है। यह कोशिका भित्ति व ब्लड ब्रेन बैरियर को आसानी से पार कर जाता है। यह मुक्त मूलक मार्जक की तरह काम करता है। अन्य प्रतिआक्सीकारकों के साथ मिलकर यह उनके प्रभाव को बढ़ा देता

HBCSE

है। अन्य प्रतिआक्सीकारकों की तरह यह रीडॉक्स साइकिल में सम्मिलित नहीं होता है, अर्थात् यह बार-बार आक्सीकृत या अपचयित नहीं होता। यदि यह एक बार आक्सीकृत हो जाता है तो पुनः अपनी पूर्वावस्था में अपचयित नहीं होता क्योंकि यह मुक्त मूलकों के साथ अभिक्रिया करके बहुत स्थायी अंतिम उत्पाद बनाता है ताकि फिर से मुक्त मूलक न बन सके। अतः इसे अंतस्थ (terminal) या आत्मघाती (suicidal) प्रतिआक्सीकारक भी कहते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि यह डी.एन.ए. को क्षति पहुँचाकर कैंसर पैदा करने वाले रासायनिक पदार्थों की क्रियाविधि को अवरुद्ध करता है। यह पार्किन्सन की बीमारी को ठीक करता है तथा औसत आयु की अवधि को 20% तक बढ़ा देता है।

मेलाटोनिन का एक महत्वपूर्ण कार्य घावों को भरना भी है। हम सभी जानते हैं कि सोते समय घाव आसानी से भरते हैं। वास्तविकता यह है कि हमारे शरीर में पाया जाने वाला ग्लूटाथायोन नामक रासायनिक पदार्थ कई कार्य करता है जैसे- शरीर को विषैले पदार्थों से मुक्त करना, DNA की मरम्मत (repair) करना, प्रतिआक्सीकारकों का पुनर्चक्रण करना, माइटोकॉन्ड्रिया से कोशिका में ऊर्जा का स्थानान्तरण करना, प्रतिरक्षा तंत्र को ऊर्जा पहुँचाना तथा उसे नियंत्रित करना। जब शरीर में प्रतिआक्सीकारकों की कमी होने लगती है तो ग्लूटाथायोन प्रतिआक्सीकारकों की भूमिका निभाना शुरू कर देता है। इस अभिक्रिया में ग्लूटाथायोन का स्तर कम होने लगता है तथा इसके स्वयं के कार्य बंद होने लगते हैं। ऐसे में सोते ही मेलाटोनिन का उत्पादन मस्तिष्क में आरंभ हो जाता है जो स्वयं एक अच्छा प्रतिआक्सीकारक है। यह ग्लूटाथायोन को उसके प्रतिआक्सीकारक वाले उत्तरदायित्व से मुक्त कर देता है तब यह अपना पुराना काम शुरू कर देता है अर्थात् यह विषैले पदार्थों को निकाल कर शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को ऊर्जा प्रदान करता है और घाव भरने के लिए प्रतिरक्षा तंत्र का मजबूत होना व शरीर का विषैले पदार्थों से मुक्त होना आवश्यक है। इस प्रकार सोते समय घाव भरने की प्रक्रिया तेज हो जाती है।

स्वस्थ रहने की प्रक्रिया (होमोसिस्टीन)

यह एक ऐमीनो एसिड है। इसका स्तर हमारे स्वस्थ रहने का पैमाना है। इसको H-factor कहा जाता है। यदि H-factor ज्यादा है तो यह हमारे अस्वस्थ रहने का संकेत है।

होमोसिस्टीन वास्तव में मेथीओनिन नामक ऐमीनो एसिड से बनता है। होमोसिस्टीन हमारे शरीर में कैसे बनता है यह जानने के लिए मिथाइलेशन का प्रक्रम जानना आवश्यक है। जैसा कि हम जानते हैं कि मिथाइल समूह एक कार्बन व तीन हाइड्रोजन से मिलकर बनता है। यह मिथाइल समूह शरीर में चलने वाली लगभग सभी क्रियाओं को संतुलन में रखता है। नॉरएड्रीनलीन नामक हार्मोन व्यक्ति को प्रसन्न रखता है परंतु जब व्यक्ति तनाव में होता है तो एक मिथाइल समूह नॉरएड्रीनलीन में जुड़ जाता है और एड्रीनलीन बनता है जो ढ़ेर सारी ऊर्जा एक

साथ पैदा करता है। जब तनाव की स्थिति समाप्त हो जाती है तब मस्तिष्क इस दिये गये मिथाइल समूह को वापस ले लेता है।

मेथीओनिन नामक ऐमीनो एसिड माँस-मछली, पनीर आदि में पाया जाता है। इन पदार्थों को खाने से मेथीओनिन हमारे रक्त में पहुँच जाता है। मेथीओनिन से एक मिथाइल समूह निकलने पर होमोसिस्टीन बन जाता है। इस प्रकार होमोसिस्टीन का स्तर बढ़ने लगता है। परंतु यदि इसी प्रकार होमोसिस्टीन का स्तर बढ़ता रहे तो व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है अतः शरीर कहीं और से एक मिथाइल लाकर होमोसिस्टीन को

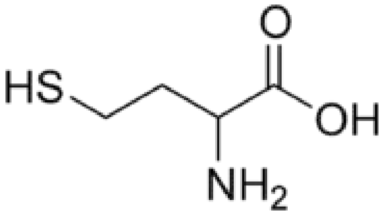

होमोसिस्टीन

देता है जिससे यह एक महत्वपूर्ण रासायनिक पदार्थ-सैमी (S-adinosylmethionin) बनाता है जो बहुत अच्छा प्रतिआक्सीकारक है। यह अवसाद को दूर करता है, गठिया व यकृत की बीमारियों से बचाता है। जिन व्यक्तियों में यह मिथाइलेशन का प्रक्रम सही सही चलता रहा है उनका मिथाइल IQ ज्यादा होता है तथा वे स्वस्थ रहते हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि यह मिथाइलेशन की प्रक्रिया एक सेकेंड में 100 करोड़ बार होती है। यह एक ऐसे बड़े खेल की तरह है जिसमें मिथाइल समूह एक जैव रासायनिक पदार्थ से दूसरे जैवरासायनिक पदार्थ में स्थानान्तरित होता रहता है। अतः उच्च मिथाइल व होमोसिस्टीन का कम स्तर स्वस्थ रहने की निशानी है।

यदि शरीर में होमोसिस्टीन का स्तर बढ़ रहा है तो इसका सीधा मतलब है कि होमोसिस्टीन सैमी में परिवर्तित नही हो पा रहा है। इसके लिए कुछ एन्जाइम जिम्मेदार होते हैं। इन एन्जाइमों को कार्य करने के लिए कुछ सहायकों की आवश्यकता होती है जैसे विटामिन 'बी'- विटामिन B_2, B_6, B_{12} और जिंक। इसके अलावा ट्राइमिथाइलग्लाइसिन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कहा जा सकता है कि मिथाइलेशन नामक नृत्य इन सभी द्वारा कोरियोग्राफ किया जाता है। TMG अब तक सबसे अच्छा मिथाइल समूह दाता माना गया है। अतः विटामिन बी व होमोसिस्टीन के स्तर को जांचने के लिए Higher Nature नामक कंपनी की तरफ से किट्स उपलब्ध हैं।

खुश रहने की प्रक्रिया (सेरोटोनिन)

सेरोटोनिन रासायनिक रूप से 5-हाइड्रॉक्सी ट्रिप्टाऐमीन होता है। यह मस्तिष्क में बनता है वहाँ से रक्त द्वारा आँतों में आता है। मानव शरीर का 90% सेरोटोनिन आँतों के एन्टरोक्रोमाकिन कोशिकाओं में आकर एकत्र होता है जहाँ यह आँतों के संकुचन में मदद करता है।

सेरोटोनिन खुशी के एहसास को बढ़ाता है। यह चिन्ता व अवसाद को

HBCSE

दूरकर खुश रहने में मदद करता है। यह एक न्यूरोट्रान्समीटर है अर्थात् नर्व इमपल्स ट्रान्समीशन का काम करता है। सेरोटोनिन ट्रिप्टोफान ऐमीनो एसिड से बनता है। ट्रिप्टोफान को सेरोटोनिन में परिवर्तित होने के लिए विटामिन C व विटामिन B6 (नियासिन) की आवश्यकता होती है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि सूर्योदय होने के बाद दो घण्टे की अवधि में सेरोटोनिन का स्राव होता है। यही नहीं, सुबह बिस्तर से उठने के बाद गुनगुने पानी से नहाने पर भी सेरोटोनिन का स्तर बढ़ता है। सुबह 30 मिनट का व्यायाम भी शरीर में सेरोटोनिन का उत्पादन बढ़ाता है। खजूर, पपीता व केले में ट्रिप्टोफान की पर्याप्त मात्रा होती है। शोध द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि कार्बोहाइड्रेटयुक्त भोजन व प्रोटीन का कम सेवन करने से सेरोटोनिन का स्तर बढ़ता है।

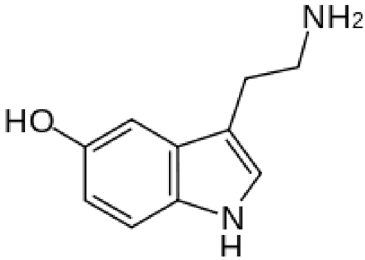

सेरोटोनिन

सेरोटोनिन वृद्धावस्था का नियंत्रक भी है। यह याद करने की क्षमता को बढ़ाता है तथा स्मृति तीक्ष्ण करता है। नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मेन्टल हेल्थ के अनुसार अवसाद ह्दय रोग, रक्त कोलेस्ट्रॉल व उच्च रक्तचाप के लिए जिम्मेदार होता है। बहुत से लोग क्रोध, उदासी व अपराधबोध को स्वीकार नहीं कर पाते और समाज से सब कुछ छिपाकर स्वकेन्द्रित हो जाते हैं। धीरे-धीरे उन्हें अपने आसपास की दुनिया वीरान व उजड़ी हुई प्रतीत होती है। हर चीज में उनकी रुचि समाप्त हो जाती है। समय बहुत धीरे-धीरे बीतता नजर आने लगता है और वे भावशून्यता की स्थिति में पहुँच जाते हैं। कई दवाइयाँ आजकल बाजार में उपलब्ध हैं जो सेरोटोनिक के स्तर को 80% तक बढ़ाती है।

HBCSE

केले में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट ट्रिप्टोफान नामक ऐमीनो एसिड का स्तर बढ़ाता है जो सेरोटोनिन उत्पादन में मदद करता है। इसीलिए चाकलेट खाने से भी मूड अच्छा होता है क्योंकि उसमें भी शुगर होती है।

प्रेरणा व पुरस्कार पाने की प्रक्रिया (डोपामिन)

रासायनिक रूप से यह 3, 4-0-डाइट्राईड्राक्सीफेनाइल ऐथिल ऐमीन है। यह मस्तिष्क के न्यूरॉन्स में बनता है। इसके बनने में फेनिलएलानिन व टाइरोसिन नामक ऐमीनो एसिड बहुत मदद करते हैं। प्रेरणा (Motivation) व पुरस्कार का सीधा संबंध डोपामिन से होता है। यह सुख, आराम व विलास की भावना पैदा करता है। यह चित्तविक्षेप को कम कर एकाग्रता को बढ़ाता है। प्रोटीन डोपामिन का स्तर बढ़ाता है। अतः यदि व्यक्ति थका है पर चैतन्य रहना चाहता है तो उसे प्रोटीन का सेवन करना चाहिये। इससे सोचने व कार्य करने की क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है। इसके अलावा इसका बढ़ा हुआ स्तर व्यक्ति को ज्यादा बातूनी व उद्धिग्न बनाता है।

डोपामिन की कमी से पार्किन्सन नामक बीमारी होती है। वैज्ञानिकों में इस बात को लेकर मतभेद है कि किसी वस्तु की चाह होने पर डोपामिन का स्राव होता है, या वह चाह पूरी हो जाने पर इसका स्तर बढ़ता है। डोपामिन का पर्याप्त स्तर व्यक्ति को सामाजिक बनाता है और वह लोगों से मिलने-जुलने में विश्वास रखता है। डोपामिन का उच्च स्तर व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता को बढ़ाता है। ऐसे लोग धार्मिक होते हैं और अपने लक्ष्य को पाने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं। भावनात्मक रूप से स्वतंत्र होते हैं और जीवन में खतरा उठाने के लिए तैयार रहते हैं।

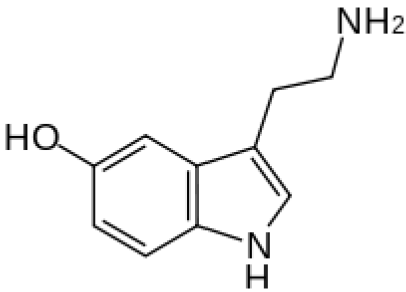

डोपामिन

दिन में सोने की प्रक्रिया (हाइपोक्रिटिन)

यह मस्तिष्क में पैदा होता है तथा न्यूरोट्रान्समीटर है। दिन में सोने की प्रक्रिया को नार्कोलेप्सी कहते हैं। वास्तव में नार्कोलेप्सी एक तरह का व्यतिक्रम है जिसमें लोग दिन में सोने को मजबूर होते हैं। हाइपोक्रिटिन एक तरह का प्रोटीन है जिसका कम स्तर नार्कोलेप्सी के लिए जिम्मेदार होता है। स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के इर्मेनुएल माइगनॉट ने अपने शोधपत्र में बताया है कि नार्कोलेप्टिक लोगों की मृत्यु के बाद उनके मस्तिष्क की जाँच में पता लगा कि उनमें हाइपोक्रिटिन का स्तर बहुत कम था। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के ही दूसरे वैज्ञानिकों ने पाया कि नार्कोलेप्टिक लोगों के मस्तिष्क में हाइपोक्रिटिन पैदा करने वाली कोशिकाएं अचानक तथा असाधारण रूप से मृत हो गयीं। इसका कारण अज्ञात है एवं वर्तमान में कोई इलाज भी नहीं है। अमेरिका में लगभग 1,35,000 लोग नार्कोलेप्टिक है।

HBCSE

आराम की प्रक्रिया (थियानिन)

रासायनिक रूप से यह 5-N-ऐथिल ग्लूटामीन है। यह चाय में पाया जाता है। यह मस्तिष्क में पैदा होने वाली α-तरंगों को बढ़ाता है। α-तरंगों के पैदा होने पर शरीर आराम का अहसास करता है। यह मानसिक व शारीरिक थकान को दूर करता है। कैफीन के साथ मिलकर यह सिनर्जिस्टिक प्रभाव दिखाता है और डोपामिन का स्तर बढ़ाकर मूड को खुशनुमा बनाता है। यह अधिकतर पेय पदार्थों व नींद लाने वाली दवाओं में भी कम मात्रा में मिलाया जाता है। यह शरीर की प्रतिक्षात्मक प्रणाली को भी चुस्त दुरुस्त रखता है। यह गामा डेल्टा कोशिकाओं की रोग से लड़ने की क्षमता को बढ़ाता है। वर्ष 2003 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 11 कॉफी पीने वाले तथा 10 काली चाय पीने वाले के

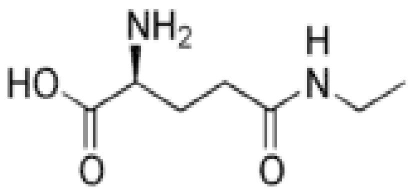

थियानिन

रक्त का परीक्षण किया गया। ये सभी 600 मिली. कॉफी या काली चाय रोज पीते थे। पता चला कि काली चाय पीने वालों में ऐन्टीबैक्टीरियल प्रोटीन का स्तर पहले से पाँच गुना बढ़ गया।

इस तरह हम देखते हैं कि हमारे तन तथा मन की दशा एवं दिशा को तमाम तरह के रसायन निर्धारित करते हैं। हमारा मूड, प्रेरणा तथा व्यवहार, सब कुछ रसायनों से तय होता है। सकारात्मक तथा नकारात्मक चिंतन भी बहुत हद तक इन्हीं जैविक रसायनों की देन हैं। खुश तथा उत्साहमय रहना अब रसायनों के जरिए संभव हो चला है।

❖ एसोसिएट प्रोफेसर
रसायन विभाग,
सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज,
इलाहाबाद-211002

HBCSE

गणितीय अध्ययन में उपपत्ति-बोध

◆ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

गणित, भौतिक विश्व की प्राकृतिक घटनाओं पर मस्तिक की प्रयोगशाला में तर्कों और सूक्ष्म बौद्धिक अनुभूतियों द्वारा विकसित अभिधारणाओं, अभिगृहीतों और प्रमेयों के आधार पर स्थापित श्रृंखलाबद्ध परिणामों का फलन है। इन प्रमेयों आदि को पूर्वस्थापित अभिगृहीतों और प्रमेयों से पुष्ट अकाट्य प्रमाणों एवं सुसंगत तर्कों के आधार पर सत्य सिद्ध करना उनकी उपपत्ति कही जाती है। गणित के इतिहास में सर्वप्रथम उपपत्ति देने का श्रेय एक यूनानी गणितज्ञ थेल्स को जाता है। यहाँ उपपत्ति के अवबोध के लिए क्रमिक रुप से विकसित एक अध्ययन-लेख दिया जा रहा है-

उपपत्ति के लिए प्रश्न-बोध एवं प्रयुक्त शब्दों का महत्व

गणितीय दृष्टि के मूल में दो प्रश्न सदैव निहित रहते हैं,

(1) यह क्यों है?

(2) यह क्यों नहीं है?

इसमें से पहला प्रश्न अवबोध की क्षमता प्रदान करता है तथा दूसरा प्रश्न मूलभूत अवधारणाओं के प्रति सचेत करता है। ये प्रश्न गणितीय संकल्पनाओं और प्रमेयों को स्थापित करने व उन्हें सर्वमान्य सत्य बनाने के पीछे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर तर्कों पर आश्रित होते हैं और तर्क पूर्व-स्थापित अभिधारणाओं, अभिगृहीतों एवं प्रमेयों पर। इस प्रकार तर्कों के आधार पर प्रमेय की स्थापना प्रमेय की उपपत्ति कही जाती है। अतः किसी कथन या प्रमेय की उपपत्ति उससे उठने वाले कुछ प्रश्नों और उनके प्रमाण-पुष्ट उत्तरों की एक श्रृंखलाबद्ध स्थापना होती है। इस सन्दर्भ में गणित में प्रायः कई विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाता है। प्रायः प्रयुक्त होने वाले इन शब्दों और उनकी परिभाषाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ देना आवश्यक है क्योंकि गणितीय शब्दों की परिभाषाएँ ही उनकी शक्ति और सीमा का निर्धारण करती हैं। गणितज्ञों के चिंतन में ये परिभाषाएँ इतनी रच-बस गई होती हैं कि वे स्वतः उनके पदों का अनुगमन करती हैं किन्तु छात्रों और सामान्य अध्येताओं को इनके लिए ध्यान देना पड़ता है। अतः यहाँ गणितीय कथनों, उनसे संबंधित शब्दों और गणितीय कथनों को प्रमाणित करने वाली विधियों पर क्रमशः विकसित अध्ययन दिया जा रहा है।

गणितीय कथन एवं उपपत्ति के सन्दर्भ में व्यवहृत शब्द

<u>गणितीय रूप से स्वीकार्य कथन :-</u> ऐसे कथन वे वाक्य हैं जो न आदेशात्मक हों, न विस्मयादि बोधक (exclamatory) हों, और न ही प्रश्नवाचक हों। कथन सामान्यतः तीन प्रकार के होते हैं :-

(i)सदैव सत्य कथन

(ii)सदैव असत्य कथन
(iii)संदिग्ध कथन

सदैव सत्य कथन :- ऐसा कथन जो प्रत्येक परिस्थिति में सत्य हो।

सदैव असत्य कथन :- जो कथन किसी भी परिस्थिति में सत्य न हो।

संदिग्ध कथन :- ऐसा कथन जिसकी सत्यता के प्रति संदेह उत्पन्न होता हो। संदिग्ध कथन की दो स्थितियाँ बनती हैं :-

(a) असंभव निर्णय वाले कथन :- वे कथन जिसके प्रति कोई निर्णय लेना असंभव हो। जैसे- उस दिन तापमान अधिक था। यहाँ किस दिन और किसके सापेक्ष तापमान का निर्णय लिया जा रहा है, यह अज्ञात है। अतः इसे सत्य या असत्य कहना संभव नहीं है।

(b) व्यक्तिनिष्ठ कथन :- वे कथन जो पूर्णतया व्यक्ति-निष्ठ हो। जैसे- कुत्ता एक बुद्धिमान जानवर है। कुछ लोग इससे सहमत हो सकते हैं और कुछ लोग नहीं।

<u>असंदिग्ध कथन :-</u> वे कथन जो संदिग्ध नहीं होते। ऐसे कथन सदैव सत्य या सदैव असत्य हो सकते हैं। गणित में ऐसे कथन ही विचारणीय होते हैं।

<u>प्रत्युदाहरण (Counter Example) :-</u> किसी कथन के संदर्भ में वह उदाहरण जो उस कथन के अनुकूल न होकर प्रतिकूल हो, प्रत्युदाहरण कहलाता है।

<u>निगमिक तर्कण (Deductive Reasoning) :-</u> किसी असंदिग्ध कथन की सत्यता स्थापित करने में प्रयुक्त किया गया मुख्य तर्क-संगत साधन निगमिक तर्कण कहा जाता है।

किसी कथन को निगमिक तर्कण के द्वारा एक व्यापक स्थिति के लिए सत्य प्रमाणित करके, उससे संबंधित किसी विशिष्ट स्थिति के लिए, सत्य माना जा सकता है।

<u>प्रमेय (Theorem) :-</u> ऐसा गणितीय कथन जिसकी सत्यता स्थापित कर दी गई हो उसे प्रमेय कहते हैं। जैसे- त्रिभुज के तीनों अंतः कोणों का योगफल 180° होता है।

<u>कंजेक्चर (Conjecture) :-</u> वह गणितीय कथन जिसे हम अपने गणितीय ज्ञान और अनुभव अर्थात् गणितीय अंतर्ज्ञान (intuition) के आधार पर सत्य मानते हैं, कंजेक्चर कहा जाता है। कंजेक्चर सदैव सत्य होंगे, ऐसा नहीं है। गणितीय कथनों या प्रतिरूपों (models) को देखकर उसकी सत्यता का गणितीय अनुमान लगाने के लिए प्रायः कंजेक्चर का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरणार्थ :- निम्नांकित पास्कल-त्रिभुज में संख्याओं के प्रतिरूप में प्रत्येक पंक्ति में स्थित संख्याओं के योगफल के लिए कंजेक्चर बनाएँ तो पंक्तियों में संख्याओं का

HBCSE

योग क्रमशः $2^0, 2^1, 2^2, 2^3, 2^4, 2^5, 2^6$ तथा आठवीं पंक्ति का योग 2^7 है। इस प्रकार n+1 वीं पंक्ति में आने वाली संख्याओं का योग 2^n होगा। गणितज्ञों को इस तथ्य की धारणा देखने मात्र से ही बन जाती है।

पंक्ति संख्या	पास्कल-त्रिभुज													पंक्ति में आई संख्याओं का योग
1							1							1 = 2^0
2						1		1						2 = 2^1
3					1		2		1					4 = 2^2
4				1		3		3		1				8 = 2^3
5			1		4		6		4		1			16 = 2^4
6		1		5		10		10		5		1		32 = 2^5
7	1		6		15		20		15		6		1	64 = 2^6
8														आगे इसी प्रकार..

कंजेक्चर की एक खुली समस्या गणितज्ञ क्रिश्चियन गोल्डबाक के नाम पर विख्यात 'गोल्डबाक कंजेक्चर' है जो अब तक सिद्ध नहीं की गई है। इसका कथन इस प्रकार है- '4 से बड़े प्रत्येक समपूर्णांक को दो विषम अभाज्य संख्याओं के योग के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।'

HBCSE

अभिधारणा और अभिगृहीत (postulates and axioms) :-
यूक्लिड ने कुछ ज्यामितीय गुणों को बिना सिद्ध किए ही उन्हें सत्य मानने की कल्पना की। ये कल्पनाएँ व्यावहारिक रूप से सर्वव्यापी सत्य थीं। उन्होंने इन कल्पनाओं को दो भागों में बाँटा :- अभिधारणा तथा अभिगृहीत।

<u>अभिधारणा :-</u> वे कल्पनाएँ जो विशिष्ट रूप से ज्यामिति से संबंधित थीं, अभिधारणा कही गईं।

<u>अभिगृहीत :-</u> वे कल्पनाएँ जो निरंतर गणित में प्रयुक्त हो रही थीं किन्तु केवल ज्यामिति से ही संबंधित नहीं थीं, अभिगृहीत कही गई। आजकल अभिधारणा और अभिगृहीत दोनों प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त हो रहे हैं। इन अभिगृहीतों को स्वयंसिद्धि भी कहते हैं।

प्रमेय (Theorm) :- अभिगृहीतों और परिभाषाओं के आधार पर निगमिक तर्कण द्वारा सिद्ध किये गये परिणाम या गणितीय कथन प्रमेय या साध्य (Proposition) कहे जाते हैं।

यूक्लिड ने अपनी अभिगृहीतों, अभिधारणाओं, परिभाषाओं और पूर्वसिद्ध प्रमेयों के आधार पर एक तार्किक श्रृंखला में 465 साध्य निगमित किए।

उपपत्ति (proof) :- किसी गणितीय कथन की उपपत्ति उसे सिद्ध करने के लिए तर्कों के नियमाधीन व्यवस्थित निगमिक तर्कणों की एक श्रृंखला होती है जो परिभाषाओं, स्वयंसिद्धियों और निगमिक तर्कणों द्वारा पूर्व स्थापित प्रमेयों के उपयोग से स्थापित की जाती हैं।

उपपत्ति के प्रकार :-

(1) प्रत्यक्ष उपपत्ति (Direct proof)
(2) परोक्ष उपपत्ति (Indirect proof)

(1) प्रत्यक्ष उपपत्ति :- जब कथन से ज्ञात तथ्यों के आधार पर उपपत्ति सीधे-सीधे आरम्भ कर दी जाती है तो इसे उपपत्ति की प्रत्यक्ष विधि कहते हैं।

प्रत्यक्ष उपपत्ति की क्रिया तीन प्रकार से होती है :-

(i) सीधे निर्वाध उपगमन से
(ii) गणितीय आगमन सिद्धान्त के उपयोग से
(iii) वस्तुनिष्ठ प्रमाणों के द्वारा या निश्शेषण विधि से।

यहाँ तीनों विधियाँ उदाहरण सहित प्रस्तुत हैं :-

(i) सीधे निर्वाध उपगमन से (by Straight forward approach) :-

इस विधि में सीधे-सीधे ज्ञात या अभिकल्पित (assumed) कथनों के आधार पर तर्क प्रारम्भ करके पूर्व-स्थापित परिभाषाओं, अभिगृहीतों और प्रमेयों की सहायता से संगत तर्कों के नियमाधीन क्रमिक रूप से आगे बढ़ते हुए वांछित कथन की स्थापना करते हैं।

उदाहरण :- यदि वास्तविक संख्याओं के समुच्चय R में फलन $f: R \rightarrow R$ इस प्रकार परिभाषित है कि $f(x)=7x-9$ तो सिद्ध कीजिए कि फलन एकैकी है।

उपपत्ति :- फलन $f(x)$ एकैकी होगा यदि

$$f(x_1)=f(x_2) \Rightarrow x_1=x_2$$ (एकैकी फलन की परिभाषा से).....(1)

यहाँ प्रदत्त फलन से :

$$f(x_1)=7x_1-9$$ तथा,

$$f(x_2)=7x_2-9$$ (जहाँ $x_1, x_2 \in R$)

तब, $$f(x_1)=f(x_2) \Rightarrow 7x_1-9=7x_2-9$$

$\Rightarrow 7x_1 - 9 + 9 = 7x_2 - 9 + 9$ (दोनों पक्षों में समान संख्या 9 जोड़ने पर)

$\Rightarrow 7x_1 + 0 = 7x_2 + 0$

$\Rightarrow 7x_1 = 7x_2$ (o; R में योगात्मक तत्समक अवयव है)

$\Rightarrow \frac{7x_1}{7} = \frac{7x_2}{7}$ (एक ही अशून्य वास्तविक संख्या से दोनों पक्षों में भाग देने पर)

$\Rightarrow x_1 = x_2$

अंतः प्रदत्त फलन एकैकी है। ....(संबन्ध 1 से)

(ii) <u>गणितीय आगमन के सिद्धान्त से(by Principle Of Mathematical Induction) :</u>

यह विधि उन कथनों या साध्यों को सिद्ध करने के लिए प्रयोग की जाती है जिनका कथन प्राकृतिक संख्याओं पर आधारित होता है और उनमें निगमिक तर्कण का उपयोग किया जा सकता है।

गणितीय आगमन का सिद्धान्त :-

यदि कोई कथन P(n) प्राकृतिक संख्या के लिए कहा गया है, और-

(i) P(1) सत्य है। अर्थात् कथन n=1 के लिए सत्य है।

(ii) P(r) सत्य है ⇒ P(r^+) सत्य है। अर्थात् यदि कथन n=r के लिए सत्य है तो r के उत्तरवर्ती r^+ के लिए भी सत्य है। तो वह कथन सभी प्राकृतिक संख्याओं के लिए सत्य होगा।

उदाहरण :- सिद्ध कीजिए कि यदि,

$$A = \begin{bmatrix} \cos\theta & \sin\theta \\ -\sin\theta & \cos\theta \end{bmatrix} \quad \text{तो} \quad A^n = \begin{bmatrix} \cos n\theta & \sin n\theta \\ -\sin n\theta & \cos n\theta \end{bmatrix}$$

उपपत्ति :- यहाँ माना कि

$$P(n) : A^n = \begin{bmatrix} \cos n\theta & \sin n\theta \\ -\sin n\theta & \cos n\theta \end{bmatrix}$$

तब,

$$P(1) : A^1 = \begin{bmatrix} \cos\theta & \sin\theta \\ -\sin\theta & \cos\theta \end{bmatrix}$$

HBCSE

या, $P(1): A = \begin{bmatrix} \cos\theta & \sin\theta \\ -\sin\theta & \cos\theta \end{bmatrix}$

जो कि ज्ञात है, अतः P(1) सत्य है।
अब माना कि P(r) सत्य है, अर्थात्

$$P(r): A^r = \begin{bmatrix} \cos r\theta & \sin r\theta \\ -\sin r\theta & \cos r\theta \end{bmatrix}$$

तब,

$$A^r.A = \begin{bmatrix} \cos r\theta & \sin r\theta \\ -\sin r\theta & \cos r\theta \end{bmatrix} . A$$ (दोनो पक्षों में A से आव्यूह गुणन लेने पर)

$$\Rightarrow A^{r+1} = \begin{bmatrix} \cos r\theta & \sin r\theta \\ -\sin r\theta & \cos r\theta \end{bmatrix} . \begin{bmatrix} \cos\theta & \sin\theta \\ -\sin\theta & \cos\theta \end{bmatrix}$$

$$\Rightarrow A^{r+1} = \begin{bmatrix} \cos r\theta.\cos\theta - \sin r\theta.\sin\theta & \cos r\theta.\sin\theta + \sin r\theta.\cos\theta \\ -\sin r\theta.\cos\theta - \cos r\theta.\sin\theta & -\sin r\theta.\sin\theta - \cos r\theta.\cos\theta \end{bmatrix}$$

(आव्यूह गुणन से)

$$\Rightarrow A^{r+1} = \begin{bmatrix} \cos(r\theta+\theta) & \sin(r\theta+\theta) \\ -\sin(r\theta+\theta) & \cos(r\theta+\theta) \end{bmatrix}$$

$$\Rightarrow A^{r+1} = \begin{bmatrix} \cos(r+1)\theta & \sin(r+1)\theta \\ -\sin(r+1)\theta & \cos(r+1)\theta \end{bmatrix}$$

$\Rightarrow$ P(r) के सत्य होने पर P(r+1) भी सत्य है।

अतः कथन प्रत्येक धन पूर्णांक के लिए सत्य है (गणितीय आगमन के सिद्धान्त से) और,

$$A^n = \begin{bmatrix} \cos n\theta & \sin n\theta \\ -\sin n\theta & \cos n\theta \end{bmatrix}$$

HBCSE

(iii) <u>वस्तुनिष्ठ प्रमाणों द्वारा उपपत्ति या निश्शेषण द्वारा उपपत्ति (Proof by cases or by exhaustion) :-</u>

इस विधि द्वारा किसी कथन $p \Rightarrow q$ को सिद्ध करना तभी संभव है, जबकि कथन को कई दशाओं r,s,t आदि में इस प्रकार बाँटा जा सके कि $p = r \vee s \vee t$ (जहाँ प्रतीक V सामान्य भाषा में 'या' के लिए प्रयुक्त है)। इन दशाओं में यदि-

$r \Rightarrow q$; $s \Rightarrow q$; और, $t \Rightarrow q$

सिद्ध किया जा सके तो $(r \vee s \; t) \Rightarrow q$ सिद्ध होता है, और इस प्रकार $p \Rightarrow q$ सिद्ध होता है।

उदाहरण :- किसी त्रिभुज ABC में a, b और c क्रमशः शीर्षों A, B और C की सम्मुख भुजा की लम्बाइयाँ हों तो सिद्ध कीजिए कि a=b cosC+C cosB.

उपपत्ति :- त्रिभुज तीन प्रकार के होते हैं- न्यून कोण त्रिभुज, अधिक कोण त्रिभुज तथा समकोण त्रिभुज। अतः यहाँ कथन p कोई त्रिभुज है, को तीन भागों r, s और t में इस प्रकार बाँटा जा सकता है-

r : ΔABC एक न्यून कोण त्रिभुज है, जिसमें $\angle C$ न्यून कोण है।
s : ΔABC एक अधिक कोण त्रिभुज है, जिसमें $\angle C$ अधिक कोण है।

r : ΔABC एक समकोण त्रिभुज है, जिसमें $\angle C$ समकोण है।

HBCSE

तब कथन a=b cosC+c cos B को सिद्ध करने के लिए इसे तीनों दशाओं में अलग-अलग सिद्ध किया जाएगा-

दशा 1→r : जबकि $\angle C$ न्यून कोण है।

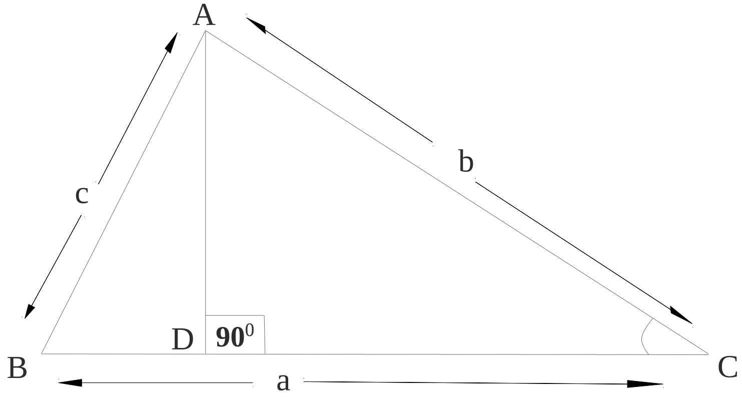

<u>पहले कथन r के लिए→</u>

न्यूनकोणीय ΔABC में $\angle C$ न्यून कोण है तथा रेखा AD भुजा BC पर लंब रेखा खींची गई है। तब ΔABC से :

$$\frac{BD}{AB} = \cos B \Rightarrow BD = AB \cos B \quad BD = c \cos B \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(i)$$

तथा समकोण त्रिभुज ACD से :

$$\frac{CD}{AC} = \cos C \Rightarrow CD = AC \cos C \Rightarrow CD = b \cos C \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots(ii)$$

किन्तु $a = BC = BD + CD \Rightarrow a = b.\cos C + c.\cos B \quad \ldots\{(i)$ और (ii) से$\}$

अतः कथन $r \Rightarrow q$ .....(1)

<u>दूसरे कथन s के लिए→</u>

दशा2→s : जबकि$\angle C$ अधिक कोण है।

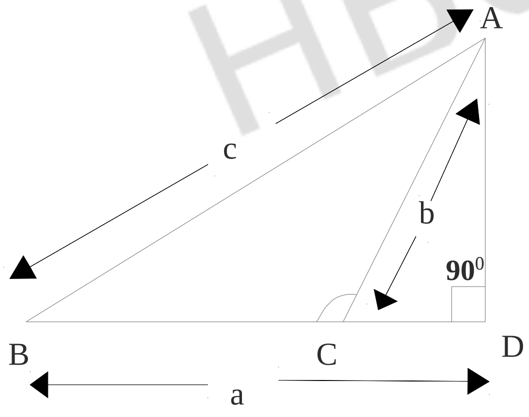

अधिक कोणीय त्रिभुज ABC में $\angle C$ अधिक कोण है, तथा AD भुजा BC के बढ़े हुए भाग पर लंब है। तब समकोण त्रिभुज ABD से :

$$\frac{BD}{AB} = \cos B \Rightarrow BD = AB \cos B \quad BD = c \cos B \qquad \ldots\ldots\ldots(iii)$$

और समकोण त्रिभुज ACD से :

$=\cos ACD \Rightarrow CD=AC \cos ACD \Rightarrow CD=b \cos(180^0-C)$

$\Rightarrow CD=-b \cos C$ ......(iv)

किन्तु $a=BC=BD-CD \Rightarrow a=c.\cos B-(-b \cos C)$.{(iii) और (iv) से}

$\Rightarrow a=c.\cos B+b \cos C \Rightarrow a= b \cos C+c. \cos B$

अतः कथन s $\Rightarrow$ q ....(2)

<u>तीसरे कथन t के लिए→</u>

समकोणीय त्रिभुज ABC में ∠C समकोण है, तब
दशा3→t : जबकि ∠C समकोण है।

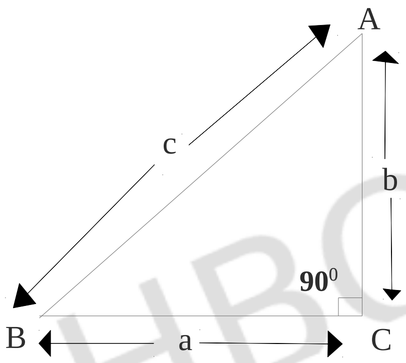

$\frac{BC}{AB}=\cos B \Rightarrow BC=AB \cos B \Rightarrow a=c \cos B$ ....(v)

तथा $\cos C=\cos 90^0=0 \Rightarrow b\cos C=b \cos 90^0=b\times 0=0$ ......(vi)

फिर $a=c \cos B \Rightarrow a=0+c \cos B \Rightarrow a=b\cos C+c\cos B$ ..{(v) और (vi) से}

अतः कथन t $\Rightarrow$ q ....(3)

परिणाम (1),(2) तथा (3) से क्रमशः r $\Rightarrow$ q,s $\Rightarrow$ q तथा t $\Rightarrow$ q तीनों सिद्ध हुए।

$\therefore$ (r v s v t) $\Rightarrow$ q सिद्ध हुआ।
इस प्रकार p $\Rightarrow$ q सिद्ध हुआ।

(2) उपपत्ति की परोक्ष विधि या, अप्रत्यक्ष (Indirect Proof) :-

इस विधि में किसी कथन को सीधे-सीधे न सिद्ध करके, दिये गये कथन के किसी तुल्य कथन को सिद्ध करके प्रदत्त कथन को सिद्ध माना जाता है।

अप्रत्यक्ष विधि भी तीन प्रकार की होती है-

(i) विरोध द्वारा उपपत्ति (Proof by contradiction or Reduction Ad Absurdum) :

इस विधि में प्रदत्त कथन को असत्य मानकर तर्कों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रदत्त कथन को असत्य मानने के कारण ही प्राप्त परिणाम दिये गये कथन का उल्लंघन करता है। अतः प्रदत्त कथन सत्य है।

उदाहरण :- सिद्ध कीजिए कि अभाज्य पूर्णांक संख्याओं का समुच्चय अपरिमित समुच्चय होता है।

उपपत्ति :- यहाँ कथन की उपपत्ति को विपरित कथन से आरम्भ किया जाय। इसके लिए माना कि अभाज्य संख्याओं का समुच्चय P एक परिमित समुच्चय है, जिसमें n अवयव हैं जहाँ n एक पूर्णांक है, तथा माना :

$$P=\{p_1, p_2, p_3....p_{n-1}, p_n\}$$

अब कोई एक पूर्णांक संख्या q इस प्रकार चुना कि-

$$q=(p_1. p_2. p_3. ....p_{n-1}.p_n)+1$$

तो संख्या q, समुच्चय P का अवयव नहीं है क्योंकि q समुच्चय P के सभी अवयवों से बड़ी है। यह संख्या q या तो अभाज्य संख्या है तो इसे समुच्चय P में होना था, किन्तु यह सूची में नहीं है। अतः q अभाज्य नहीं है।

जब q अभाज्य नहीं है तब यह एक भाज्य संख्या है। किन्तु सभी अभाज्य संख्याओं के समुच्चय P के किसी भी अवयव से इसे विभाजित करने पर 1 शेषफल बचेगा, इसलिए q का कोई अभाज्य भाजक P का अवयव नहीं है। अतः q भाज्य भी नहीं है।

इस प्रकार q न तो भाज्य है और न अभाज्य, जो असंभव है। यह विसंगति P को परिमित समुच्चय मानने से पैदा हुई है। अतः P अपरिमित समुच्चय है।

(ii) कथन के प्रतिस्थितिक कथन के उपयोग द्वारा उपपत्ति (Proof by using contrapositive statement) :-

इस विधि में कथन $p \Rightarrow q$ को न सिद्ध करके इसके प्रतिस्थितिक तुल्य

कथन $\sim p \Rightarrow \sim q$ (यदि p सत्य नहीं है तो q सत्य नहीं है) को सिद्ध किया जाता है।
उदाहरण :- यदि फलन $f:R\rightarrow R$ इस प्रकार है कि $f(x)=7x-9$ तो सिद्ध कीजिए कि फलन f एकैकी है।

उपपत्ति :- एकैकी फलन की परिभाषा से- फलन f एकैकी होता है यदि $f(x_1)=f(x_2) \Rightarrow x_1=x_2$; इसका प्रतिस्थितिक कथन- यदि $x_1\neq x_2$ तो $f(x_1)\neq f(x_2)$ है; यहाँ प्रतिस्थितिक कथन का उपयोग किया जा रहा है-

माना $x_1\neq x_2$ तब $7x_1\neq 7x_2 \Rightarrow 7x_1-9\neq 7x_2-9 \Rightarrow f(x_1)\neq f(x_2)$;

अतः $\sim q \Rightarrow \sim p$

इसलिए f एकैकी है।

(iii) <u>प्रत्युदाहरण द्वारा उपपत्ति (Proof by a counter example) :-</u>

गणितीय अध्ययन में अनेक अवसर ऐसे आते हैं जब किसी कथन के लिए कोई तथ्यात्मक उपपत्ति प्राप्त करना असम्भव हो जाता है तब उस कथन की गणितीय वैधता संदिग्ध हो जाती है। ऐसी दशा में कथन का उल्लंघन करने वाला एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे उदाहरण को प्रत्युदाहरण कहते हैं। यह अकेला उदाहरण सम्पूर्ण कथन को असत्य सिद्ध कर देता है।

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि क्या यह विधि एक उपपत्ति हो सकती है? वास्तव में किसी कथन $p \Rightarrow q$ की नकारात्मक उपपत्ति केवल $\sim(p \Rightarrow q)$ को स्थापित करना है। अतः यह विधि भी उपपत्ति की एक विधि है।
उदाहरण :- क्या समान क्रम के दो वर्ग आव्यूहों का गुणनफल क्रम विनिमेय नियम का पालन करता है?

उपपत्ति :- माना समान क्रम के दो वर्ग आव्यूह

$A=\begin{bmatrix}3 & 2\\ 5 & 1\end{bmatrix}$ तथा $B=\begin{bmatrix}9 & 4\\ 6 & 7\end{bmatrix}$ हैं।

$$\text{तब } A.B=\begin{bmatrix}3 & 2\\ 5 & 1\end{bmatrix}.\begin{bmatrix}9 & 4\\ 6 & 7\end{bmatrix}=\begin{bmatrix}27+12 & 12+14\\ 45+6 & 20+7\end{bmatrix}=\begin{bmatrix}39 & 26\\ 51 & 27\end{bmatrix} \;.....(1)$$

$$B.A=\begin{bmatrix}9 & 4\\ 6 & 7\end{bmatrix}.\begin{bmatrix}3 & 2\\ 5 & 1\end{bmatrix}=\begin{bmatrix}27+20 & 18+4\\ 18+35 & 12+7\end{bmatrix}=\begin{bmatrix}47 & 22\\ 53 & 19\end{bmatrix} \;......(2)$$

संबन्ध (1) और (2) से- $A.B\neq B.A$

HBCSE

∴ वर्ग आव्यूहों का गुणनफल सामान्यतया क्रम-विनिमेय नियम का पालन नहीं करता है।

ध्यातव्य :-

किसी भी गणितीय कथन की सत्यता की परख उसकी उपपत्ति द्वारा ही संभव है और गणित की प्रत्येक शाखा अनेक अभिगृहीतों और प्रमेयों का संजाल है। अतः उपपत्ति से संबंधित शब्दों एवं इसकी विधाओं की सम्पूर्ण जानकारी गणित के छात्रों के लिए अतिआवश्यक है। किसी गणितीय कथन को सिद्ध करने के लिए एक से अधिक विधियाँ भी संभव हैं। आवश्यकता के अनुसार वह विधि चुनी जाती है जो सरल और संक्षिप्त प्रमाण दे।

❖ परित्राण, कुशवाहा नगर
वासलीगंज
मीरजापुर-231001

HBCSE

ज्ञान-विज्ञान शैक्षिक निबन्ध

सम्पादन : कृष्ण कुमार मिश्र

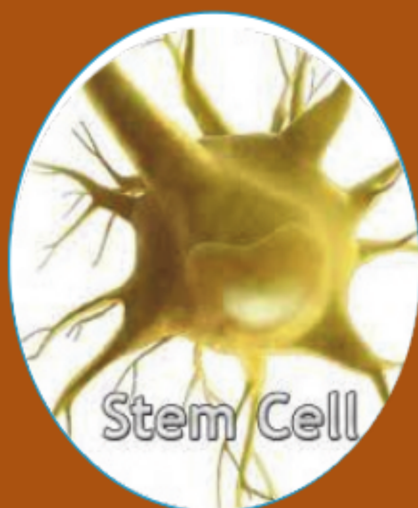

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केंद्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
मुंबई-400088